# "हरिवंश राय बच्चन के काव्य में प्रेम की अभिव्यंजना का स्वरूप"

इलाहाबाद विश्वविद्यालय को डी० फिल उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध

निर्देशक :
**प्रो० राजेन्द्र कुमार वर्मा**
पूर्व विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

अनुसंधाता :
**अजय कुमार श्रीवास्तव**
हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
**2001**

# भूमिका

युगान्तर का संक्रमण बिन्दु सदा ही एक निर्वात की सी स्थिति लाता है और यह स्थिति सदा से ही एक चुनौती बनती आई है। किसी भी विकास क्रम में ऐसी चुनौतियाँ बड़ी महत्वपूर्ण होती हैं। इन चुनौतियों का उत्तर जितना समुचित रूप में होगा विकास क्रम भी उतना ही समुचित होगा। यदि इन चुनौतियों के प्रत्युत्तर में किसी भी प्रकार की शिथिलता रह जाय तो यह चुनौतियाँ अपनी निर्वात स्थिति को और अधिक संत्रासद बना देती है।

वस्तुतः युग संक्रमण की निर्वात स्थिति से जगी चुनौती का उत्तर देने हेतु कोई सशक्त व्यक्तित्व सामने आ जाय तो युग– संक्रमण को समुचित दिशा मिल जाती है। अन्यथा उस युग संक्रमण की परिणतियाँ भयंकर रूप धारण कर लेती हैं। सूक्ष्म रूप में युग – संक्रमण परिवर्तन का द्योतक है। हिन्दी साहित्य में ऐसे अनेक युग संक्रमण आते रहे हैं।

छायावादोत्तर युग संक्रमण में ऐसी ही निर्वात स्थिति पैदा करता है। छायावाद की अकाल मृत्यु और प्रगतिवाद की आत्मा हत्या उसी स्थिति का परिणाम है। व्यक्तित्व की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में ऐसा घोर संकट काल कभी नहीं आया था। ऐसे छायावादोत्तर घटाटोप सन्नाटे और अंधकार में एक उल्का की भाँति एक व्यक्तित्व सामने आया जिसकी चमक न केवल स्थायी रही अपितु जिसकी उज्जवलता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। यह व्यक्तित्व था श्री हरिवंश राय बच्चन का।

श्री बच्चन छायावादोत्तर संक्रमण की पहली परिणति है। इनमें कवित्व का अप्रतिम रूप है, अनुभूति की प्रमाणिक मौलिकता है और अभिव्यक्ति की नई गठन और भंगिमा है। दाय के रूप में प्राप्त छायावादी प्रयोगात्मक काव्य शैली से अप्रभावित रहकर उन्होंने जीवन सत्यों की अनुभूति गम्य रचना की। काव्य क्षेत्र में उनका पदार्पण एक रचनात्मक विद्रोह का सूचक है। पहली बार व्यक्ति संवेदना का विशुद्ध स्वर बच्चन के माध्यम से एक अतीव सहज और निश्चल मुद्रा में सामने आता है।

बच्चन जी की इन्हीं विशेषताओं से प्रभावित होकर मैंने उनके काव्य पर शोध करने का निश्चय किया। प्रस्तुत प्रबन्ध में इसी व्यक्तित्व की सहज प्राणवान और प्रमाणित प्रेम चेतना के विश्लेषण का प्रयत्न किया गया है।

सम्पूर्ण प्रबन्ध योजना को सात अध्यायों में विभाजित किया गया है– प्रथम अध्याय में श्री बच्चन के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों और उनके जीवन वृत्त को समझने का प्रयास किया गया है।

द्वितीय अध्याय में बच्चन जी के काव्य के क्रमिक विकास को पाँच चरणों के अन्तर्गत विभाजित कर समझने का प्रयास किया गया है। उनके काव्य का हर चरण उनकी नई मनःस्थिति का द्योतक है। प्रथम चरण मधुकाव्य का है, द्वितीय चरण वेदना और निराशा से संघर्ष का है, तृतीय चरण रागमय उल्लास और प्रणय काव्य का है, चतुर्थ चरण युग समाज चेतना मुक्त छंद परम्परा और प्रयोग का काव्य है। तो पाँचवा चरण परवर्ती काव्य का है जो चिन्तन प्रधान, मुक्त छंद, परम्परा और प्रयोग का काव्य है।

तृतीय अध्याय में समकालीन काव्य प्रवृत्तियों और उनका बच्चन के काव्य पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इस सन्दर्भ में हालावाद, स्वच्छंदतावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, यथार्थवाद, आदर्शवाद एवं व्यक्तिवाद आदि मुख्य प्रवृत्तियों का उल्लेख किया गया है।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत प्रेम तत्व का वैचारिक विवेचन है। इसमें प्रेम की व्युत्पत्ति एवं विवेचन के साथ ही प्रेम और काम के सह–सम्बन्ध को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। प्रेम का मुख्य आधार अंग नारी का बच्चन के काव्य सृजन पर क्या प्रभाव पड़ा इसको भी विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

पंचम अध्याय के अन्तर्गत बच्चन जी के प्रेम चेतना का विश्लेषण किया गया है। विवेच्य प्रेम अभिव्यंजना का स्वरूप को दो उपखण्डों के अन्तर्गत विश्लेषित

करने का प्रयास किया गया है।जो क्रमशः प्रेम के दो पक्ष संयोग और वियोग पक्ष है। इस प्रकार बच्चन जी की प्रेम चेतना को समग्रता में परखने और पहचानने का प्रयास किया गया है।

छठे अध्याय में प्रेम व्यंजना के शिल्प विधान को भाषा, प्रतीक, बिम्ब, छंद एवं उपमानों के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है।

सातवां अध्याय उपसंहार का है जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण विश्लेषण कार्य का मूल्यांकन किया गया है। जिसे सम्पूर्ण शोध कार्य की उपलब्धि माना जा सकता है।

सर्वप्रथम मैं **प्रो0 राजेन्द्र कुमार वर्मा**, पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके सफल निर्देशन एवं मार्गदर्शन में यह कार्य सम्पन्न कर सका अन्यथा मेरे लिए यह कार्य दुश्कर ही नहीं असम्भव सा था। प्रो0 मीरा श्रीवास्तव के प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनके निर्देशन में मैंने शोध कार्य प्रारम्भ किया था। प्रो0 मालती तिवारी, डा0 राजेन्द्र कुमार, डा0 सत्य प्रकाश मिश्र के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ जिनसे समय–समय पर मुझे दिशा–निर्देश प्राप्त होता रहा ।

इस शोध प्रबन्ध के लेखन में मैंने जिन ग्रंथों से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सहायता ली है उन सब लेखकों एवं प्रकाशकों के प्रति भी मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

अन्त में विनय पूर्वक बच्चन जी का यह अध्ययन उनके विराट काव्य का एक पक्ष मात्र है। यदि इस अध्यन को विद्वत समाज उपयुक्त स्वीकार करेगा तो मैं इसे अपना सौभाग्य समझूँगा।

****

"हरिवंश राय बच्चन के काव्य में प्रेम की अभिव्यंजना का स्वरूप"

## प्रथम अध्याय



## द्वितीय अध्याय

## षष्टम अध्याय



## सप्तम अध्याय



****

# अध्याय –प्रथम

## बच्चन: व्यक्तित्व एवं जीवनधारा

व्यक्तित्व :

"मैं जग जीवन का भार लिए फिरता हूँ
फिर भी जीवन में प्यार लिए फिरता हूँ।"

ये हैं अंग्रेजी साहित्य मर्मज्ञ, पारंगत विद्वान और हिन्दी के प्राणवंत कवि–गीतकार – डा0 हरिवंश राय बच्चन। "रूप जैसी मधुशाला का वैसा ही मधुशाला के कवि का" साँवला दुबला चेहरा, कल्ले किंचित धँसे हुए और जबड़े की हड्डियाँ कुछ उभरी हुई, मोटे सैंसुअल होंठ, चौड़ा माथा और लम्बे काले घुँघराले बाल।[1] तीखे नैन नक्श और स्वभाव में एक सभ्य आदमी की छाप। ऐसे मानव हृदय मर्मज्ञ, रस सिद्ध गायक, भाव धनी एवं युग प्रबुद्ध डा0 हरिवंश राय बच्चन का व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य में अपनी अद्‌भुत विशेषता एवं महत्ता रखता है।

बच्चन का व्यक्तित्व आधुनिक हिन्दी कविता का ऐसा विशिष्ट व्यक्तित्व है जो विरोधों में जीकर मैत्री की बात करता है। "जग जीवन का भार" अपने ऊपर लेकर बदले में प्यार बाँटता है। हाला और प्याला के प्रतीकों के माध्यम से युग की निराशा को मस्ती में रूपांतरित कर लेता है। विश्व के कल्याण के लिए जिस प्रकार शिव ने गरल पान किया था; वैसे ही कवि ने सारी निराशा को आत्मसात कर मस्ती के गीत गाए।

केदार नाथ अग्रवाल बच्चन में एक साथ सात–सात बच्चनों को देखते हैं– देह के बच्चन, मन के बच्चन, समाज के बच्चन, सभ्यता के बच्चन, संस्कार के बच्चन, संस्कृति के बच्चन, जनता के बच्चन और काव्य के बच्चन[2] और यह भी मानते हैं कि देह का बच्चन मध्यम वर्ग की जमीन पर पनपा बच्चन है और "मन का बच्चन" का अभिन्न अंग है– समाज का बच्चन अच्छा पड़ोसी, हमदर्द अंतरंग, आत्मीय साथी मर्यादित कुटुम्बी है– संस्कार का बच्चन बिकता नहीं है– जनता का बच्चन जनता के साथ सांस लेकर जीता है व काव्य का बच्चन पहले आदमी है

---

1. उपेन्द्र नाथ अश्क, बच्चन–निकट–से– चंचला लड़की और फक्कड़ कवि,

कवि
और फिर/ अर्थात् बच्चन का व्यक्तित्व और काव्य अविच्छिन्न है। बच्चन का व्यक्तित्व निष्कपट और निश्छल है, वह क्या सोचता है उसकी भावना क्या है यह उसके मुँह पर स्पष्ट है उसके पास कोई आवरण नहीं है। उनके गीतों की विशेषता है आम आदमी की कविता के केन्द्र में प्रतिष्ठापना। उनकी कविताओं में हाड़ माँस का आदमी अपनी समूची आशाओं, आकांक्षाओं और दुराशाओं व निराशाओं के साथ उपस्थित हुआ है। कहीं कोई दुराव नहीं कोई छिपाव नहीं।

बच्चन की कविता का परिशीलन करना भावनाओं के सहज मधुर, अंतस्पर्शी इन्द्रलोक के सूक्ष्म सौन्दर्य वैभव में विचरण करना है। जहाँ एक ओर कल्पना के कुंतल जाल में एक जीवन की मधुवर्षिणी मधुबाला मधु बरसाती एवं मानव हृदय की धड़कनों में चिर–परिचित पगध्वनि करती है तो चपलाओं के आलोक आलिंगनों में बँधे हुए, विषाद, विनाश तथा अंधकार के दुर्दृष पर्वतों से मेघ, जीवन संघर्ष के उद्दाम सागर मंथन में अविराम टकराकर निदारूण वज्रघोष तथा अट्टहास करते सुनाई पड़ते हैं।[1] परन्तु ये अंधकार और संघर्ष कवि को निराश नहीं कर पाते बल्कि कवि में एक नया उत्साह पैदा करते है जिससे वह और साहसपूर्ण हो इन संघर्षो का सामना करने में समर्थ हो सका। संघर्षो की अंतहीन श्रृंखला के समक्ष बच्चन को झुकना स्वीकार्य न था। संघर्षों में कवि पला तो संघर्षों ने ही उसके काव्य में निखार उत्पन्न किया। "मिट्टी का तन मस्ती का मन" लिए हुए वह संघर्षो से जूझते चले गये। जीवन के आरम्भिक चरण में कंचन से, यौवनास्था में कामिनी से और साथ ही कदम्ब वर्ग से-- परन्तु वह झुके नही भले ही टूट गये हों।[2]

यद्यपि बच्चन अंधविश्वासी नहीं है और न पुरातन रूढ़ियों पर उन्हें आसक्ति है तथापि देश और भाषा के प्रति उनका विशेष स्नेह है। आधुनिकता को फैशन के रूप में नहीं अपनाते न उनके लिए वह अभिनव अभिजात्य का लक्षण है। वे पाश्चात्य दर्शन और आन्दोलनों से प्रभाव ग्रहण करने में कोई बुराई नहीं समझते। उन्हीं के

---

1. पंत– बच्चन का व्यक्तित्व एवं काव्य, पृ0–23
2. कृष्ण चन्द पाण्ड्या– बच्चन व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ0–24

शब्दों में "किसी भी दर्शन से प्रभावित होना बुरा नहीं है किन्तु किसी दर्शन से बंध जाने से विकास अवरूद्ध हो जाता है।"[1] परिवर्तन को खुले दिन से स्वीकार करने वाले बच्चन का जीवन भी स्वयं परिवर्तनशील रहा है।

बच्चन की अनुभूति सरल एवं ऋजु है, फलतः अभिव्यक्ति भी सीधी सादी है। उनका चिंतन भी भोला भाला है जिससे स्पष्ट होता है कि वे चिंतक नहीं बल्कि एक सरल अनुभूति के कवि हैं। उनकी सरलता उन्हें एक श्रेष्ठ कवि के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं। डा0 नगेन्द्र ने ठीक ही लिखा है– "अनुभूति और चिन्तन के अनुरूप ही बच्चन की कल्पना भी ऋजु सरल है।"[2] कविता सीधे उनके जीवन से फूटकर आयी है। वह उनके जीवन की अनिवार्यता थी – विवशता थी, अर्थात् उनके जीने की शर्त– उन्हीं के शब्दों में "कविता मेरे विकृत मन की उपज है आज तक मेरी बेचैनी विकलता, द्वन्द्व, दहन, जलन, प्यास, त्रास, पीड़ा, संत्रास ही तो मेरी कविता में व्यक्त होता रहा है।"[3]

बच्चन कविता को लिखने वाले कवि नहीं वरन् कविता को जीने वाले कवि हैं। वह कविता के हाथों पूरी तरह समर्पित कवि है। वास्तव में वह जन मन को सुरभित करने वाले जीवन संघर्ष के आत्मनिष्ठ कवि हैं अर्थात् जीवनानुभव के कवि। स्वयं बच्चन के शब्दों में – "अनुभवों से समृद्ध होकर प्रेरणा पर मैंने अपने आपको छोड़ दिया। वह जो कुछ मुझसे लिखाती गयी मैं लिखता गया।"[4] कविता ने कवि को लिखा है कवि ने कविता नहीं। बच्चन की कविता नहाला की, न प्याला की और न किसी वाद–विशेष की कविता है वह तो एकमात्र जीवन की कविता है। बच्चन ने स्वयं कुछ नहीं लिखा उनके जीवन की परिस्थितियाँ उनसे कुछ लिखवाती गयी वे लिखते गये। एक रूप में बच्चन ने अपने जीवन का अविकल अनुवाद किया है किन्तु यह अनुवाद इतनी सच्चाई और ईमानदारी से किया गया है कि पाठक उनकी कविता

---

1. विश्वनाथ और सतीश शर्मा द्वारा साक्षात्कार– बच्चन रचना 09, पृ0–37
2. डा0 नगेन्द्र– आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, पृ0–91
3. बच्चनः नीड़ का निर्माण फिरःबच्चन रचनावली–7, पृ0–388

पढ़कर बच्चन के जीवन की छोटी से छोटी गुह्य से गुह्य घटना को पकड़ सकते हैं। व्यक्ति मन की ऐसी कौन सी अनुभूति है जो बच्चन ने नहीं लिखा ? जहाँ तक जितना कुछ जीवन है वह सब बच्चन की कविता है। उनका न किसी वाद विशेष से लगाव था न किसी सिद्धान्त से उन्होंने अपने जीवन में खट्टे – मीठे जो भी अनुभव किये उन्हीं का गान किया।

"हिन्दी में वाद आते रहे, वाद जाते रहे, गुट बनते रहे, गुट बिखरते रहे, आचार्य बहस मुगाहसे करते रहे लेकिन बच्चन जी अपनी कविताओं से, अपने गीतों से लोगों को मंत्र मुग्ध करते रहे गीत गाते रहे गाते ही रहे।"[1] "गंग जमुन के तीर डोंगा बोले" – उनकी कविता यह जादू भरा डोंगा शान से पाल उड़ाता हुआ छः दशकों की यात्रा तय कर आया है। बच्चन जी वन मैन इन हिन्दी फैक्टरी हैं। दुनिया चाहे जिधर जाए, चाहे जो करे – इन्होंने जिस दिन से फैक्टरी खड़ी की उस दिन से आजतक उत्पादन में शायद ही कोई कसर आने दी हो।"[2] वास्तव में वे जन मन को सुरभित करने वाले, जीवन संघर्ष के आत्मनिष्ठ कवि हैं। पंत ने उनके बारे में ठीक ही लिखा है –

अमृत हृदय में गरल कंठ में, मधु अधरों में
आए तुम वीणा धर कर में, जन मन मादन ।[3]

**<u>जीवन धारा: जन्म एवं परिवार</u>** :

27 नवम्बर 1907 को जन्मे हरिवंश राय बच्चन हिन्दी काव्य क्षेत्र में एक उल्का की भाँति चमकने वाले व्यक्ति हैं। परन्तु इस उल्का की चमक न केवल स्थायी रही अपितु उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। प्रेम और सौन्दर्य के अप्रतिम गायक बच्चन जी

---

1. पद्मा सचदेव– द्वारा बम्बई दूरदर्शन पर साक्षात्कार– बच्चन रचना 09, पृ0– 70
2. रामानुज लाल श्रीवास्तवः बच्चन–निकट से, सं0 अजित ओंकार, पृ0–13
3. पंत– बच्चन का व्यक्तित्व एवं काव्य, पृ0–23

का जन्म भी एक विशेष परिस्थिति में हुआ। प्रताप नारायण प्रयाग के एक कायस्थ कुल से थे जिसके पूर्वज अमोढ़ा के पांडे कहलाते थे। बच्चन अपनी माता-पिता की छठी संतान थे। पिता प्रताप नारायण और माता सुरसती ने नाम रखा हरिवंश राय। घर में उन्हें बच्चन पुकारा जाता था। हरिवंश नाम रखने का विशेष कारण था। जब भगवान देई (बच्चन की बड़ी बहन) के बाद होने वाली दो संताने अल्पायु में चल बसीं तब पंडित राम चरण शुक्ल ने प्रताप नारायण को सलाह दी कि अब जब सुरसती गर्भवती हों तो वे हरिवंश पुराण का श्रवण करें। शुक्ल जी की बात मान दोनों पति-पत्नी ने नियम पूर्वक दिन भर व्रत उपवास करते और शाम को हरिवंश पुराण का श्रवण करते। हरिवंश पुराण के श्रवण से पुत्र रत्न की प्राप्ति होने पर उन्होंने बच्चन का नाम हरिवंश रखा ।

माता ने पुत्र की दीर्घायु के लिए और भी बहुत से दाय उपाय, टोने-टोटके आदि किये। वे सहज विश्वासी महिला थीं। पुत्र की सलामती के लिए उस समय प्रचलित अनेक अंधविश्वासों एवं परम्पराओं के अनुसार झाड़-फूँक, वैद्य-हकीम आदि से आर्शीर्वाद प्राप्त किया। यहाँ तक कि एक चमारिन लछमनिया के हाथों पाँच पैसे में बेंच दिया। इसके अतिरिक्त माँ ने एक दो व्रत भी ठाने हर मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को वे निर्जल व्रत रखतीं और चन्द्रोदय देखकर फलाहार करतीं। प्रत्येक मंगलवार को सुन्दर काण्ड का पाठ भी करतीं।

<u>शिक्षा</u> :

विधिवत् पढ़ाई शुरू होने से पहले घर में कुछ उत्सव हुआ, कुछ पूजा हुई। पुरोहित जी ने पट्टी पर एक ओर "श्री गणेशाय नमः" लिखवाया, मौलवी साहब ने दूसरी ओर "बिस्मिल्ला हिर्रहमां निर्रहीम" लिखवाया। इसके पूर्व ही अक्षर ज्ञान हो चुका था, बड़ी बहनों और माँ के द्वारा। आठ वर्ष की उम्र में मोहतशिम गंज म्यूनिसिपल स्कूल में बच्चन का प्रवेश कराया गया। म्यूनिसिपल स्कूल उन दिनों दो तरह के होते थे। लोअर प्राइमरी (दर्जा चार तक) और अपर प्राइमरी (दर्जा छः) यानि मिडिल तक वाले। मोहतशिम गंज का स्कूल लोअर प्राइमरी तक था परन्तु वहाँ बच्चन दर्जा दो तक पढ़े उसके बाद ऊँचा मण्डी म्यूनिसिपल स्कूल में प्रवेश लिया। ऊँचा मण्डी के स्कूल में पढ़ते हुए बच्चन न अपने जीवन का प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण निर्णय लिया।

हुआ इस प्रकार कि स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का व्याख्यान "हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा" सुनकर उनके प्रवाह में बह गये और उन्होंने उर्दू छोड़कर हिन्दी माध्यम को अपनाने का निर्णय लिया।

1919 में बच्चन जी ने स्थानीय कायस्थ पाठशाला में छठे दर्जे में प्रवेश लिया। यहाँ वे 1925 तक विद्यार्थी रहे। इसी स्कूल से इन्होंने हाईस्कूल की परीक्षा पास की। कायस्थ पाठशाला में शिक्षा के दौरान ही इन्होंने अपनी पहली पूरी कविता लिखी –किसी अध्यापक की विदाई पर – "दीन जनो के पास नहीं हैं, मणि–मुक्ता के सुन्दर हार"[1] कैशोर्य और यौवन के इस नाजुक संधि स्थल को बच्चन ने आत्म निर्णय का समय कहा है क्योंकि व्यक्ति के परिवेश एवं परिस्थितियों के साथ ही उसके उत्तरोत्तर जागरूक एवं सचेत होते अहं का भी विशिष्ट योग रहता है।[2]

**चंपा–कर्कल–बच्चन: प्रणय त्रिकोण** :

कर्कल का सानिध्य बच्चन के व्यक्तित्व में ऐसे अनेक अवयवों का कारक रहा है जो कि शायद कर्कल के अभाव में सम्भव न होता। कर्कल का विकास नियंत्रण मुक्त सहज स्वच्छंद रूप से हो रहा था। जिसका प्रभाव बच्चन पर पड़ना स्वाभाविक था। नियंत्रण मुक्ति की दिशा में गाँधी जी का असहयोग आन्दोलन भी सहायक रहा। परिणामस्वरूप बच्चन ने कुल परम्परा के रामानन्द सम्प्रदाय में दीक्षित होने से मना कर दिया और कृष्ण के प्रति अपना झुकाव प्रदर्शित किया। गुरू महाराज ने घोषणा की कि "हरिवंश पुराण सुनने से इसका जन्म हुआ है, इनके अन्दर वृष्णि वंश की कोई आत्मा है, यह लीक–लीक नहीं चलेगी, बहुत कुछ अपने मन का करेगी।"[3] ने बच्चन की आत्म निर्णय और दृढ़ता को एकपुष्ट आधार प्रदान किया।

कर्कल का गौना होने के बाद गोरवर्णी सुन्दरी चम्पा का आगमन हुआ। कर्कल और चम्पा ने अपने प्रणय जीवन में बच्चन को अभिन्न समझा। परन्तु कर्कल के आकस्मिक मौत ने मानो वज्राघात कर दिया। इस दुख के काल में बच्चन और चम्पा

---

1. जीवन प्रकाश जोशी: बच्चन–व्यक्तित्व एवं कवित्व: एक प्रश्न के उत्तर में बच्चन का कथन, पृ0–205
2. बच्चन: क्या भूलूँ क्या याद करूँ : पृ0– 182
3. बच्चन– क्या भूलूँ क्या याद करूँ, पृ0–206

का परस्पर एक दूसरे के करीब आना, चम्पा का गर्भवती होना, उसकी सास द्वारा उसे हरिद्वार ले जाना और महीनों बाद वापस आना और कुछ ही दिनों के बाद चम्पा की मौत बच्चन के लिए किसी दु:स्वप्न से कम न थे। इस दौरान वे जिस तूफान से गुजरे, जिस सैलाब में बहे जिन भावनाओं की सघनता जानी, गहराइयाँ छुई, जिन तनावों का कसाव झेला वह अवर्णनीय है। स्वयं बच्चन के शब्दो में – "शब्दों में कवि होने से पूर्व मैं जीवन में कवि बन गया था।[1] अन्यत्र "उसमें जो कुछ कटु अनुभव हुआ, वह इतनी तीव्रता तक पहुँचा कि किसी प्रकार की अभिव्यक्ति मेरे लिए स्वाभाविक हो गयी – शायद इसी ने मुझे कवि बनाया।[2]

कविता के अंकुर तो बच्चन में पहले से ही फूट चुके थे। "भारत–भारती", "सरस्वती" और "मतवाला" पत्रिकाओं के माध्यम से वे क्रमशः मैथिली शरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पंत और निराला से वे परिचित हो चुके थे। यहीं से बच्चन का जीवन काव्य बनने लगा था। यही समय (9वीं–10वीं) उनकी काव्य जीवन की पृष्ठभमि है।

क्रिश्चियन कालेज के अध्यापक मिस्टर एडम्स की प्रेरणा से और चम्पा के मार्मिक आदेश– जो कि उसने मरते वक्त दिया था– के फलस्वरूप बच्चन ने पुनः पढ़ाई प्रारम्भ की और अगले वर्ष 1925 में हाईस्कूल द्वितीय श्रेणी में पास किया। 1927 में गवर्नमेन्ट कालेज से इण्टर पास किया और 1929 में बी0ए0 इलाहाबाद विश्वविद्यालय से। इस काल की अन्य उल्लेखनीय घटनाएं थी। श्यामा के साथ विवाह, 1927 में पुश्तैनी घर छोड़कर कटघर में आना और किसी बारात में श्री कृष्ण सूरी से अनायास भेंट । सूरी का रूप कर्कल की तरह होने से कवि का सहज ही आकर्षण ।

---

1. जीवन प्रकाश जोशी– बच्चनः व्यक्तित्व और कवित्व, पृ0–208 (एक प्रश्न के उत्तर में)
2. वही, पृ0– 213

विवाह एवं दाम्पत्य :

विवाह के समय कवि के लिए "खेल की सहेली" सी श्यामा अब काफी परिपक्व हो चुकी थी। माँ की लम्बी बीमारी और अचानक मृत्यु एवं इस दौरान गम्भीर जिम्मेदारियों के कारण श्यामा मानसिक रूप से परिपक्व हो गयी थी। गौना हुआ तो श्यामा बुखार में थी। माँ की सेवा करते-करते वह भी तपेदिक रोग से संक्रमित हो गयी थी। अपनी घातक बीमारी के अहसास ने श्यामा को सबके प्रति और अधिक उदार बना दिया। इस बीमारी के कारण बच्चन और श्यामा का सम्बन्ध मन से मन का प्राणों से प्राणों का ही रह गया, सहज शारीरिक सम्बन्ध असम्भव था- "वासना जब तीव्रतम थी बन गया मैं संयमी।" [1] और इस संयम की कुंठा का निश्चय ही कवि के मधु काव्य की कल्पना में विस्फोट हुआ है- खुलकर। स्वयं बच्चन जी के अनुसार- यह मैं बड़ी सच्चाई के साथ कहता हूँ कि उसका अधिकतम विस्फोट निश्चय ही मेरे काव्य के रूप में हुआ।[2]

अंग्रेजी में एम०ए० (प्रथम वर्ष) में थे तभी असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर पढ़ाई छोड़ दी और स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़े। परन्तु सरकारी दमनचक्र से आन्दोलन में शिथिलता आने और जनता का आन्दोलन से सम्बन्ध विच्छेद के बाद बच्चन अपने को अकेला पाते हैं। किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में बच्चन अपने कवि को टटोलना प्रारम्भ करते हैं।

पढ़ाई छोड़ने के बाद कुछ दिन चाँद पत्रिका में काम किया यहाँ चालीस रूपये मिलते थे। परन्तु उनके लिखे लेखों के ठुकराये जाने और उन्हीं लेखों को दूसरे नाम से छापने से नाराज होकर बच्चन ने यह नौकरी छोड़ दी । कुछ दिन मुट्ठीगंज में मास्टर भगवान सहाय द्वारा स्थापित एक राष्ट्रीय स्कूल में पढ़ाया। बड़ी कोशिश के बाद प्रयाग महिला विद्यापीठ में 30/- प्रति माह की नौकरी मिल गयी।

---

1. बच्चन- मधुकलश (कवि की वासना), बच्चन रचना-01, पृ0-129
2. बच्चन: क्या भूलूँ क्या याद करूँ, पृ0-260

**कहानीकार पर कवि की विजय :**

इन वर्षो में बच्चन कहानी और कविता दोनों लिखते रहे वास्तव में वे स्वयं कहानीकार बनना चाहते थे। इसी सन्दर्भ में कहानियों का एक संग्रह तैयार किया और "हिन्दुस्तान अकादमी" को प्रकाशनार्थ भेजा परन्तु वह अस्वीकृत होकर वापस आ गया। निराशा में कहानियाँ फाड़ डाली और मात्र कविता की दिशा में ही प्रवृत्त हुए। 1932 में पहला काव्य संग्रह "तेरा हार" के प्रकाशन से कवि को और प्रोत्साहन मिला। पत्र–पत्रिकाओं में तेरा हार – की आलोचना छपी। "प्रताप" ने लिखा कविताएं उत्तम भावों से परिपूरित है। वीणा ने लिखा– "बच्चन उन छिपे हुए सुकवियों और सुलेखकों में है जिनकी प्रतिभा का फूल खिलकर भी अपने आपमें छिपा रहना चाहता है।"

प्रारम्भिक रचनाएं भाग 1–2 कवि की विवशता की अभिव्यक्ति थी। वे कविताएं नहीं थी, वे कविता से कुछ बड़ी चीज थी, वे जीवन थी।[1] अपने कवि होने का बढ़ता एहसास– भाग्य पटल पर विधि ने लिख दी कवि की जटिल कहानी।[2] कवि को अपने गीतों के प्रति सहज अनुराग की ओर ले गया। एक संघर्षरत मानव जब सहज प्रतिभा सम्पन्न कवि बनने की प्रारम्भिक प्रक्रिया से गुजरता है तो उसकी जीवनगत परिस्थितियाँ और मन:स्थितियां कैसे काव्य बन जाती है, इसका सीधा सच्चा निदर्शन प्रारम्भिक रचनाओं से मिल जाता है।

**खैयाम का खुमार :**

विश्वविद्यालय छोड़ने के बाद कवि के जीवन में जो संघर्ष प्रारम्भ हुआ था और इस बीच वह जिस तरह के अकेलेपन और मानसिक – शारीरिक अतृप्ति से जूझ रहे थे, "रूबाइयतउमर खैयाम" उनके प्राणों की पुकार बन बैठी। एक–एक रूबाई से उनका हृदय सहज ही द्रवित और परिप्लावित होने लगा और भावनाओं के इसी

---

1. बच्चन: क्या भूलूँ क्या याद करूँ, पृ0–218
2. बच्चन : प्रारम्भिक रचनाएँ, बच्चन रचनावली–3, पृ0– 554

गहन तादात्म्य के दौर में सात दिन की अल्पावधि में कवि ने इसका अनुवाद हिन्दी में "खैयाम की मधुशाला" कर डाला। उन्हीं के शब्दों में "रूबाइयत उमरखैयाम से मेरा परिचय तो पुराना था अब वह मेरी प्रिय पुस्तक हो गयी थी। रात को मेरे तकिये के नीचे रहती थी दिन को मेरी जेब में।"[1] अपने ऊपर खैयाम के प्रभाव को इन्होंने इन पंक्तियों में स्वीकार किया है।

तुम्हारी मदिरा से अभिषिक्त
हुए थे जिस दिन मेरे प्राण
उस दिन मेरे मुख की बात
हुई थी अंतरतम की तान।[2]

**जीवन संघर्ष और मधुकाव्य :**

1930 से ही घर की आर्थिक स्थिति और अधिक नाजुक हो गयी थी। इसी संघर्ष क्रम में बच्चन को पायनियर प्रेस में टूरिंग रिप्रेजेन्टेटिव एजेन्ट और संवाददाता की नौकरी मिल गयी। यहाँ वेतन 100/- मासिक था। जीवन को एक चुनौती मानकर कवि उसमें जुट गया। आर्थिक स्थिति थोड़ी संभली। "रूबाइयत के अनुवाद ने हृदय की बन्द सुराही के मुँह से ढक्कन खींच लिया था और मधुशाला की धारा बह चली थी- मधुशाला के रूप में।"[3] इस घर में उफान आया कवि की तत्कालीन तनावपूर्ण और कुंठित मानसिक स्थिति से। दिन भर गली-मुहल्लों की खाक छानता अतृप्त युवक रात में कुछ देर के लिए अनुभव का कवि हो जाता था। दिन भर की दबी प्रेरणाएं मधुशाला की पंक्तियाँ बनकर कागज पर उतरने लगीं। अपने यथार्थ जीवन में कवि जोन पा सका उस तृप्ति को वह अचेतन कल्पना के माध्यम से पाने की कोशिश करने लगा। खैयाम का खुमार तो चढ़ ही चुका था। स्वयं बच्चन के अनुसार मधुशाला में मेरे चेतन, अवचेतन, अतिचेतन, संस्कार अनुभूति में संचित स्मृति, कल्पना, भय, आशा-निराशा, वेदना-संवेदना, हर्ष-विमर्श, संघर्ष, संमोह-व्यामोह, विद्रोह सबका

---

1. बच्चन, निशा-निमंत्रण, (भूमिका) रचना-01, पृ0-152
2. बच्चन, आरती और अंगारे, रचना-2, पृ0 203

बड़ा क्षरण हुआ– कैथारसिस परगेशन रेचन ।[1]

जीवन गत उक्त विवशताओं के साथ ही खैयाम के प्रतीकों के सहारे अपना निजी कुछ सृजन करने की ललक भी मधुशाला के सृजन का एक कारण रहा होगा। पायनियर प्रेस में भी रूकना भाग्य में नहीं था। पायनियर से नौकरी समाप्त परन्तु उसी माह अभ्युदय में 50/– मासिक वेतन पर काम मिल गया। मधुशाला कोमिल रही चरम लोकप्रियता से कवि के आत्मविश्वास में वृद्धि हुई ।

<u>श्रीकृष्ण और प्रकाशो प्रकरण</u> :

अभ्युदय प्रेस की नौकरी छोड़कर 1934 में बच्चन ने अग्रवाल विद्यालय में हिन्दी अध्यापक के रूप में पढ़ाना शुरू किया। स्कूल मास्टर काडल जीवन, पत्नी की बीमारी वृद्धि और इलाज न करवा पाने की विवशता के बीच किसी तरह सामंजस्य बैठाते बच्चन के जीवन में प्रकाशो का आगमन सृजन की प्रेरणा सिद्ध हुआ। श्रीकृष्ण एवं प्रकाशों से वह पहले अपने काव्य गोष्ठियों के दौरों के दौरान कई बार मिल चुके थे। श्रीकृष्ण के प्रति उनका सहज आकर्षण उसका कर्कल के रूप में साम्य होना था। प्रकाशो एक क्रान्तिकारी महिला थी। एक दिन श्रीकृष्ण प्रकाशो को साथ लेकर कवि के घर पहुँचा। प्रकाशो कुछ दिन बच्चन के ही घर में रही। कवि के शब्दों में "मेरे आंगन में एक ओसकी बूँद टपकी और देखते ही देखते उसने प्लावन का रूप ले लिया।"[1] प्रकाशो (मधुबाला) के आने से कवि के घर का ढाँचा ही बदल गया। कदाचित रानी (प्रकाशो) के कवि के निकट से निकटतर आने से ही मधुबाला के गीतों में मधुजन्य मादकता की प्रेरणा मधुबाला भोगेच्छा का मूर्त सम्मोहक रूप लेकर प्रकट हुई है। इसी राग की आँच से "मधुबाला" की उल्लास चपल उन्माद तरल हाला उपजी है।

मधुबाला के प्रायः सभी गीत उसी काल में रचे गये। रानी और बच्चन के रागात्मक सम्बन्ध काफी बढ़ जाने एवं समाज द्वारा उस पर व्यंग्य कटाक्षों पर कवि

---

1 बच्चन, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, पृ0–280

की विद्रोही प्रतिक्रिया भी "मधुबाला" में काव्य पा गयी। इस दृष्टि से "प्यास" और "पाटलमाल" जैसी कविताएं उल्लेखनीय है। श्रीकृष्ण और रानी को लेकर बच्चन को कुछ कटु अनुभव हुए और इससे पहुँचे गहरे मानसिक तनाव का जीवंत रूप मधुबाला के प्रलाप में देखा जा सकता है। इस तीव्रतम अनुभवों से गुजरने के बाद बच्चन पुन: संभले और स्वयं "मधुबाला" को प्रकाशित कराया। मधुशाला की अत्यधिक बिक्री से कवि का आत्मविश्वास दृढ़ ।

**बच्चन को क्षयरोग :**

अप्रैल 1935 में बच्चन इंदौर में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कवि सम्मेलन में गये। वहाँ से लौटे तो बुखार में, जाँच करने पर पता चला क्षय रोग। आराम आवश्यक था– पर साथ ही सिर चढ़े कर्ज, नाजुक आर्थिक स्थिति, उस पर मंहगे इलाज का खर्च की चिन्ता। इसी मौत की छाया में लिखा गया गीत "इस पार उस पार" (मधुबाला)। इस बार श्यामा ने अपनी बीमारी अपनी इच्छा शक्ति से दबा ली और तन मन से पति की सेवा में लग गयी। बच्चन ने मंहगी दवाओं द्वारा इलाज अस्वीकार कर दिया और लुई कुने के पानी के इलाज से स्वयं को रोग मुक्त किया।

**श्यामा की बीमारी और मृत्यु :**

जिस दिन बच्चन पूर्णरूप से स्वस्थ हुए सामान्य भोजन किया। 15 अप्रैल 1936 । ठीक उसी दिन से श्यामा बीमार पड़ गयी और फिर कभी न उठ सकी। 216 दिन की बीमारी के बाद उनकी मृत्यु हो गयी। श्यामा को आंत्रक्षय हो गया था। पटना में श्यामा का आपरेशन भी करवाया गया परन्तु विफल रहा। एक ओर श्यामा की बीमारी दूसरी ओर विषम आर्थिक स्थिति इन्हीं तनावपूर्ण और संघर्षमय मन:स्थिति में "मधुकलश" के गीत रचे गये। "मधुबाला" भी 1936 में प्रकाशित हो चुकी थी। "मधुशाला" और "मधुबाला" पर आलोचकों द्वारा विभिन्न आरोप लगाये गये। कवि अपने को उन

द्वेष प्रेरित कट्टरपं ी आरोपों के प्रत्युत्तर देने से रोक न सका। "मधुकलश" के कवि की वासना, कवि की निराशा, कवि का उपहास, पथ भ्रष्ट आदि गीत इन्हीं आरोपों के प्रतिक्रिया स्वरूप लिखे गये।

इस संघर्षपूर्ण मन:स्थिति में अभिव्यक्ति का एक अन्य रूप भी "मधुकलश" में दृष्टव्य है। तत्कालीन संघर्षपूर्ण चुनौतियों एवं श्यामा की बीमारी का सामना करने के लिए कवि अपने साहस बल का संचय करता है। इस अडिग आत्मविश्वास की अभिव्यक्ति 'लहरों का निमंत्रण,' 'मांझी' आदि कविताओं में हुई।

## अध्ययन का पुनरारम्भ

श्यामा की मृत्यु ने बच्चन को बुरी तरह झकझोर दिया। युग जीवन की निराशा को आत्मसात कर मस्ती के गीत गाने वाले कवि बच्चन के जीवन में इस घटना से भयंकर मानसिक आघात लगा और वह लगभग उन्माद की स्थिति में आ गये। कई महीने तक एक विचित्र सी भाव शून्य दशा में पड़े रहे। परन्तु समय सबसे बड़ा चिकित्सक है धीरे-धीरे बच्चन निष्क्रियता की परिधि से बाहर निकले तो अनायास एक दिन कविता की पंक्ति अन्दर से फूट पड़ी। यह "निशा निमंत्रण" की पहली पंक्ति थी, और साथ ही कवि का अपने काव्य यात्रा के दूसरे चरण में प्रवेश ।

अपने मन को राहत देने के उद्देश्य से बच्चन ने कवि सम्मेलनों में जाना शुरू किया। वहाँ अपने जीवन की कोई सार्थकता का बोध होता। बरेली से जुड़ी एक दुघर्टना (एक भावुक युवक द्वारा आत्म हत्या) ने कवि को अपनी कविता पर पुनर्विचार करने पर विवश किया। अपनी कविता की संभावित विकृत का विश्लेषण करने के बाद कवि ने स्वस्थ प्रकृतिस्थ हो अपने पुनर्निर्माण का निश्चय किया। छोड़े हुए अध्ययन का पुनरारम्भ करके उन्होंने एम0ए0 (अन्तिम) पूरा करने का निर्णय लिया।

श्यामा की मृत्यु के बाद कवि के जीवन में शून्यता और अवसाद का जो अंधकार व्यापा और इसमें आंशिक तौर पर देश के तत्कालीन राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियों

से उत्पन्न कुंठा और निराशा का भी कुछ हाथ था। जिसकी अभिव्यक्ति निशा-निमंत्रण, एकांत-संगीत और आकुल-अंतर में मिलती है। वास्तव में इन तीनों संग्रहों में एक सांगिक सम्बन्ध। इन तीनों रचनाओं की इकाई जीवन के गहनान्धकार में पैठने, उससे संघर्ष करने और उससे बाहर निकलने की भाव यात्रा है। निशा-निमंत्रण उसकी पहली कड़ी है।

एम0ए0 का रिजल्ट आया, कवि द्वितीय श्रेणी में पास हुआ। प्रथम श्रेणी न आने से विश्वविद्यालय में नियुक्ति लगभग असम्भव थी। अतः बच्चन ने बनारस से बी0टी0 करने का निश्चय किया। ट्रेनिंग के लिए बनारस पहुँचने पर पहले ही दिन उन्होंने एक कविता लिखी- "अब मत मेरा निर्माण करो"[1] यह एकान्त-संगीत की पहली कविता थी। एक तरफ ट्रेनिंग कालेज का कठिन जीवन दूसरी ओर कवि की अंतरंग भावनाओं, कल्पना और सृजन का आवेग। एकांत संगीत के 44 गीत बनारस में ट्रेनिंग के दौरान ही लिखे गये। इस तनाव पूर्ण सृजन के सम्बन्ध में बच्चन स्वयं लिखते हैं- पायनियर के गश्ती एजेन्ट के रूप में कार्य करते हुए मैंने मधुशाला लिखी थी, अभ्युदय प्रेस में क्लर्की और अग्रवाल स्कूल को मदिरिसी कहते हुए मैंने मधुबाला के गीत गाये थे, रूग्ण पत्नी के उपचार में रात दिन लगे हुए मैंने मधुकलश की कविताएं लिखी थी। एम0ए0 फाइनल की परीक्षा की तैयारी करते हुए मैंने निशा-निमंत्रण की रचना की और अब ट्रेनिंग कालेज के प्रशिक्षार्थी जीवन एक अर्थ में सफलता से जीते हुए मैंने एकान्त संगीत के गीत गुनगुनाए।"[2]

बनारस से लौटने पर बच्चन का एकाकीपन सहसा ही बढ़ गया। यद्यपि कवि को संवेदनशील साथ मिल गया था फिर भी एकाकीपन की स्थिति से समझौता असाध्य लगता था और इसी तनाव में वह एकांत संगीत के गीत गुनगुना रहा था। अपनी वेदना को वाणी देकर उसे राहत मिल रही थी।

---

1. बच्चन- एकान्त संगीत, बच्चन रचना-1, पृ0 -215
2. बच्चन - नीड़ का निर्माण फिर, पृ0-123

बच्चन बी0टी0 में उत्तीर्णहो गये। स्थानीय इलाहाबाद स्कूल में जिसमें वे एक साल काम कर चुके थे उन्हें 100/- रू0 माहवार की नौकरी मिल गयी। लेकिन उसी साल इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के अस्थायी लेक्चरर के पद पर काम करने का अप्रत्याशित प्रस्ताव पाकर बच्चन विश्वविद्यालय में नियुक्त हो गये।

बच्चन ने अपने कटघर के दुखद स्मृतियों से जुड़े घर से विदा ली और विश्वविद्यालय के पास नरेन्द्र शर्मा के साथ रहने लगे। इधर बच्चन की पुस्तकों की बिक्री से आर्थिक निश्चिलंता आयी और उधर बच्चन की पढ़ाई भी पूरी हो चुकी थी। ऐसे में उनका एकाकी पन उदासी, मानसिक अंधकार सहज ही अधिक बढ़ गया।

आइरिस प्रेम प्रसंग एक मृग मरीचिका :

1939 में एक मित्र के यहाँ बच्चन का परिचय आइरिस तालुबुद्दीन से हुआ। बच्चन आइरिस के प्रति सहज ही आकर्षित हुए। यही आकर्षण कालान्तर में प्रेम में परिणत हो गया। आइरिस भी बच्चन को पसन्द करती थी यह जानकर बच्चन धर्म परिवर्तन तक करने को राजी हो गये। परन्तु आइरिस की ओर से इस सम्बन्ध में कोई दिलचस्पी न लेने से उनके बीच की दूरी ज्यों की त्यों बनी रही। अन्ततः 1941 अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में कवि का आइरिस से मिलना और जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्न विवाह के सम्बन्ध में "हाँ" या "ना" में उत्तर चाहने पर आइरिस द्वारा "ना" ने उत्तर दिये जाने से कवि का मोह भंग। इस सम्पूर्ण संघर्षमय मृग तृष्णा की तरह का प्रणय प्रसंग और उसकी अनुगूँज आकुल अन्तर में स्पष्टतः सुनी जा सकती है।

1940 में अस्थायी जगह खाली न रहने से बच्चन को ईट्स पर शोध कार्य करने के लिए छात्रवृत्ति प्रदान कर दी गयी। इस दौरान डा0 अमरनाथ झा द्वारा बच्चन को नीलम प्रजेन्ट करना और 1941 में अंग्रेजी विभाग में लेक्चरर की स्थायी जगह मिलना दो प्रमुख घटनाएं घटीं।

पिता की मृत्यु :

नए मकान में आने के अगले ही दिन 10 अक्टूबर 1941 को बच्चन के पिता की मृत्यु हो गयी। बच्चन ने ग्लानि का अनुभव किया– धर्म परिवर्तन सम्बन्धी

प्रस्ताव से उन्हें आघात लगा था और वे बीमार पड़ गये थे। आइरिस से प्राप्त निराशा और पिता की मृत्यु दोनों ने कवि को उदासीन बना दिया और सुख–दुख दोनों से ऊपर उठकर/बिना शिकायत के कुछ भी सहन करने का धैर्य प्रदान किया। अपने अंधकार से साहसपूर्वक जूझते हुए उससे बाहर निकलने की अकुलाहट और विश्व की वेदना के प्रति कवि के जाग्रत ममत्व– आहत की आहत के प्रति संवेदना– के साक्ष्य आकुल– अन्तर के उत्तरार्द्ध के गीत है।

इस प्रकार जीवन बोध के प्रथम क्षण से लेकर कुकरहा घाट (मुट्ठीगंज, प्रयाग का यमुना तटीय श्मशान घाट) से कर में चिता की राख लेकर लौटने तक बच्चन की जीवन यात्रा का एक चरण है। इसके बाद मधुकलश टूट जाने पर उत्पन्न हताशा, निराशा और झुंझलाहट का काल है जो तेजी बच्चन के उनके जीवन में आने के पूर्व का चरण है। तीसरा चरण प्रारम्भ होता है बच्चन के जीवन में तेजी सूरी के आने के बाद ।

<u>नीड़ का निर्माण फिर</u> :

बड़े दिन की छुट्टियों में अपने मित्र ज्ञान प्रकाश जौहरी का अर्जेन्ट तार पाकर 31 दिसम्बर 1941 को प्रातः बच्चन बरेली के लिए रवाना हो गये। वहाँ उनका परिचय मिस तेजी सूरी से कराया गया जो प्रकाश की पत्नी हेमा की सहेली थी। बच्चन तेजी के प्रथम दर्शन से ही अभिभूत हो गये। आधी रात को सबकी इच्छानुसार बच्चन के काव्य पाठ से नववर्ष का प्रारम्भ बच्चन का वेदना विगलित स्वर– क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी क्या करूँ – उस नयन में वह सकी कब इस नयन की अश्रुधारा – परन्तु यहाँ जीवन ने कविता को झुठला दिया। कविता के पूरी होते न होते मिस तेजी की आँखे डबडबा आईं; गायक कवि भी भाव विह्वल हो उठा जाने कब सब कमरे से बाहर चले गये और बच्चन और तेजी एक दूसरे से लिपटे रो रहे थे, आंसुओं के पावन संगम में मिलकर अभिन्न। चौबीस घण्टे पहले जो अनजाने थे, वे नववर्ष के नव प्रभात में जीवन साथी बनकर कमरे से निकले। प्रकाश ने दोनों की सगाई की घोषणा कर दी। 24 जनवरी 1942 को बच्चन और तेजी की शादी हो गयी।

तेजी को पाकर कवि की सही नारी की तलाश पूरी हुई। तेजी के रूप में कवि के जीवन में पहली बार ऐसी नारी आई जिसे वह एक साथ देवि, माँ, सहचरि और प्राण कह सकता था। बच्चन तेजी को किसी वरदान सदृश पा गये। अपने प्रति तेजी के अनायास "अद्‌भुत" हार्दिक व्यवहार का विश्लेषण बच्चन ने इस प्रकार किया है– मुझे प्रम से अधिक करूणा की आवश्यकता थी, मातृविहीन तेजी अपने मातृसम हृदय और सहज अभिजात्य गुण से उन्मुक्त करूणा दे सकी।"[1] दूसरे, तेजी में अन्तर्निहित पुरूष प्रधानता और बच्चन में अन्तर्निहित नारी प्रधानता भी उनके अनायास आकर्षण का कारण रही होगी।

तेजी के आगमन से बच्चन के जीवन में एक नया मोड़ आया। वह एक बार पुनः राग रंग में डूब गये। इस मोड़ की सूचना सतरंगिनी देती है। वस्तुतः संतरंगिनी पुरानी रागात्मकता (आइरिस) और नई रागात्मकता (तेजी) के सामंजस्य का काव्य है। नई रागात्मकता की पृष्ठभूमि में पुरानी रागात्मकता की अनुगूंज सतरंगिनी में स्पष्टतः सुनी जा सकती है। इस दृष्टि से नागिन (प्रमदा) और मयूरो (परिपीता) की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भी उल्लेख्य है।

बच्चन का जीवन अब नवल रंगों से भर उठा था। बच्चन ने अपने तत्कालीन जीवन के बारे में लिखा है– "अब मेरा व्यवस्थित जीवन था, मैं एक स्वतन्त्र, स्वच्छ, सुरूचि सम्पन्न घर में रहता था, घर में मेरी सुन्दर, स्नेहमयी, प्रसन्न वदना संगिनी थी और सबके ऊपर आज कल में नव–जीवन के नव कल्लोल से यह घर गूँजने वाला था।"[2] अक्टूबर 1943 को पुत्र की प्राप्ति हुई। पंत जी ने नाम दिया अमिताभ।

पिता बनकर बच्चन की मूल अनुभूति यह थी कि जैसे अब तक एकाकी था अब समाज से जुड़ गया हूँ। पहले अतीतोन्मुखी था अब भविष्य से भी उनकी दृष्टि जुड़ गयी है।

---

1. बच्चन, नीड़ का निर्माण फिर, पृ0–244
2. वही, पृ0– 289

1943 में गर्मियों में बच्चन का युनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर में सहसा अन्डर आफीसर बनकर शामिल होना और प्राथमिक प्रशिक्षण हेतु महू जाना पड़ा। 1943–44 के सत्र की महत्वपूर्ण घटना थी "बंगाल का काल" की रचना। सुव्यवस्थित परिवार से जुड़कर विशेषतः पिता होने के बाद अपने समाज, समष्टि और मानवता से सम्बद्ध हो जाने की भावना की ओर जो संकेत दिया है, बंगाल का काल में उसका पहला परिचय मिलता है।

**नव मृत्यु बोध और हलाहल :**

बच्चन के काव्य जीवन के हलाहल (रचनाकाल 1936–45) की स्थिति समझने हेतु हमें थोड़ा पीछे मुड़कर देखना होगा। सन् 1935–36 में जब जीवन की एक मार्मिक चोट और भीषण व्याधि के एक दारूण दौर से कवि गुजर रहा था उस समय हलाहल "मरण" का प्रतीक बनकर कवि के मानस में उभरा। उस समय रचित 15 पद जो कि सरस्वती में प्रकाशित हुए थे को छोड़कर सभी रचनाएं दीमकों द्वारा चट कर गयी।

दिसम्बर 1994 में बच्चन की माता जी बीमार पड़ीं। दीर्घकाल तक अपनी माता जी की सेवा के दौरान कवि के लिए मृत्यु का एक नया अर्थ खुला। श्यामा की भयातुर, विवश, मृत्यु शैय्या की तुलना में शान्त, निर्लिप्त, निर्भय, मृत्यु शैय्या। इसी मनःस्थिति में अपूर्ण एवं विनष्ट "हलाहल" की पंक्तियाँ कवि के कानों में गूँजने लगी और इस प्रकार 1945 में जाकर यह रचना पूर्ण हुई। मूलतः हलाहल में कवि के जीवन की भावधारा है, हाला की मादकता के बाद हलाहल का कटु–तिक्त बोध।

सिविल लाइन्स में आकर बच्चन का परिवार बिल्कुल अकेला पड़ गया। कवि ने रूढ़िमुक्त हो स्वाध्याय सृजन में इस माहौल को उपयुक्त पाया। इन्हीं दिनों "बुद्ध और नाचघर" की कविताओं की रचना प्रारम्भ की। अमिताभ का नाम स्कूल में लिखवाया। "अमिताभ बच्चन", यहीं से नए बच्चन परिवार की शुरूआत हुई।

1947 का काल देश में स्वतंत्रता आन्दोलनका जोर साम्प्रदायिक दंगे, देश–विभाजन आदि का समय रहा है। 1947 में ही बच्चन के दूसरे पुत्र अजिताभ बच्चन का जन्म हुआ। देश विभाजन, स्वतन्त्रता प्राप्ति की घटनाओं और तत्कालीन वातावरण पर कवि की प्रतिक्रिया "धार के इधर उधर" में दृष्टव्य है। 30 नवम्बर 1948 को गाँधी जी की हत्या ने कवि को स्तब्ध कर दिया सात दिन के मौन के बाद श्रृद्धांजलि के रूप में "खादी के फूल" और बलिदान से सम्बद्ध घटनाओं पर "सूत की माला" की रचना की। दोनों संग्रहों में बापू के बलिदानके प्रति कवि की प्रतिक्रिया व्यक्त हो हुई है। 1948 में बच्चन क्लाइव रोड स्थित मकान में आ गये। यही रहते हुए "मिलन–यामिनी" का प्रकाशन किया।

राग के संसार की मुक्त अनुभूति :

बच्चन के जीवन में तेजी अनायास, अचानक, अप्रत्याशित रूप से आई थी। विवाह के बारह वर्ष बाद तक उनके प्रेयसी रूप पर प्रेम गीत लिखकर (संत–रंगिनी, मिलन यामिनी और प्रणय पत्रिका) कवि ने उनके प्रति अपनी मनुहार या कृतज्ञता व्यक्त की है। कवि स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से धर्मशाला गये वहीं पर उन्होंने मिलन यामिनी को पूर्ण क्रमबद्ध किया। मिलन यामिनी के प्रकाशन के बाद कवि मन में एक भाव बड़े वेग से उठने लगा कि जीवन की जिस ललक को तरह–तरह के विरोधों के बीच उसने वाणी दी है उसके मूल स्रोत देखें। प्रणय पत्रिका में वह अनुभूतियों के आधार पर इस राग के संसार के नैतिक तंतुओं को पकड़ना, समझना और उन्हें प्रस्थापित करना चाहता था। सहसा एक राह निकल आई। बच्चन ने दस वर्ष पूर्व जो बिलियम वटलर ईट्स पर जो शोध कार्य शुरू किया था उसे पूरा करने का निश्चय किया और वे 2 वर्ष के लिए इंग्लैण्ड और आयरलैण्ड जा पहुँचे।

प्रवास :

बच्चन अप्रैल 1952 में विलियम बटलर ईट्स पर "ईट्स एण्ड आकल्टिज्म" विषय पर शोध कार्य हेतु इंग्लैण्ड रवाना हुए। अपने प्रवास के दौरान "प्रणय–पत्रिका" और "आरती और अंगारे" का सृजन किया। इंग्लैण्ड प्रवास का सूक्ष्म प्रभाव कवि के जीवन और काव्य दोनों पर पड़ा। यहीं पर बच्चन जी ने मुक्त छंद में लिखना शुरू

19.,7 का काल देश में स्वतंत्रता आन्दोलनका जोर साम्प्रदायिक दंगे, देश–विभाजन आदि का समय रहा है। 1947 में ही बच्चन के दूसरे पुत्र अजिताभ बच्चन का जन्म हुआ। देश विभाजन, स्वतन्त्रता प्राप्ति की घटनाओं और तत्कालीन वातावरण पर कवि की प्रतिक्रिया "धार के इधर उधर" में दृष्टव्य है। 30 नवम्बर 1948 को गाँधी जी की हत्या ने कवि को स्तब्ध कर दिया सात दिन के मौन के बाद श्रृद्धाजंलि के रूप में "खादी के फूल" और बलिदान से सम्बद्ध घटनाओं पर "सूत की माला" की रचना की। दोनों संग्रहों में बापू के बलिदानके प्रति कवि की प्रतिक्रिया व्यक्त हो हुई है। 1948 में बच्चन क्लाइव रोड स्थित मकान में आ गये। यही रहते हुए "मिलन–यामिनी" का प्रकाशन किया।

**राग के संसार की मुक्त अनुभूति** :

बच्चन के जीवन में तेजी अनायास, अचानक, अप्रत्याशित रूप से आई थी। विवाह के बारह वर्ष बाद तक उनके प्रेयसी रूप पर प्रेम गीत लिखकर (संत–रंगिनी, मिलन यामिनी और प्रणय पत्रिका) कवि ने उनके प्रति अपनी मनुहार या कृतज्ञता व्यक्त की है। कवि स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से धर्मशाला गये वहीं पर उन्होंने मिलन यामिनी को पूर्ण क्रमबद्ध किया। मिलन यामिनी के प्रकाशन के बाद कवि मन में एक भाव बड़े वेग से उठने लगा कि जीवन की जिस ललक को तरह–तरह के विरोधों के बीच उसने वाणी दी है उसके मूल स्रोत देखें। प्रणय पत्रिका में वह अनुभूतियों के आधार पर इस राग के संसार के नैतिक तंतुओं को पकड़ना, समझना और उन्हें प्रस्थापित करना चाहता था। सहसा एक राह निकल आई। बच्चन ने दस वर्ष पूर्व जो बिलियम वटलर ईट्स पर जो शोध कार्य शुरू किया था उसे पूरा करने का निश्चय किया और वे 2 वर्ष के लिए इंग्लैण्ड और आयरलैण्ड जा पहुँचे।

**प्रवास** :

बच्चन अप्रैल 1952 में विलियम बटलर ईट्स पर "ईट्स एण्ड आकल्टिज्म" विषय पर शोध कार्य हेतु इंग्लैण्ड रवाना हुए। अपने प्रवास के दौरान "प्रणय–पत्रिका" और "आरती और अंगारे" का सृजन किया। इंग्लैण्ड प्रवास का सूक्ष्म प्रभाव कवि के जीवन और काव्य दोनों पर पड़ा। यहीं पर बच्चन जी ने मुक्त छंद में लिखना शुरू

किया। अपने देश में जिस प्रणय पत्रिका की कल्पना कवि ने की थी उसे पूरा करने का, अपनी परिणीता से दूर विदेश में प्रणय पाती के रूप में भी सार्थक आधार मिल गया। विदेश में रचित इन कविताओं में बच्चन का सारा जीवन परिवेश व्यक्त हुआ है।

विदेश से लौटकर बच्चन एक वर्ष तक अपने पूर्व पद (लेक्चरर) पर कार्य किया। उसके बाद आकाशवाणी में काम करने का प्रस्ताव आया तो उन्होंने लेक्चरशिप छोड़ दी। कुछ दिन आकाशवाणी में कार्य किया।

<u>इलाहाबाद से दिल्ली</u> :

1955 के दिसम्बर माह में भारत सरकार की ओर से बच्चन को विदेश मंत्रालय में हिन्दी विशेषज्ञ के पद पर कार्य करने का प्रस्ताव आया। इलाहाबाद में रहते हुए अपने प्रति उपेक्षा और सहकर्मियों के जलन आदि से खिन्न हुए बच्चन ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। बच्चन के प्रवास के दौरान उनके परिवार को जो भी मुसीबतें उठानी पड़ी थी उसके कारण वे इलाहाबाद में रहना नहीं चाहते थे। अतः इलाहाबाद से दूर होने का एक सुनहरा मौका जान बच्चन ने दिल्ली जाने का निश्चय कर लिया।

**<u>बदलती भंगिमाएँ: त्रिभंगिमा</u>** :-

दिल्ली आकर जो पहला काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ वह था "त्रिभंगिमा"। इस कृति में कवि के नए जीवन कोण साफ उभर कर आये हैं। यह उनके मानसिक जीवन में आए परिवर्तन की शुरूआत है। अब कवि के अन्दर आध्यात्मिकता की सुगबुगाहट होने लगी थी। इसी समय बच्चन का परिचय ब्रह्मस्वरूप श्री स्वामी जी से हुआ उनकी प्रेरणा से कवि न "नागर गीता" और " जन-गीता" लिखी। उनके परवर्ती काव्य में आए इस बदलाव का कारण उनकी परिवर्तित जीवन स्थिति और उनकी प्रौढ़ अवस्था थी।

जीवन की साँझः धियाँ और सच्चाई :

"दो चट्टानें" के रचनाकाल से ही बच्चन के कवि को अपनी आई खड़ी जीवन की साँझ का कटु अहसास होने लगा था–

"आई खड़ी जीवन की सांझ है"

चुका चुका आज है।

कवि आज विगत समृतियों में डूबा रहने लगता है। वृद्धावस्था को शिथिलता और चुक जाने की टीस उत्तरोत्तर बढ़ती गयी है। अब उनका जीवन कर्म नहीं है चिन्तन है, काव्य नहीं है, दर्शन है। कवि आज वर्तमान से क्षुब्ध है और असंतुष्ट रहता है परन्तु अतीत के सम्मोहन से उबर नहीं पाता। इस कारण वह सर्जनात्मक स्तर पर संघर्ष नहीं कर पाता।

दिल्ली से बम्बई :

अप्रैल 1972 में अपनी राज्य सभा की सदस्यता की अवधि पूरी कर बच्चन दिल्ली से बम्बई अपने बेटे अमिताभ के पास रहने चले गये। अब वे जीवन की शांत निर्द्वन्द्व और सृजन तुष्ट मनःस्थिति में हैं। अब तक उनका कवि "मौन" को शब्द मुखर करता था अब वे शब्द को भी मौन में जीते है। बच्चन का अन्तिम काव्य संग्रह "जाल समेटा" की अन्तिम कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

अपनी आत्म कथा में उन्होंने एक जगह कहा है– मैं कलाकार के लिए सृजन से मुक्ति की कल्पना भी करता हूँ, पर उस अवस्था में उसकी साँस–साँस सृजन हो जाती है। तब वह कहीं अपने में खालीपन का अनुभव नहीं करता। हर समय अपने को भरा, परिपूर्ण और परितुष्ट पाता है।[1] बच्चन ने कभी "हलाहल" में लिखा था–

"हुआ करती जब कविता पूर्ण
हुआ करता कवि का निर्वाण।"[2]

---

1. बच्चन– नीड़ का निर्माण फिर, पृ0–356

2. बच्चन, हलाहल, बच्चन रचनावली–1, पृ0– 396

कवि का निर्वाण तभी सम्भव है जब उनकी कविता उसके लिए मर जाए मिट जाए। जब कवि कविता से मुक्त हो जाए।

शायद बच्चन कवि के "निर्वाण सम्बन्धी अपनी उक्त कल्पना की स्थिति को अपने जीवन में पा चुके हैं या उसके आस–पास हैं।

आज बच्चन अपनी इस संभावित कल्पना को अपने लिए अक्षरशः साकार होता देख रहे हैं। उन्होंने अपने काव्य जीवन यात्रा का वृत्त पूर्ण कर लिया है। अब समाधिस्थ हो अपने जीवन महाकाव्य का वृत्त पूरा होने की प्रतीक्षा में हैं।

सम्मान, पुरस्कार और विदेश यात्राएं :

अप्रैल सन् 1966 में राष्ट्रपति ने बच्चन को राज्यसभा का सदस्य मनोनीत किया और उन्होंने सरकारी सेवा से अवकाश ग्रहण किया। 1966 में ही "चौंसठ रूसी कविताएं" (अनुवाद) पर "**सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार**" तथा "दो चट्टानें" पर "**साहित्य अकादमी**" पुरस्कार मिला। इसी वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा उन्हें **साहित्य वाचस्पति** की उपाधि से विभूषित किया गया।

सन् 1970 में एफ्रोएशियन राइटर्स कान्फ्रेस द्वारा "लोटस" पुरस्कार प्राप्त हुआ। ये सम्मान और पुरस्कार बच्चन को उनकी साठ वर्ष की उम्र के आस–पास मिले। एक तरह से ये पुरस्कार उनके कवि की व्यापक लोक स्वीकृति को रेखांकित करने का औपचारिक रूप था।

सन् 1976 में बच्चन को "पद्म विभूषण" से अलंकृत किया गया। यह उनके कवि जीवन का सबसे बड़ा पुरस्कार था।

सन् 199.1 में बच्चन को अपनी आत्मकथा –"दशद्वार से सोपान तक" के लिए "सरस्वती सम्मान" प्राप्त हुआ।

विदेश यात्राएं :

सर्वप्रथम शोधकार्य के सिलसिले में इंग्लैण्ड की यात्रा एवं प्रवास। 1959 में भारतीय शिष्ट मण्डल के सदस्य के रूप में बेल्जियम की यात्रा की एवं व्यक्तिगत रूप से फ्रांस इटली हालैण्ड की भी यात्रा की। 1967 में शिक्षा मंत्रालय की ओर से रूस, मंगोलिया, पूर्वी जर्मनी और चेकास्लोवाकिया की सद्भावना यात्रा की। 1968 में भारतीय शिष्ट मण्डल के नेता के रूप में अफ्रो-एशियन राइटर्स कांफ्रेंस बेरूत में भाग लिया।

अपने अनवरत सृजन और इस सारे सम्मान, लोकप्रियता और प्रतिष्ठा के बावजूद भी बच्चन सन्तुष्ट नहीं हैं। जीवन की कितनो ही सच्चाइयों को शब्द सूत्र में बाँधने क बाद भी उनमें कहीं न कहीं असंतुष्टि का भाव विद्यमान है। उन्हें लगता है कि वे जो कुछ कहना चाहते थे कह नहीं पाये और जीवन भर केवल शब्दों को पीटते-घसीटते रहे। स्वप्न -सत्य के संघर्षो में उलझे कवि का यह संघर्ष उसके रीतेपन के एहसास को और तीव्र कर देता है। दरअसल यह रीतेपन का दंश अपनी वांछित उपलब्धि न प्राप्त कर सकने का कटु आभास और तज्जन्य असंतोष बच्चन के कवि के मोहभंग की पूर्व भंगिमा है। मोह से प्रारम्भ हुई उनकी कविता मोहभंग पर समाप्त हो गयी।

अब शायद कवि जीवन के उस मोड़ पर पहुँच गया है जहाँ से कविता से भी ऊँचे शिखर दिखाई देने लगते हैं। शायद निर्वेद के, आत्मस्थ होने के, अपरिग्रह के। बच्चन को कविता से सब कुछ मिला- प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि, पुरस्कार, जनता का प्यार एवं पाठकों का आदर। लेकिन अब वे उस मन:स्थिति में पहुँच गये हैं जहाँ ये सभी बाते अर्थहीन हो जाती हैं। इस मन:स्थिति में आने पर पूर्व का उपलब्धिगत असन्तोष व रीतेपन का एहसास न केवल समाप्त हो गया है बल्कि अब वह एक शांत सृजनतोष में बदल गया है।

****

## अध्याय – द्वितीय

## "बच्चन का काव्य विकास और वस्तुगत आयाम"

आधुनिक हिन्दी काव्य धारा में "हालावाद" के सूत्रधार बच्चन की काव्य यात्रा उनके व्यक्तित्व के समान ही परिवर्तनशील है। जीवनानुभूतियों से प्रेरणा ग्रहण करने के कारण उनके काव्य में भी उनके जीवन की ही भाँति परिवर्तन और उतार–चढ़ाव दृष्टिगत होता है। उनकी काव्यधारा में विविध भावों की भंगिमाएं है। कहीं युग चेतना का प्रवाह है तो कहीं प्रणय की रागिनी, कहीं मधुशाला की मस्ती है तो कहीं निराशा की काली रात, कहीं परम्पराओं के प्रति विद्रोह है तो कहीं नित नूतन प्रयोगशीलता। इस प्रकार बच्चन को काव्य यात्रा के विभिन्न सोपान क्रम है। इस सम्पूर्ण भाव धारा को विकास क्रम में ही समझा जा सकता है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम सम्पूर्ण काव्यधारा को 5 चरणों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम चरण मधु काव्य का है जिसके अन्तर्गत मधुशाला; मधुबाला तथा मधुकलश इन तीन काव्य संग्रहों की रचना हुई है। द्वितीय चरण में "निशा निमंत्रण", "एकान्त संगीत" एवं "आकुल अंतर" काव्य संग्रहों की रचना हुइ है। तृतीय चरण में सतरंगिनी, हलाहल, मिलन यामिनी एवं प्रणय पत्रिका की रचना हुई है। चतुर्थ चरण युग बोध चिन्तापरक काव्य है जो उपरोक्त तीनों काव्य चरणों के समानांतर चलता रहा है। "बंगाल का काल", खादी के फूल, सूत की माला, धार के इधर–उधर, आरती और अंगारे आदि काव्य संग्रह। इस चरण में रचे गये हैं। पाँचवां चरण परवर्ती काव्य का है जो चिन्तन प्रधान मुक्त छंद, परम्परा और प्रयोग का काव्य है इसमें "बुद्ध और नाच घर" त्रिभंगिमा, चार खेमे चौसंठ खूँटे, दो चट्टानें, बहुत दिन बीते, कटती प्रतिमाओं की आवाज, "उभरते प्रतिमानों के रूप आदि काव्य संग्रह है। एक अन्य चरण है जिसके अन्तर्गत बच्चन जी द्वारा अनूदित काव्य और गद्य साहित्य आते हैं। परन्तु अनूदित काव्य के मौलिक रचना न होने के कारण हमने उसे अपने शोध प्रबन्ध में स्थान नहीं दिया है।

### प्रारम्भिक रचनाएं – 1

1932 में "तेरा हार" के प्रकाशन के साथ ही काव्य जगत में बच्चन का प्रवेश हुआ। कालान्तर में तेरा हार की कविताएँ प्रारम्भिक रचनाएँ भाग–एक एवं भाग दो में संकलित कर दी गयी। इस काल की रचनाएं कवि के निर्माण काल की

रचनाएं हैं। "प्रारम्भिक रचनाएँ" भाग एक का प्रारम्भ "मंगलारंभ" से प्रारम्भ किया गया है।

कवि की इन प्रारम्भिक रचनाओं में किसी भाव धारा का कोई स्पष्ट आकार नहीं है। एक ओर निराशा, क्षय, नियति तथा क्षण भंगुरता है तो दूसरी ओर "आदर्श प्रेम", "मधुर स्मृति" तथा "याद" जैसी कविताओं में जीवन, जगत, प्रेम और प्रकृति की अभिव्यक्ति है। इस काल की रचनाएं यद्यपि छायावादी प्रभाव से युक्त है तथापि कुछ ऐसी रचनाएं भी हैं जो छायावादी प्रभाव से मुक्ति का आभास देती है। "कोयल" कविता में कवि इसी आशय की घोषणा करता है–

> बदल अब प्रकृति पुराना ठाठ
> करेगी नया नया श्रृंगार
> सजाकर निज तन विविध प्रकार
> देखेगी ऋतु पति प्रियतम के शुभागमन की बाट ।"[1]

स्पष्ट है कि यहाँ न केवल पुराने ठाठ को परिवर्तन करने की दिशा में एक सुखद आशा का आह्वान है अपितु उसकी श्रृंगार प्रियता तथा ऋतु पति प्रियतम के शुभागमन की प्रतीक्षा का भी सहज संकेत है। परन्तु कविता के अन्त तक कवि का मोह भंग होकर सीधे और सपाट यथार्थ भूमि पर उतर आता है–

> हमारे नग्न, बुभुक्षित देश,
> के लिए लाया क्या संदेश ?
> सत्य प्रकृति के बदलेगा इस दीन देश का भाग।[2]

इस काल की कविताओं में जहाँ एक ओर निराशा रही है तो दूसरी ओर दुखों के स्वागत का भाव भी है –

---

1 बच्चन: प्रारम्भिक रचनाएँ, बच्चन रचना–3, पृ0–460
2. वही, पृ0–462

जीवन ?.। तो चिन्ह यही है
खोकर फिर जग जाना
क्या अनन्त निद्रा में खोना
नहीं मृत्यु का आना ? "[1]

कवि फिर कहता है कि जगत में सभी का अपना एक आकर्षण है चाहे वह सुख हो चाहे दुख हो –

किसको जीवन अच्छा लगता
किसको प्रिय न मरण होता
यदि न जगत में सब का कोई
अपना आकर्षण होता।"[2]

प्रारम्भिक रचनाएं–1 की रचनाएं मूल रूप से प्रकृति की कविताएं हैं। जीवन प्रकाश जोशी इस प्रकार के काव्य को प्रकृत काव्य की संज्ञा से अभिहित करते हैं। इसके साथ ही कुछ कविताओं को आदर्शात्मक अथवा कलात्मक काव्य कहा जा सकता है। इस संकलन में सभी तरह की रचनाएं हैं। प्रारंपरिक, प्रगतिशील और देश–प्रेम से सम्बन्धित। "परन्तु वस्तुतः कवि की ये पारम्भिक रचनाएं यौवनारम्भ–काल की भूलों की शूलों की –फूलों की स्मृति का काव्य है, प्रेम जन्य निराशा का, शिशुवत जीवन दर्शन का, तथा इस स्थिति से अपने को बचाने के लिए मधुकाव्य की भूमिका का काव्य है।[3] कवि यहाँ आसक्ति– अनासक्ति, आशा– निराशा, कल्पना–यथार्थ और संघर्ष और शान्ति के द्वन्द्व में जीता हुआ छटपटा रहा है।

## प्रारम्भिक रचनाएँ – भाग दो

"प्रारम्भिक रचनाएं" भाग–2 में बच्चन द्वारा लिखित 1933–35 के काल में रचित कविताओं को संकलित किया गया है। इसमें कुल 39 कविताएं हैं। यह संग्रह

---

1. बच्चनः प्रारम्भिक रचनाएं–बच्चन रचनावली–3, पृ0–458
2. वही

भी श्री कृष्ण औ.: चन्द्रमुखी को समर्पित है। अधिकांश रचनाओं का विवरण इस प्रकार है– गाँधी जी के विलायत प्रस्थान पर भारत माता की विदा, गाँधी जी के जन्मदिन पर भारत माता की बधाई, यदि, सच्ची कविता, कवि और देश भक्त , हँसी और आँसू, भातृ द्वितीया, निरर्थक अश्रु, बसन्त, विडम्बना, बन्धु कवि, क्रान्ति - शान्ति, हमारी शान, पल्लव से, भेंट के फूलों से, वेदने, सौंदर्य, सुख, जौहरी, भ्रम, रज–तम, कल्पना, विश्व, आत्म समर्पण, प्रवचंना, उपवन, ग्रीष्म बयार, गीत–विहंग, गान बाल, कवि, कवि के आँसू, माली से, कवि का हृदय, आकर्षण, दीवाली, भिखारी के गीत, मातृ मंदिर, माली, सुमन, चयन, पांचजन्य, तीन रूबाइयाँ।

द्वितीय भाग की कविताओं में समसामयिक रचनाकारों का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है। "रज–तम" कविता पर "प्रसाद" की छाप है तो "गीत विहंग" "पंत" से प्रभावित। "कवि और देशभक्ति", "मातृ मंदिर" तथा "पांचजन्य" कविताएं कवि के प्रारम्भिक राष्ट्र प्रेम की उदाहरण हैं जा कि आगे चलकर "धार के इधर–उधर" में अपने परिष्कृत रूप में मिलता है। प्रारम्भिक रचनाओं के सम्बन्ध में तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में भी समीक्षाएँ प्रकाशित हुई कुछ की बानगी इस प्रकार है "तेरा हार" की समीक्षा में प्रताप ने लिखा कविता उत्तम भावों से परिपूरित है। "चाँद" ने लिखा– कविता प्रेमियों को इसे अवश्य देखना चाहिए क्योंकि ये कविताएं ताजगी का अहसास दिलाती हैं। "वीणा" ने लिखा बच्चन उन छिपे हुए सुकवियों और सुलेखकों में है जिनकी प्रतिभा का फूल खिलकर भी अपने पास में ही छिपा रहना चाहता है। "हंस" के अनुसार कवि अपने आंतरिक भावों को व्यक्त करने में सफल हुआ है। भाव भी समझने में कठिनाई नहीं होती।"[1]

इस प्रकार की कतिपय कविताओं में छायावादी काव्य शैली का स्पष्ट प्रभाव है–

---

1. बच्चनः "क्या भूलूँ क्या याद करूँ" रचना–7, पृ0–198

बन्धु व्योम प्राची–मस्तक पर छायी थी जब अँधियाली
ऊषा भगिनी ने आकर दी उस पर टीके की लाली ।
पुलकित होकर दिया व्योम ने तारक मणियों का उपहार
ग्रहण किया ऊषा ने हर्षित हो निज "अंचल धवल प्रसार"[1]

इसी प्रकार "गीत विहंगम" कविता में पंत का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है –

गीत मेरे खग बाल
हृदय के प्रांगण में सुविशाल,
भावना तरू की फैली डाल
उसी पर प्रणय नीड़ में पाल
रहा मैं सुविहग बाल।
पूर्ण खग से संसार ।[2]

प्रारम्भिक रचनाओं में कवि ने अनेक ऐसे भावों को वाणी दी है जिनका आगे चलकर विकसित रूप दिखाई देता है। राष्ट्र प्रेम के बीज कवि में प्रारम्भ से ही मौजूद थे। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

यह मृतकों का सा हुआ देश,
बिसराकर अपना वीर वेश
सब शौर्य – शक्ति नष्ट हो गयी नष्ट
बस कायरता रह गई शेष
बजकर अतीत से एक बार
दे सब के अन्दर फूँक प्राण
रे पांजन्य, कर पुनः मान ।"[3]

---

1. बच्चनः प्रारम्भिक रचनाएं, रचना–3, पृ0–522
2. वही, पृ0– 541
3. वही, पृ0– 554

इस प्रकार स्पष्ट है कि बच्चन प्रारम्भ से ही अपनी अनुभूतियों को सहज और सशक्त ढंग से व्यक्त करते रह हैं। उनकी यह सहजता ही भाषा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी सिद्ध हुई क्योंकि उन्होंने छायावादी अलंकारिक, तत्सम प्रधान और संस्कृतिनिष्ठ दुरूह भाषा के स्थान पर जन भाषा का प्रयोग किया। यह कोई कम महत्व की बात नहीं थी।

## मधु काव्य– मधुशाला

1935 में प्रकाशित "मधुशाला" बच्चन जी के सम्पूर्ण काव्य साहित्य में सर्वाधिक लोकप्रिय कृति है। इसमें कुल 135 पद हैं जो रूबाइयों की शैली में लिखी गयी है।

बच्चन का मधु काव्य "रूबायते उमर खैयाम" के अनुवाद से आरम्भ होता है। "रूबायते उमर खैयाम" के प्रभाव को स्वीकार करते हुए बच्चन ने लिखा है– मेरे जीवन और काव्य के विकास में रूबाइयत उमर खैयाम और उसके मेरे अनुवाद का विशेष स्थान है।[1] उमर खैयाम ने रूप, रंग, रस की एक नई दुनिया ही मेरे आगे नहीं उपस्थित की, उसने भावना विचार और कल्पना के सर्वथा नए आयाम मेरे लिए खोल दिये। उसने जगत, नियति और प्रकृति के आगे मुझे अकेला खड़ा कर दिया।

मेरी बात मेरी तान में बदल गयी – अभी तक मैं लिख रहा था अब गाने लगा। खैयाम से जो प्रतीक मुझे मिले थे उनसे अपने को व्यक्त करने में मुझे बड़ी सहायता मिली।[2]

बच्चन के मधु काव्य को लेकर साहित्यकारों आलोचकों के विभिन्न मत हैं। आलोचकों का एक वर्ग तो बच्चन के मधुकाव्य को शुद्धतः भोगवादी, एकोन्मुखी एवं पलायनवादी प्रवृत्ति का काव्य मानता है तो दूसरे वर्ग के आलोचक उसके प्रतीकों

---

1. बच्चनः क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन रचनावली–7, पृ0–199
2. बच्चनः अभिनव सोपान–भूमिका से, पृ0–20

का सहारा लेकर उसे अध्यात्मवादी काव्य घोषित करते हैं। सम्भवतः दोनों ही कोटि के समीक्षाकार अति पर हैं। मधुकाव्य का उचित मूल्यांकन इन अतिरेकों से बचकर किया जाना समीचीन होगा। पंत जी के अनुसार किशोर बच्चन ने अपने सौंदर्योपासक हृदय के मादक आनन्द को वाणी की रस मुग्ध प्याली में उड़ेलने का प्रयत्न किया है।[1] डा0 लक्ष्मी नारायण सुधांशु लिखते हैं – उनकी मधुशाला मदिरा की नहीं, मस्ती की है। अपनी मस्ती से उन्होंने जगत को भी मस्त बनाने की ठानी है। उनकी सुराही, प्याला, हाला, मधुबाला किसी निश्चित पदार्थ के प्रतीक के रूप में व्यक्त नहीं हुए हैं। उनका सबसे बड़ा दुर्भाग्य रहा कि उनकी रचनाओं के आध्यात्मिक मर्म की ओर पाठक या श्रोता की दृष्टि प्रायः नहीं गयी।[2] बच्चन की मदिरा गम गलत करने या दुख को भुलाने के लिए नहीं है, वह शाश्वत जीवन सौंदर्य एवं शाश्वत प्राण चेतना शक्ति का अजीब प्रतीक है। जहाँ उमर की मदिरा जीवन स्मृतियों की मदिरा है वहीं बच्चन की मदिरा जीवन रचनाओं की।"[3] नरेन्द्र शर्मा का मानना है कि – मधुशाला बच्चन जी की भैरवी है– "शाब्दिक", सांकेतित और तांत्रिक अर्थों में। बच्चन जी को मधुबाला रूपी भैरवी सिद्ध है। इसका मधु मद्य नहीं काव्य है। काव्य प्रतीकात्मक है उसे अभिधा से नहीं व्यंजना से समझना चाहिए। वह नव भारत के नव यौवन या चढ़ती जवानी के उन्माद को प्रतिबिम्बित करती है।[4] दूसरी ओर डा0 शिव कुमार मिश्र के अनुसार " हालावादी कृतियों में भी कवि ने वस्तुतः अपनी निराशा दुख और पराजय की भावनाओं को ही मस्ती और मौज के कृत्रिम आवरण में प्रकट करने की कोशिश की है।[5] इन्हीं के स्वर में स्वर मिलाते हुए डा0 बलभद्र तिवारी ने कहा है छायावादी कृतियों में मधुशाला – मधुबाला तथा हलाहल, कवि का व्यक्तित्व कृत्रिम मौज और मस्ती में लीन रहने का आग्रह करता है।[6] स्वयं बच्चन जी के शब्दों में

---

1. पन्तः अभिनव सोपान, भूमिका से, पृ0–24, पृ0–
2. डा0 लक्ष्मी नारायण सुधांशु– लोकप्रिय बच्चन, पृ0–28
3. पन्तः अभिनव सोपान की भूमिका से पृ0–21, पृ0सं0
4. नरेन्द्र शर्माः बच्चन व्यक्तित्व और कवि, पृ0–55
5. डा0 शिव कुमार मिश्रः नया हिन्दी काव्य, पृ0–83

मधुशाला से मेरे चेतन, अवचेतन, अतिचेतन, संस्कार, अनुभूति संचित स्मृति कल्पना, भय, आशा–निराशा, हर्ष– विमर्श –संघर्ष, सम्मोह– व्यामोह– विद्रोह, सबका बड़ा क्षरण हुआ– कैथारसिस – परगेशमरेचन। "मधुशाला" के बाद मैंने "मधुबाला" के गीत लिखने शुरू किये – जैसे अभी पूरा क्षरण नहीं हुआ था। वास्तव में वह पूर्ण "मधुकलश" के साथ हुआ मधुबाला, मधुकलश को एक ही रचना मानकर जो पढ़ेगा, शायद उसी को इन तीनों रचनाओं के पूरे रहस्य का बोध होगा। [1]

वास्तव में बच्चन जी छायावादोत्तर काल के संक्रमण बिन्दु के कवि हैं। उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति को युग संधि का दंश झेलते हुए संक्रमण बिन्दु पर खड़े हो साहसिक ढंग से व्यक्त किया है। उन्होंने न तो आदर्शों के माध्यम से अपने को व्यक्त किया है और न ही अध्यात्म का आदर्श ओढ़ा है। बच्चन जी की मधु परिकल्पना एक मनोवैज्ञानिक विकल्प है। जहाँ छायावादी कवियों ने अपने मानसिक विषाद को भूलने के लिए अनेक विकल्प चुने। जैसे कि अध्यात्म के रहस्य का आश्रय लिया, संस्कृति और राष्ट्रीय तौर पर प्रकृति प्रेम स्वीकार किया, वहीं बच्चन जी ने विछोह की दारूण पीड़ा को विस्मृत करने के लिए मधु परिकल्पना की। बच्चन की इस मधु परिकल्पना का आधार उमर खैयाम का अनुवाद था। बच्चन उमर के जीवन दर्शन से प्रभावित रहे हैं परन्तु दोनों की मधु परिकल्पना में पर्याप्त अन्तर है– उमर की मधु परिकल्पना क्षणिक जीवन की निराशा एवं मृत्यु भय से पीड़ित मन को अपने मादक सुख में भुलाने की परिकल्पना है जबकि बच्चन की मधु परिकल्पना पलायन वादी नहीं है– इसी जीवन को शाश्वत सौंदर्य में ढाल लेने वाली मदिरा है।

इसी सन्दर्भ में डा0 जीवन प्रकाश जोशी लिखते हैं कि खैयाम के काव्य में दार्शनिक आग्रह अधिक है जबकि बच्चन के मधु काव्य में अल्हड़ता है।[2] बच्चन की मधुवादी अभिव्यंजना में रहस्य या दर्शन सम्बन्धी कोई दृष्टिकोण न होकर जीव की सहज पिपासा का मुक्त मस्त (और त्रस्त) मुखरण हुआ है।[3]

---

1, बच्चन: क्या भूलूँ क्या याद करूँ– बच्चन रचनावली–7, पृ0–207
2. जीवन प्रकाश जोशी: बच्चन व्यक्तित्व एवं कवित्व, पृ0–172
3- वही, पृ0–173

बच्चन के काव्य में मधु की परिकल्पना बड़े ही विशद स्तर पर हुई है। मधु और मधु से सम्बन्धित सभी उपकरणों को विशद सन्दर्भ दिये हैं। उनकी सम्पूर्ण मधु परिकलपना का समुचित अध्ययन करने के लिए उनके विविध उपकरणों का अध्ययन आवश्यक है।

हाला का प्रयोग जन जीवन की क्षण भंगुरता के प्रतीक रूप में है; यौवन मस्ती के प्रतीक के रूप में। एक पंक्ति में मुख्यतः प्रतीक रूप में हाला का प्रयोग व्यक्ति की भोगवादी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप हुआ है।"[1] प्याला मधुशाला और मधुबाला का भी प्रतीक रूप में प्रयोग हुआ है। व्यक्ति की उन्मुक्त भोगवादी प्रवृत्ति और जग समाज धर्म की मिथ्या मर्यादाओं के बीच हुई टक्कर की और उससे उत्पन्न व्यक्ति की क्षणिक आशा- निराशा की मानसिक प्रतिक्रियाओं की अदम्य पिपासाओं की क्षण भर, कण भर की जैवी तृप्ति की इन गीतों में तीखी ध्वनि सुनाई पड़ती है।[2]

मधुशाला का मूल स्वर मस्ती का है। मस्ती और मधुशाला एक दूसरे के पर्याय हैं। यह मस्ती प्यार जवानी और जीवन की मस्ती है। यह उस दीवाने की मस्ती है जिसकी कामना, वासना, भावना, कल्पना और सभी प्रकार की लालसाओं को वृद्ध समाज ने कुचल दिया है।[3] किन्तु कवि की आस्था खण्डित नहीं हुई। वह मधु में ही प्रिय की कल्पना करने लगता है। इसीलिए वह उसे मदिरापान से पूर्व नैवेद्य चढ़ाना चाहता है -

"पहले भोग लगा लूँ तेरा फिर प्रसाद जग पायेगा।"[4]

आनन्द में डूबा कवि मन इस बात से परिचित है कि मैं और मेरा प्रियतम एक दूसरे के समान भाव से पिपासे हैं, दोनों ही एक दूसरे की हाला है और पीने वाले हैं-

---

1. जीवन प्रकाश जोशी, बच्चन व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ0-172
2. वही, पृ0-200
3. वही, पृ0-177
4. बच्चनः मधुशाला- बच्चन रचनावली-1, पृ0-45

पिय्रतम तू मेरी हाला है, मैं तेरा प्यासा प्याला
अपने को मुझमें भरकर तू बनता है, पीने वाला 1

सभी का लक्ष्य एक है, पहुँचने का मार्ग भिन्न अवश्य हो सकते हैं परन्तु तत्वान्वेषी सीधे एक राह पर चलकर ही लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। अपने तर्क जाल में पड़कर तार्किक उस प्रियतम ईश्वर तक नहीं पहुँच पाता और सारा जीवन बीत जाता है, वह किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा रह जाता है।

"चलने ही चलने में कितना जीवन हाय बिता डाला।[2]

फिर एक स्थिति ऐसी आती है कि सब तरफ बस एक ही चीज दिखाई देती है और देखते ही देखते वाह्य जगत से विरक्ति हो जाती है।

"किसी ओर मैं आँखे फेरूँ दिखलाई देती हाला
× × ×
किसी ओर देखूँ दिखलाई पड़ती मधुशाला।"[3]

कवि अपनी मधुशाला में सभी को आमंत्रित नहीं करता, गम गलत करने वालों को नहीं, वरन् पीड़ा में आनन्द लेने वालों को निमंत्रित करता है।

" पीड़ा में आनन्द जिसे हो आए मेरी मधुशाला।"[4]

हर कोई ऐरा गैरा इस मधुशाला में प्रवेश का अधिकारी नहीं है केवल वही जो रूढ़ियों, परम्पराओं, अंध मान्यताओं, सड़े गले मूल्यों को लात मार दी हो यहाँ आ सकता है। जो विनाश में भी निर्माण की आस्था रखते हों। जो सदैव हो आनन्द का अनुभव करे केवल वही इस मधु का रसास्वादन कर सकता है।

---

1 बच्चनः मधुशाला, बच्चन रचनावली–1, पृ0–45
2. वही, पृ0–46 पद–7
3 वही, पृ0–50, पद–39
4 वही, पृ0–47, पद–14

इस प्रकार मधुशाला में पग–पग पर सतरंग आत्मानन्द छलक रहा है। कवि निर्द्वन्द्व आत्म रस पीने और निश्चित किन्तु मधु मय जीने का पक्षपाती है। परन्तु इस आनन्दवादी नारों और सिद्धान्तों के पीछे झांकती निराशा को दबाया नहीं जा सका वरन् वह और ही मुखरित हो उठी है –

जो हाला मैं चाह रहा था
वह न मिली मुझको हाला
× × ×
जिसके पीछे था मैं पागल
हा न मिली वह मधुशाला।[1]

परिणामस्वरूप घोर आशावादी और कर्मवादी बच्चन नियतिवाद और निराशा के गीत गाने लगते हैं। क्रान्तिकारी रूढ़िवादी बन जाता है और प्रगतिगामी भाग्य को कोसने वाला।

"किसने अपना भाग्य समझने में मुझ सा धोखा खाया
किस्मत में था अवघट मरघट ढूँढ रहा था मधुशाला।"[2]

आशा और उत्साह से भरी, इन्द्रधनुष से होड़ लेने वाली इस मधुशाला के मूल में आह्लाद नहीं विषाद है। आशा नहीं निराशा है, आस्था नहीं कुंठा है, विद्रोह व क्रांति नहीं नियति है, कल्पना नहीं यथार्थ है। अलौकिक सौंदर्य नहीं लौकिक है। वैसे सभी को अपने पक्ष के समर्थन में तर्क मिल जाते हैं यहाँ तक कि राष्ट्रवादियों को भी राष्ट्र भावना भी। इसीलिए उसकी अपनी–अपनी ढंग की व्याख्याएं की जाती हैं।

---

1 बच्चनः मधुशाला – बच्चन रचनावली, पृ0–57, पद–90

2 वही, पृ0–59, पद–98

<u>मधुबाला.</u>

मधुशाला में जो क्षरण प्रारम्भ हुआ था। मधुबाला में वह और बढ़ने लगता है। यह क्षरण सर्वप्रथम उसकी गति में आता है और चतुष्पदी का स्थान गीतों ने ले लिया।

जीवन प्रकाश जोशी के अनुसार – "मधुबाला" की प्रारम्भिक पाँच रचनाओं का काव्याभिव्यंजन वाणी के असंतुलन का द्योतक है, जिससे पाठक कतराता है। जो वस्तुतः किसी कवि मधुपायी का ही कवित्व संगत अनर्गलत्व प्रतीत होता है।[1] ऐसा इसलिए है कि उसमें भावों का असामंजस्य है। परन्तु इन कविताओं में कवि न स्वयं को जहाँ तक हो सका है व्यक्त करने का आवरणहीन प्रयास किया है। कवि मादकता की स्थिति में रहने अथवा उससे बाहर निकलने के द्वन्द्व से पीड़ित है तथा शनैःशनैः अन्तर का चैतन्य इस वाह्य उन्माद का पल्ला झाड़ देने को व्याकुल है।[2]

मधुबाला की कविताओं में भावों का उद्दाम भाव प्रवाह है। इस काव्य संग्रह में कुल पन्द्रह कविताएँ हैं। प्रथम कविता "मधुबाला" जो कि पन्द्रह छन्दों की है। प्रतीकात्मक अर्थ में मधुबाला कामेषणा रूपी नायिका के रूप में मुखरित होने वाली कविता है। मधु विक्रेता परमात्मा है तो मधु के घट जीवात्मा। वह जागतिक कष्टों को अपने शीतल और सुखद स्पर्श से शांत करती है–

"मधु मरहम का लेपन कर<br>
अच्छा करती उर का छाला<br>
मैं मधुशाला की मधुबाला [3]

मधुबाला के आगमन के पूर्व इस मधुशाला में अंधकार छाया हुआ था। परन्तु उसके आगमन के साथ ही आभाहीन आभामय हो जाता है। मृत मूक घड़े मूर्ति सदृश

---

1 जीवन प्रकाश जोशी: बच्चन व्यक्तित्व एवं कवित्व, पृ0–182

2. कृष्ण चन्द्र पाण्ड्या : बच्चन व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ0–110

3. बच्चन: मधुबाला–बच्चन रचनावली–1, पृ0–81

मधु पात्र और जड़वत प्यालों में नया जीवन का संचार हो गया। सभी उसे प्राप्त करने के प्रयत्न में आगे बढ़ते हैं। परन्तु वह आरोपित तृप्ति और मायावी मोह पुनः खण्डित हो जाता है और मधु विक्रेता मधुपायी वास्तविक स्थिति का बोध कर जैसे मधुबाला के ही दार्शनिक बोध में अपनी वाणी खोजता है-

यह स्वप्न विनिर्मित मधुशाला
यह स्वप्न रचित मधु का प्याला
स्वप्निल तृष्णा, स्वप्निल हाला,
स्वप्नों की दुनिया में भूला
फिरता मानव भोला भाला
मैं मधुशाला की मधुबाला।[1]

इस प्रकार इस कविता में कवि अपने वैयक्तिक जीवन के मधु - कटु अनुभवों को प्रतीकात्मक शैली में व्यक्त करने में सफल रहा है और यह सफलता सभी के बस की बात नहीं।

"मालिक मधुशाला" इस संग्रह की दूसरी कविता है। इस कविता में एक क्रांतिकारी स्वर उभरता सुनाई पड़ता है। समाज की सड़ी गली मान्यताएँ, दमित कुंठित मानव को विद्रोह के लिए बाध्य कर देती है। उसी मानव का प्रतिनिधित्व करती है मालिक मधुशाला, मधुशाला का मालिक उद्घोष करता है-

"हो मस्त जिसे होना, आए
जितने चाहे साथी लाए
जितनी जो चाहे पी जाए
बस कभी न कहने वाला हूँ।[2]

क्योंकि यहाँ आने के बाद सब शोक, भय, चिन्ता, मानव भूल जाता है-

---

1 बच्चनः मधुबाला- बच्चन रचनावली-1, पृ0-84

2. वही, पृ0-86

अब चिन्ताओं का भार कहाँ
अब क्रूर कठिन संसार कहाँ
अब कुर।मय का अधिकार कहाँ
भय शोक भुलाने वाला हूँ।[1]

वह ऊँचे नीचे जाति वर्ण, धर्म सम्प्रदाय में विभाजित समाज को एकता के बंधन में बंधने का आह्वान करता है। संक्षेप में मालिक मधुशाला में जीवन के कटु अनुभवों को मधु के सहारे भुलाने और जग क्रन्दन को गान बनाने का पाठ पढ़ाने वाला है–

कटु जीन में मधुपान करो
जग के रोदन को गान करो
मादकता का सम्मान करो
यह पाठ पढ़ाने वाला हूँ
मैं ही मालिक मधुशाला हूँ।[2]

तीसरी कविता "मधुपायी" में कवि ने मधुपायी के रूप में विद्रोही प्रवृत्ति को मुखरित किया है। यह कविता मानव प्रगति के मार्ग की धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक, दार्शनिक, रूढ़ियों, मिथ्यांडबर, अंधविश्वासों व पंगु परम्पराओं पर सबल प्रहार करतो है।

हमने छोड़ी कर की माला,
पोथी–पत्रा भू पर डाला,
मंजिल मस्जिद के बन्दीगृह
को तोड़, लिया कर में प्याला
औ दुनिया को आजादी का
संदेश सुनाने हम आए।"[3]

---

1 बच्चन: मधुबाला–रचना–1, पृ0–85
2. वही, – पृ0–85
3. वही, पृ0–87

परन्तु उनका यह विद्रोह जिस मधु की मादकता के फलस्वरूप है वह क्षणिक है और कवि समझ जाता है कि –

" यह सपना भी बस दो पल है
उर की भावुकता का फल है
भोली मानवता चेत, अरे,
सब धोखा है सारा छल है !
हम बिना पिये भी पछताते
पीकर पछताने हम आए।"[1]

इस कविता की भाषा का लोक भाषा की ओर झुकाव स्पष्ट लक्षित होता है। कवि छायावादी भाषा को उतार फेंकने के लिए व्यग्र है।

"पथ का गीत" मस्ती के मार्ग का आह्वान गीत या प्रयाण गीत है। यह नारे बाजी लेकर आता है। जीवन समर में सभी एक आशा लेकर आते हैं सभी का अपना एक कल्पना का सुखद संसार होता है परन्तु यहाँ आकर यथार्थ के धरातल पर सुखद कल्पना का संसार चकनाचूर हो जाता है। इस स्थिति में कवि यथार्थ को भी उसी जिन्दा दिली से स्वीकार करने को तत्पर है–

"हम सब मधुशाला जायेंगे
आशा है, मदिरा पायेंगे,
किन्तु हलाहल ही यदि होगा
पीने से कब घबरायेंगे।"[2]

अगली कविता "सुराही" मानव की अतृप्त इच्छाओं तथा उसके अंत की विषाद की स्थिति का गीत है। "सुराही" दार्शनिक प्रतीक है। "मानव शरीर" का। इस कविता में कवि ने सुराही के माध्यम से इस शरीर की नश्वरता को दिखाया है

---

1. बच्चन: मधुबाला– रचना0–1, पृ0–89
2 वही, पृ0– 90

और फिर यह भी बताया कि इस शरीर की सार्थकता इसी में है कि यह औरों के काम आ सके। यही संदेश "सुराही" देता है–

औरो के हित मेरी हस्ती
औरों के हित मेरी मस्ती
मैं पीती सिंचित करने को
इन प्यासे प्यालों की बस्ती।"[1]

औरों के लिए अपनी हस्ती और मस्ती को बनाए रखने के लिए "सुराही" को कितने कष्ट सहने पड़ते हैं यह वही जानती है। दूसरों को हँसाना बहुत कठिन होता है अक्सर उनके पीछे हँसाने वाले के आँसू भी छिपे होते हैं इसी तरह सुराही भी उस समय भी दूसरों के हित के लिए अपने मुख से गान किया जबकि उसका उर क्रंदन कर रहा था –

तुमने समझा मधुपान किया ?
मैंने निज रक्त प्रदान किया।
उर क्रन्दन करता था मेरा
पर मुख से मैंने गान किया ।
मैंने पीड़ा को रूप दिया
जग समझा मैंने कविता की
मैं एक सुराही मदिरा की।[2]

अगली कविता "प्याला" है जिसमें जीवन की क्षण भंगुरता का स्वर प्रखर है। "प्याला" क्षण भंगुर जीवन का प्रतीक है। इस क्षणिक जीवन को विषादमय न बनाकर आनन्दमय बनाना चाहिए क्योंकि काल चक्र सदा ही अबाध गति से बढ़ता रहता है। इस क्षणिक जीवन में व्यर्थ का द्वन्द्व अज्ञानता है क्योंकि पाप–पुण्य, मंदिर–मस्जिद, मुक्त जीव की प्रगति रोक नहीं पाती। किसी की प्रशंसा – अप्रशंसा से कुछ आता–जाता नहीं।

---

1. बच्चन: मधुबाला– रचना0–1, पृ0–94
2. वही, पृ0–95

अन्तर की मूक वाणी ही सही स्वर दे सकती है –

> मैं देख चुका जा मस्जिद में झुक–झुक मोमिन पढ़ते नमाज,
> पर अपनी इस मधुशाला में पीता दीवानों का समाज
> वह पुण्य कृत्य यह पाप कर्म, कह भी दूँ तो क्या सबूत
> कब कंचन मस्जिद पर बरसा, कब मदिरालय पर गिरी गाज ?[1]

अतः यह द्वन्द्व व्यर्थ है। वास्तव में तो सभी को एक ही जगह जाना है और एक दिन सभी का इस मिट्टी में मिल जाना है फिर व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ ?

> "पल में मृत पीने वाले के कर से गिर भू पर आऊँगा
> जिस मिट्टी से था मैं निर्मित उस मिट्टी में मिल जाऊँगा
> अधिकार नहीं जिन बातों पर, उन बातों पर चिन्ता करके
> अब तक जग ने क्या पाया है, मैं कर चर्चा क्या पाऊँगा ?"[2]

"हाला" शीर्षक कविता जीवन के चपल उन्माद तथा तरल उन्माद के साथ जीवन की उद्दाम लालसा को लेकर आती है। अधूरे–ज्ञानियों के थोथे ज्ञान को, खोखली गर्वोक्ति को भंडाफोड़ करती है। यहाँ आकर कवि का विद्रोह का स्वर और प्रखर हो जाता है।

> "उद्दाम तरंगों से अपनी मस्जिद गिरजाघर देवालय
> मैं तोड़ गिरा दूँगी पल में– मानव के बन्दीगृह निश्चय
> जो कूल किनारे तट करते संकुचित मनुज के जीवन को
> मैं काट सबों को डालूँगी किसका डर मुझको ? मैं निर्भय ।
> मैं ढहा वहा दूँगी क्षण में पाखण्डों के गुरू गढ़ दुर्जय।"[3]

हाला को अपने ऊपर अटल विश्वास है कि वह जहाँ भी जायेगी वहीं पर चेतना आ जायेगी और जिस दिन मेरा अन्त होगा उस दिन यह सृष्टि भी नष्ट

---

1. बच्चनः मधुबाला, रचना–1, पृ0–96
2. वही, पृ0–97
3. बच्चनः मधुबाला, रचना0–1, पृ0–99

हो जायेगी। यहाँ अस्तित्ववादी दर्शन बोल उठा है–

"लघुतम गुरूतम से संयोजित– यह जान मुझे जीवन प्यारा
परमाणु कंपा जब करता है हिल उठता है नभ मण्डल सारा
यदि एक वस्तु भी सदा रही, तो सदा रहेगी वस्तु सभी
त्रैलोक्य बिना जलहीन हुए, सकती न सुख कोई धारा
सब सृष्टि नष्ट हो जायेगी, हो जायेगा जब क्षय मेरा"[1]

"जीवन तरूवर" रचना इस संग्रह की सबसे छोटी रचना है। परन्तु यह छोटी होते हुए भी संघर्षशील जीवन में, विपत्तियों से भरे जीवन में आशा का संदेश देती है –

"विपदाओं के अंध वायु में
तने रहो जीवन के तरूवर
अपने सौरभ की मस्ती में
सने रहो, जीवन के तरूवर ।"[2]

"प्यास" शीर्षक कविता में कवि दुनिया के लोगों द्वारा अपने सम्बन्ध में फैलाये गये भ्रमों का उत्तर देता है। साथ ही कवि का अक्खड़ व्यक्तित्व समाज के और साहित्य के ठेकेदारों से दो–दो हाथ करने निकल पड़ा है–

"क्या कहती ? दुनिया को देखो दुनिया रोतो है रोने दो
"दुनिया तो है मुझसे रूठी, है तुली हुई बद कहने पर
गंगा जल जब मैं पीता था, कब दी उसने इज्जत मुझको ?"[3]

कवि अपनी प्यास के सम्बन्ध में प्रकृति के माध्यम से यह सिद्ध करने में सफल रहा है कि यह प्यास तो जीव की अनादि अनन्त प्यास है: व्यक्तिगत

---

1 बच्चन: मधुबाला, रचना0–1, पृ0–99

2. वही, पृ0–100

3 वही, पृ0– 101

नहीं । इस कविता का मूल स्वर लघु मानव की अनादि अनन्त पिपासा और प्रणय–संघर्ष के भावों –अभावों की है–

"मेरी तृष्णा तो मूर्तिमती, परिपूर्ण विश्व की आकांक्षा
मानव अशांति, मानव स्वप्नों के गायन ही तो हूँ गाता
गाऊँगा, जब तक एक नहीं होकर मिलते संघर्ष प्रणय"

× × ×

"मैं अर्थ बताता तृष्णा का, क्षण बीत रहे हैं जीवन के
किस किसका दूर करूंगा मैं संदेह यहाँ है जन जन के
भर दे प्याला भूले दुनिया, भूले अपूर्णता दुनिया की
मतवालों ने कब काम किये जग में रहकर जग के मन की
वह मादकता ही क्या जिसमें बाकी रह जाए जग का भय
तेरा मेरा सम्बन्ध यही – तू मधुमय औ मैं तृषित हृदय।"[1]

"बुलबुल" शीर्षक रचना में एक ऐसा क्रान्तिकारी और न दबने वाला स्पष्ट मुखर हो उठा है जिसे अपनी गति और अपने पथ पर पूर्ण भरोसा है अपने सिद्धान्तों पर पूर्ण आस्था है। उस पर प्रशंसा और बुराई का प्रभाव नहीं पड़ता उसका निर्णय अपरिवर्तित रहता है।

"सुरीले कंठों का अपमान जगत में कर सकता है कौन।"[2]

कवि मानव प्रेम देश की सीमाओं को तोड़ वसुधैव कुटुम्बकम का संदेश देता है और इस माध्यम से कवि प्रेम और एकता का संदेश देता है–

विभाजित करती मानव जाते धरा पर देशों की दीवार
जरा ऊपर तो उठकर देख वही जीवन है इस उस पार
घृणा का देते हैं उपदेश यहाँ धर्मों के ठेकेदार
खुला है सबके हित सब काल हमारी मधुशाला का द्वार ।"[3]

---

1. बच्चन: मधुबाला, रचना0–1, पृ0–102
2. वही, पृ0–103
3. वही, पृ0–103

कवि स्पष्ट उद्घोष करता है कि विषमता और घृणा, ढोंग और पाखण्ड छल और प्रवंचना की नींव पर आधारित जगत के इस अस्तित्व को यदि हम मिटा नहीं सकते तो भुला तो सकते हैं। अन्त में कवि कहता है जो जीवन में यथास्थिति बनाए रखना चाहते हैं जो पलायनवादी हैं, निराशावादी हैं, जो रूढ़ियों और परम्पराओं में बंधे रहना चाहते हैं भला उन्हें हमारी बात क्यों पंसद आयेगी।

इस कविता में कवि ने अपने ऊपर लगाये गये अनेकों आरोपों का उत्तर दिया है। इस कविता में छायावादी प्रभाव लक्षित होता है। शब्द योजना प्रभावपूर्ण है। कविता में प्रवाह और अखण्ड रसानुभूति एक साथ दृष्टिगत होती है। अगली कविता "पाटलमाल" एक सामान्य सी कविता है। फिर भी इस रचना में भी विद्रोह स्वर प्रखर है। हृदय के कुंठा को वाणी दी गयी है। कविता में जीवन के मार्मिक सत्य की झाँकी है –

नयन में पा आँसू की बूँद,<br>
अधर के ऊपर पा मुस्कान<br>
कही मत इसको हे संसार<br>
दुखों का अभिनय लेना मान<br>
नयन से नीरघ जल की धार<br>
ज्वलित उर का प्रायः उपहार<br>
हँसी से ही होता है व्यक्त<br>
कभी पीड़ित उर का उद्गार ।"[1]

कविता के अन्तिम पद में कवि बुलबुल और पाटलमाल के विद्रोह के अन्तर को दर्शाता है ।

हृदय के अंदर वह उन्माद कि जिससे पागल हो संसार<br>
खोल दे, कर–पद–बन्धन काट, विश्व बन्दी गृह के सब द्वार ;<br>
हृदय के अन्दर वह विद्रोह कि जाय इन्द्रासन भी डोल;<br>
हुई बस इतने से लाचार, नहीं मुँह अपना सकती खोल;<br>
दबा मन का सब क्रोध–विरोध गयी बुलबुल वाचाल निकाल<br>
मथित उर थामे अपना हाय, रही खिल वन में पाटल माल ।[2]

---

अगली कविता है "इस पार उस पार" । यह कविता मधुशाला के बाद दूसरी ऐसी कविता है जो अत्यधिक लोकप्रिय हुई । इस कविता में छायावादी शैली का खुलकर विद्रोह है। श्री जीवन प्रकाश जोशी जी नेकहा है – इस कविता में क्षय ग्रस्त जीवन का विषाद, अपूर्ण सुख भोग के लिए छटपटाहट, पूर्ण भोग के लिए अदम्य लालसा, निर्मम काल, कठोर कर्म और कटु जगत के लिए घोर चिन्ता व भय आदि संचारी भावों का ऐसा रेला है कि कविता हृदय को तीव्रता के साथ मथती चली जाती है।[1]

कवि का "उस पार" से तात्पर्य छायावादी काल्पनिकता से है। कवि छायावाद के उस पार के कल्पित सुख के प्रति लालायित नहीं है बल्कि संशकित है –

"इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा।"[2]

इस कविता में कवि की निराशाजन्य मनःस्थिति प्रकट होती है। कवि अपनी पत्नी श्यामा को मृत्यु से संघर्ष करते देखा है।" इसी कारण इस कविता में विषाद की ऐसी सघनता है कि एक मधुर वेदना अविस्मरणीय रूप से साथ–साथ चलने लगती है।[2]

अगली कविता "पाँच पुकार" एक साधारण रचना है। इसमें पाँच पदों में प्रत्येक में एक पुकार समाहित है। पहले में प्रेम रस का आंकठ पान करने की पुकार है तो दूसरे पद में आगे बढ़कर पी लेने की पुकार है। तीसरे पद में प्रतीक्षा का अंत करने की, क्योंकि पल भर की प्रतीक्षा और चेतनता सह्य नहीं है।

चौथे पद में विषाद को भूल कर रस निमग्न हो आस्था के साथ जी ने की पुकार है तो अन्तिम पद में कल्पित सुख से मोह भंग की स्थिति है नियति

---

1. जीवन प्रकाश जोशी: बच्चन व्यक्तित्व एवं कवित्व, पृ0–190
2. कृष्ण चन्द पाण्ड्या: बच्चन व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ0–115

के समक्ष विवशता है और इसी के साथ चलो- चलो की पुकार है। "यमदूत द्वार पर आया" अब संसार से जाने की बारी आ गयी है।

"पगध्वनि" कविता कवि ने बहुत ही सुन्दर ढंग से रागात्मकता को वाणी दी है। सुकोमल पदावली व भावाभिव्यंजना की दृष्टि से इसमें अद्‌भुत तारतम्य है। मधु के मादकता में डूबे कवि को जानी पहचानी पग ध्वनि सुनाई पड़ती है। जिसे सुनकर कवि सोचता है कि उसका मन शांत हो जायेगा। परन्तु दूसरे क्षण उसका भ्रम टूट जाता है और उसे लगता है कि यह ध्वनि तो उसी के अन्तर की है बाहर की नहीं। अन्तिम कविता "आत्म परिचय" में जैसे बच्चन का आर्तनाद झलक उठा है। बच्चन की अपनी कहानी अपना व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से इस कविता में उभर कर आया है-

मैं जग जीवन का भार लिए फिरता हूँ
फिर भी जीवन में प्यार लिए फिरता हूँ।[1]

कवि ने जैसे संसार की पीड़ा को स्वयं झेलकर दूसरों को हँसी का उपहार देता है।

मैं जला हृदय में अग्नि, दहा करता हूँ
सुख दु:ख दोनों में मग्न रहा करता हूँ।
जग भव सागर तरने को नाव बनाये
मैं भव-मौजों पर मस्त बहा करता हूँ।[2]

× × ×

कवि आगे कहता है -

---

1. बच्चन: रचनावली-1 (आत्म परिचय), पृ0-111
2. वही, पृ0- 112

मैं निज रोदन में राग लिये फिरता हूँ
शीतल वाणी में आग लिये फिरता हूँ
हो जिस पर भूपों के प्रसाद निछावर
मैं वह खंडहर का भाग लिए फिरता हूँ।[1]

× × ×

मैं रोया, इसको तुम कहते हो गाना
मैं फूट पड़ा तुम कहते, छन्द बनाना
क्या कवि कहकर संसार मुझे अपनाये
मैं दुनिया का हूँ एक नया दीवाना ![2]

समग्रतः भले ही मधुबाला का भाव क्षेत्र सीमित है उसमें भाषा का कसाव और शिल्प सौंदर्य सीमित है। किन्तु अनुभूति की व्यंजना और आत्माभिव्यक्ति का मूल स्वर मुखरित हुआ है। मधुबाला में नए पुराने, परम्परा, रूढ़ि- क्रान्ति, आडम्बर के प्रति विद्रोह की कविताएं हैं। छायावादी तथा व्यक्तिवादी द्वन्द्व की भी कविताएं हैं।

<u>मधुकलश</u> :

मधुकलश की कविताएँ सन् 1935-36 में लिखी गयी। मधुशाला और मधुबाला में व्यक्त जीवन का उत्साह उल्लास और उन्माद जिसमें एक अभाव, एक असंतोष और निराशा की व्यथा भी मिली जुली थी। अब उतार पर था। भावना के स्वप्नों का शीश महल यथार्थ और वास्तविकता के पत्थर से चूर हो चुका था। यही समय था जबकि बच्चन जी को नियति की मार भी झेलनी पड़ी। उनकी भतीजी की मौत जिसे वे बहुत चाहते थे, फिर स्वयं उन्हें क्षय रोग। इधर मौत और बीमारी से संत्रस्त परिवार उधर साहित्य की दुनिया में कलम और जबान दोनों उनके विरोध में थीं। कोई उनके उद्‌गारों को वासनामय बताता तो कोई उनके गान को निराशा भरा, कोई पैरोडी लिखता कोई उपहास करता, पथभ्रष्ट कहता। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा जिस

---

1. बच्चनः रचनावली-1 (आत्म परिचय), पृ0-112
2. वही, पृ0-112

दिन बच्चनजी रोग मुक्त हुए उसी दिन श्यामा जी ने चारपाई पकड़ ली और चिता की सेज के लिए ही छोड़ी। मधु कलश की रचनाएं इन्हीं बाढ़, बवण्डर और वज्राघात के दिनों में लिखी गयी।

"मधुकलश" शीर्षक कविता में मधुकलश अस्तित्ववादी दर्शन का गीतमय रूपातर है। इसमें बारह गीत हैं। मधुकलश के माध्यम से बच्चन ने एक प्रकार से अपने समालोचकों की कटु आलोचनाओं का उत्तर दिया है।

"मधुकलश" नाम को सार्थक करने वाली पहली कविता है–

है आज भरा जीवन मुझमें
है आज भरी मेरी गागर ।[1]

पर इस जीवन के साथ क्षणभंगुरता भी है –

"जीवन में दोनों आते हैं मिट्टी के पल सोने के क्षण
जीवन से दोनों जाते हैं पाने के पल खोने के क्षण।[2]

× × ×

उल्लास और अवसाद इतनी तीव्रता से आए कि उनकी स्मृति का भार उठाने की भी शक्ति शेष न रही –

विस्मृति की आई है बेला।
कर पान्थ न इसकी अवहेला
आ भूले हास–रूदन दोनों
मधुमय होकर दो चार पहर ।[3]

---

1. बच्चन: मधुकलश– बच्चन रचनावली–1, पृ0–125
2. वही, पृ0–127
3. वही, पृ00– 127

"कवि की वासना" की मूल प्रेरणा पण्डित बनारसी दास चतुर्वेदी की एक टिप्पणी थी जो उन्होंने बच्चन जी के विरूद्ध विशाल भारत में लिखी थी। उन्होंने उन पर वासना का आरोप लगाया था। इसके प्रत्युत्तर में यह कविता लिखी गयी–

> "क्या किया मैंने नहीं जोकर चुका संसार अब तक ?
> वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी ?
> मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता
> शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा;
> कह रहा जग वासना मय हो रहा उद्गार मेरा।"[1]

"सुषमा" एक साफ कविता है पर इसमें गद्यात्मकता अधिक है।

"कवि की निराशा" निराशा वादिता के आरोप की प्रतिक्रिया थी। बच्चन जी के ही अनुसार मैं इतने असम्भव विश्व के विधान को एकदम उलटने वाले स्वप्नों को लेकर आया था कि निराशा तो स्वाभाविक थी ।

> पूछता जग है निराशा से भरा क्यों गान मेरा ?[2]

कवि का स्वप्न था कि–

> खिल मृदुल सुकुमार कलिका, पुष्प मुरझाये न पाए
> लहलहाते उपवनों में वायु पतझड़ की न आए
> कोकिला सकरूण स्वरों में मत विदा मांगे द्रूमों से
> हो न झूंठे स्वप्न कवि के जो गए युग–युग सजाए
> यह न हो तो किन सुखों का गीत मुखरित कण्ठ से हो
> विश्व पूरे कर सका है कौन सा अरमान मेरा ?[3]

"पथभ्रष्ट" और "कवि का उपहास" भी इसी प्रकार के आक्रमणों की परिणति है।

---

1. बच्चनः मधुकलश– बच्चन रचनावली–1, पृ0–129
2. वही, पृ0–130
3. वही, पृ0–130

रक्त से सींची गई है राह मन्दिर मस्जिदों की ।
किन्तु रखना चाहता मैं पाँव मधु सिंचित डगर में

× × ×

राग के पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन
है लिखे मधुगीत मैंने हो खड़े जीवन समर में।[1]

"कवि का उपहास" में कवि अपनी सार्थकता सिद्ध करता है।

वृष्टि का होना सफल, यदि एक भी तृण हो धरणि पर

× × ×

है नहीं निष्फल कभी यह गीतमय अस्तित्व मेरा
प्रतिध्वनित यदि एक उर में एक क्षीण कराह मेरी ।[2]

दुनिया चाहे हँसे, पथभ्रष्ट कहे पर कवि को विश्वास है कि जब मैं पल रहा हूँ तो कोई लक्ष्य भी जरूर होगा –

"बढ़ चले जब पाँव मेरे भावना के पंथ पर यों
सिद्ध है कोई प्रतीक्षा कर रहा सोत्साह मेरी।"

या कि –

मैं हँसा जितना कि खुद पर, कौन हँस मुझ पर सकेगा ?
और जितना रो चुका हूँ, रो नहीं निर्झर सकेगा।"[3]

मधुकलश की कविताओं को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है जिनमें प्रथम वह है जिनकी प्रेरणा बाहर से आयी है। अर्थात् वाह्य प्रेरित और दूसरी वे कविताएँ हैं जो अन्तःप्रेरित हैं।

---

1. बच्चन: मधुकलश, बच्चन रचनावली, पृ0–136
2. वही, पृ0–137
3. वही, पृ0–137

अन्तः प्रेरणा से लिखी हुई कविताओं में "कवि का गीत", "लहरों का निमंत्रण" और "मांझी" तथा "री हरियाली" है।

"कवि का गीत" में –

"गीत कह इसको न दुनिा यह दुखों की माप मेरी।"

पंक्ति ही अपने को अभिव्यक्त कर देती है। इसी प्रकार "लहरों का निमंत्रण" में कवि ने अपने आदर्शों को बल प्रदान किया है।

जड़ जगत में वास कर भी जड़ नहीं व्यवहार कवि का
भावनाओं से विनिर्मित और ही संसार कवि का
बूँद के उच्छवास को भी अनसुनी करता नहीं वह
किस तरह होता उपेक्षा पात्र पारावार कवि का
विश्व पीड़ा से, सुपरिचित हो तरल बनने पिघलने
त्यागकर आया यहाँ कवि स्वप्न, लोकों के प्रलोभन
तीर पर कैसे रूकूँ मैं आज लहरों में निमंत्रण।"[1]

राह जल पर भी बनी है रूढ़ि, पर न हुई कभी वह
एक तिनका भी बना सकता यहाँ पर मार्ग नूतन"

× × ×

"डूबता मैं, किन्तु उतराता सदा व्यक्तित्व मेरा
हो युवक डूबे भले ही है कभी डूबा न यौवन।"[2]

"माँझी" में कवि अपने आत्म गर्व और स्वाभिमान को वाणी देता है–

"अवनि अम्बर की तराजू
सामने रख दी गयी है
क्यों न तोलूँ आज अपनी
शक्ति इस पर गर्व से धर ?"[3]

---

1. बच्चनः मधुकलश, बच्चन रचनावली–1, पृ0–141
2. वही, पृ0–143
3. वही, पृ0–140

परन्तु इस आत्म गर्व और स्वाभिमान के साथ विनम्रता भी है और जग मांगल्य की भावना भी। "री हरियाली" में इसी की अभिव्यक्ति है–

"निम्नतम तू किन्तु मैं तो
नम्रततम बनने चला हूँ
आँक मेरे उर पटल पर
आज तू अपनी विजय भी।"[1]

या

"कौन खुश होता नहीं यह देख मरकत–राशि बिखरी
हो सभी के हेतु सुखकर हो अगर मेरा उदय भी"[2]

"मेघदूत के प्रति" कविता में मेघदूत को पढ़ने के बाद हुई प्रतिक्रिया का अंकन है।

"मधुकलश" की अन्तिम कविता "गुलहजारा" है। जिसकी अंतिम पंक्तियों में कवि ने श्यामा की मृत्यु शैया और उनकी अन्तिम मुस्कान की ही ओर संकेत किया है –

बीज के जो कोष बाकी
थे, गया ले तोड़ माली
पीत होकर अब ठिठुरती
पत्तियाँ हैं नोक वाली

मृत्यु शैया पर पड़े अति
रूग्ण की अन्तिम हँसी सी

यत्न करके खिल रही है
एक लघु कलिका निराली
आज उपवन से हमारे
मिट रहा है गुलहजारा ।[3]

---

1. बच्चनः मधुकलश, बच्चन रचनावली–1, पृ0–133
2. वही, पृ0–133
3. वही, पृ0–147

अतः मधुकलश का मूल स्वर लघु मानव मुखरित अस्तित्ववादी अभिव्यंजना का स्वर है। "मधुकलश" क- कविता वस्तुतः मधुबाला की विशुद्ध मधु सम्बन्धी कविताओं की अपेक्षा अधिक कलात्मक संगीतात्मक और नेसर्गिक तत्वों से निर्मित है। इस कविता में भरा हुआ जीवन मधु चेतना के मधु मय और राग मय उल्लास का ही प्रतीक है।

"मधुकलश के गीत पढ़ते हुए लाता है कि सहसा एक सपनिल समा बदला गया है, कि समाज ने एक सुखी दिल का झंकृत तार एक झटके से खण्डित कर दिया है, कि अब उस साज से चिंगारियां फूट पड़ी हैं। यो मधुकलश सामाजिक परिवेश में व्यक्ति के अस्तित्व का तीखा भावबोध कराता है। मधुकलश के गीतों में व्यक्ति की मस्ती का नहीं प्रत्युत उसकी कभी न मिटने वाली हस्ती तथा उसके हौसले का नाद है। मधुकलश अस्तित्ववादी दर्शन का गीतमय रूपांतर है। व्यक्ति और उसके अस्तित्व के विषय में निश्छल आत्माभिव्यंजन करना बच्चन के काव्य का लक्ष्य है।

अस्तित्ववादी दर्शन "मैं" की (या व्यक्ति की) सूक्ष्म विराट शक्ति का द्योतक है। इस मैं या व्यक्ति का उस समाज से कोई विरोध नहीं जिसमें धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक आधार पर विरोध तो वहाँ पैदा होता है जहाँ नियमों और पाखण्डों की आड़ में व्यक्ति के जन्म सिद्ध अधिकारों का शोषण होता है।

बच्चन की अधिकांश रचनाओं में व्यक्ति के अस्तित्व की व्यंजना प्रधान है। काव्य में मैं किसी खास व्यक्ति का सूचक न होकर एक माध्यम है एक प्रतीक है जिससे कवि का पूर्ण व्यक्तित्व व्यक्त होता है। व्यक्तित्व निर्माण में व्यक्ति में भले बुरे दोनों प्रकार के तत्व समाहित होते हैं। मूलतः व्यक्ति बायोलाजिकल है और इसलिए उसकी अपराध वृत्ति उसे अपराधों से सर्वथा पृथक नहीं कर देती। क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने आदिम संस्कारों से सर्वथा रिक्त नहीं हो पाता। अतः सामाजिक दृष्टि से व्यक्ति के बहुत से अपराध प्रवृत्यात्मक रूप में उसी के न होकर समाज के सभी व्यक्तियों के हाते हैं। इसी तथ्य की प्रबल अभिव्यक्ति सहजता से मधुकलश के कवि ने की है –

"क्या किया मैंने नहीं जो कर चुका संसार अब तक
वृद्ध जग को क्यों अखरती है क्षणिक मेरी जवानी
मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता
शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा .

× × ×

इस कुपथ पर या सुपथ पर मैं अकेला ही नहीं हूँ
जानता हूँ क्यों जगत फिर उंगलियाँ मुझ पर उठाता [1](पथ भ्रष्ट)

खड़ी बोली काव्य में 'मैं' के अस्तित्व को पहली बार कवित्व के माध्यम से समझा गया है।

मधुकलश के "मैं" का कवि बहुत सशक्त, संघर्षशील और संवेदनशील है। वह बहुत टूटा हुआ है पर अपने अर्थात् जीव के अस्तित्व को लघु जानकर भी वह उसे रचनात्मक समझता है, उसे महान मानता है। अपने को समझने की शक्ति बहुत महान होती है इसे समझ लेने पर सभी आलोचनाएं ठंडी पड़ जाती हैं। मधुकलश में ऐसा ही कवि व्यक्ति दिखाई पड़ता है–

मैं हँसा जितना कि खुद पर कौन हँस मुझ पर सकेगा
और जितना रो चुका हूँ रो नहीं निर्झर सकेगा
मैं स्वयं करता रहा हूँ जिस तरह प्रतिशोध अपना
मानवों में कौन मेरा उस तरह से कर सकेगा।"[2]

मधुकलश व्यक्ति की विवशता के प्रति खीज को कविता के माध्यम से व्यक्त करने का सार्थक प्रयास है। यहाँ विशेष बात यह है कि इसमें संयम के साथ तटस्थता है। सहृदयता व सहजता है।

"जीवन में दोनों आते हैं मिट्टी के पल सोने के क्षण
जीवन से दोनों जाते हैं पाने के पल खोने के क्षण।"[3]

---

1. बच्चन: मधुकलश: बच्चन रचनावली–1, पृ0–135
2. बच्चन: मधुकलश– रचनावली–1, पृ0–139
3. वही, पृ0–127

मधुकल.। के कवि में अपने सृजन के प्रति जिस आत्म विश्वास का बोध व्यक्त हुआ है व.ह नितांत निजी नहीं है। वह अपनी कविता को सफल मानता है यदि किसी एक के हृदय में भी उसकी प्रतिध्वनि पाता है–

"है नहीं निष्फल कभी यह गीतमय अस्तित्व मेरा
प्रतिध्वनित यदि एक उर में एक क्षीण कराह मेरी।"[1]

(कवि का उपहास)

मधुकलश के कवि ने नियति से पराजित होकर भी अपराजेय और क्रियाशील बने रहने का संदेश सर्वथा नयी भंगिमा से दिया है–

पाँव चलन को विवश थे जबकि विवेक विहीन था मन
आज तो मस्तिष्क दूषित कर चुके पथ के मलिन कण।[2]

"मधुकलश" मनोनुकूल जीवन जीने की व्यक्ति की अदम्य महत्वाकांक्षाओं, क्षमताओं, स्वच्छंदताओं और उसके लांक्षित किन्तु अटूट अस्तित्व व्यक्तित्व को प्रबल छंदों में रूपायित करने का एक अनूठा प्रयास है।

थी तृषा जब शीत जल की खालिए अंगार मैंने
चीथड़ों से उस दिवस था कर लिया श्रृंगार मैंने
राजसी पट पहनने की जब हुई इच्छा प्रबल थी
वासना जब तीव्रतम थी बन गया था संयमी मैं
है रही मेरी क्षुधा ही सर्वथा आहार मेरा।"[3]

इसी तरह निश्चय ही "मधुकलश" एक तुच्छ व्यक्ति का विराट से होड़ लेने का प्रयास है। परन्तु यह विद्रोह परिस्थिति जन्य है जब पुराने मूल्यों से प्रभावित पाखण्डी समाज प्रतिभावान नवयुवक वर्ग की क्षमता का अवमूल्यन करे उसकी स्वच्छंद

---

1. बच्चन: मधुकलश, रचना0–1, पृ0–137
2. जीवन प्रकाश जोशी– बच्चन जीवन और काव्य, पृ0–110
3. मधु कलश : बच्चन रचनावली–1, पृ0–128

भावना को लांछित करे तब विद्रोह के सिवाय चारा ही क्या रह जाता है। इसी व्यक्ति के विद्रोह को बच्चन ने अपनी सीमा में वाणी दी है जो कि मधुकलश को अपने ढंग का अकेला सृजन सिद्ध करता है।

## द्वितीय चरण

**निशा – निमंत्रण :**

निशा निमंत्रण से बच्चन जी के काव्य यात्रा का दूसरा चरण प्रारम्भ होता है। कवि की 1937–38 में लिखित "एक कहानी" और एक सौ गीतों का संग्रह है। 13–13 पंक्तियों में लिखे ये गीत विचारों की एकता, गठन और अपनी सम्पूर्णता में अंग्रेजी के सानेट्स की क्षमता रखते हैं। निशा–निमंत्रण के गीत सायंकाल से आरम्भ होकर प्रातःकाल पर समाप्त होते हैं। रात्रि के अंधकारपूर्ण वातावरण से अपनी अनुभूतियों को रंजित कर बच्चन जी ने गीतों की श्रृंखला तैयार की है वह आधुनिक हिन्दी कविता के लिए सर्वथा मौलिक वस्तु है। गीत एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हैं कि यह सौ गीतों का संग्रह न होकर सौ गीतों का महागीत लगता है।

युग जीवन की निराशा को मस्ती में रूपान्तरित कर मधुगीत गाने वाले बच्चन के व्यक्तिगत जीवन में जब एक दुर्घटना घटी तो वे मधु के गीत नहीं गा सके। प्रथम पत्नी श्यामा की मृत्यु उनके कवि मानस पर भयानक आघात था। वह लगभग उन्माद की स्थिति में आ गये और महीनों तक उन्होंने कोई कविता नहीं लिखी। लेकिन समय सबसे बड़ा चिकित्सक है। धीरे–धीरे बच्चन निष्क्रियता की परिधि से बाहर आए तो एक दिन अनायास कविता की एक पंक्ति उनके अंदर से फूट पड़ी। यह निशा निमंत्रण की पहली कविता थी। यह था कवि का अपनी काव्य यात्रा के द्वितीय चरण में प्रवेश जो कि घोर विषाद और उन्माद का चरण था।

निशा–निमंत्रण में बच्चन की काव्य प्रतिभा का सहजतम और तीव्रतम विस्फोट हुआ है। पहली कविता "दिन जल्दी–जल्दी ढलता है।" से निशा के आगमन की व्यथा

कथा आरम्भ हो.ा है और ज्यों-ज्यों निशा गहराती जाती है त्यों-त्यों अवसाद भी गहरा होता जाता है। निशा- निमंत्रण की अपनी एक अलग विशेषता है। अन्य शोक गीतियों की तरह इसमें कोई विशेष कथानक, आलम्बन, गुण कथन आदि का वर्णन नहीं है। इसमें कवि ने अपनी आत्मानुभूति को सजाया संवारा है जो उसका अपना वैयक्तिक वैशिष्ट्य बनकर बाहर आया है। प्रथम गीत दृष्टव्य है-

संध्या का समय कवि अकेला बैठा है, सूर्यास्त के समय पक्षी अपने घोसलों को वापस लौट रहे हैं कवि इसे देखकर और दुखी हो जाता है।

मुझसे मिलने को कौन विकल ?
मैं होऊँ किसके हित चंचल ?[1]

इस तरह निशा-निमंत्रण के अनेक गीतों में प्रकृति के सौंदर्य वर्णन के कारण वेदना-निराशा की तीव्रतम अभिव्यक्ति हो जाती है -

संध्या सिंदूर लुटाती हैं

× × ×

उपहार हमें भी मिलता है
श्रृंगार हमें भी मिलता है
आँसू की बूँद कपोलों पर शोणित की सी बन जाती है।"[2]

जैसे-जैसे रात आती है अवसाद की कालिमा भी बढ़ जाती है। प्रकृति की सुन्दरता भी हृदय में विषाद भरने वाली होती है-

"यह पावस की साँझ रंगीली

× × ×

इन्द्र धनुष की आभा सुन्दर
साथ खड़े हो इसी जगह पर
थी देखी उसने औ मैंने - सोच इसे अब आँखे गीली।"[3]

---

1. बच्चन: निशा-निमंत्रण, रचना0-1, पृ0-161
2. वही पृ0-162
3. वही, पृ0-166

रात्रि की इसी कालिमा में कवि को संसार की नश्वरता का बोध होता है–

स्वप्न भी छल जागरण भी
भूत केवल जल्पना है
औ भविष्यत कल्पना है
वर्तमान लकीर भ्रम की और है चौथी शरण भी।

× × ×

जानता यह भी नहीं मन
कौन मेरी थाम गर्दन
है विवश करता कि कह दूँ, व्यर्थ जीवन भी मरण भी।[1]

इस विवशता से कवि हताश नहीं होता वह फिर भी गाता चला जाता है–

आ सोने से पहले गा लें
जग में प्रात पुनः आएगा
सोया जाग नहीं पायेगा
आँख मूँद लेने से पहले जो कुछ कहना कह डालें।

× × ×

अब अँधियाला देश मिला है, आ रागों के दीप जला लें।[2]

प्रकृति भी कवि की उदासी में साथ देती है। अपनी ही तरह कवि को तारे भी रोते हुए दिखाइ देते हैं –

कहतें हैं तारे गाते हैं

× × ×

स्वर्ग सुना करता यह गाना
धरती ने तो बस यह जाना
अगणित ओस कणों में तारों के नीरव आँसू आते हैं।"[3]

---

1. बच्चनः निशा–निमंत्रण, रचना0–1, पृ0–167
2. वही, पृ0–167
3. वही, पृ0–172

एक टूटते तारे को देखकर कवि का अवसाद और गहरा हो जाता है और वह अपने अन्त के बारे में सोचने लगता है–

हुआ न उडगन में क्रन्दन भी
गिरे न आँसू के दो कण भी
किसके उर में आह उठेगी होगा जब लघु अन्त हमारा
देखो टूट रहा है तारा ।[1]

इस अवसादपूर्ण मन:स्थिति में रात धीरे–धीरे व्यतीत हो जाती है और फिर भोर में आशा की पहली किरण फूटती है और कुछ देर बाद क्षितिज में संभावनाओं को सूरज झांकता दिखाई पड़ता है–

शुरू हुआ उजियाला होना
हटता जाता है नभ से तम
संख्या तारों की होती कम
उषा झांकती उठा क्षितिज से बादल की चादर का कोना।"[2]

और अब सूरज की सवारी आ रही है –

आ रही रवि की सवारी
नव किरण का रथ सजा है
कलि कुसुम से पथ सजा है
बादलों से अनुचरों ने स्वर्ण की पोशाक धारी।"[3]

इस तरह हम देखते हैं कि "निशा – निमंत्रण" के गीतों में एक ऐसी उदासी समाई है जो पाठक के मन की उदासी को सोखती रहती है और अन्त तक पहुँचते–पहुँचते वह एकदम हल्का हो जाता है। इन गीतों की सबसे बड़ी विशेषता इनकी संगीतमयता है इन्हें सुनते हुए लगता है जैसे कोई झरना बह रहा हो और हम किनारे

---

1. बच्चन: निशा–निमंत्रण, रचना0–1, पृ0–173
2. वही, पृ0–191
3. वही, पृ0–191

खड़े हो उसकी कल–कल सुन रहे हों और अन्त में यही कवि का उपहार है –

"ले तृषित मरू होंठ तेरे
लोचनों का नीर मेरे
मिल न पाया प्यार जिनको आज उनको प्यार मेरा
विश्व को उपहार मेरा ।"[1]

निशा–निमंत्रण के गीतों में एक व्यक्ति को केन्द्र मानकर उसके जीवन साथी के असमय, अशुभ अवसान का राग मय चित्रण किया गया है। निशा– निमंत्रण के गीत अनलंकृत, अभिधात्मक तथा सहज शैली के गीत हैं। बच्चन जी की शब्द सृष्टि सबसे अलग पहचानी जाती है। इस दृष्टि से निशा–निमंत्रण के गीतों की शब्द रचना में कवि ने आशातीत सफलता प्राप्त की है। निशा निमंत्रण के सौ गीतों में एक भी गीत ऐसा नहीं है जिसमें शब्दावली दुरूह हो। उर्दू के प्रचलित मुहावरों का प्रयोग इन गीतों के भाव प्रसार को और भी गति प्रदान करता है–

याद सुखों की आँसू लाती
दुख की दिल भारी कर जाती
दोष किसे दूँ जब अपने से अपने दिन बर्बाद करूँ मैं।[2]

निशा– निमंत्रण के गीतों में लक्षणा व्यंजना तथा प्रतीक पदावली की कमी होते हुए भी लयात्मकता तथा चित्रात्मकता बरबस ही ध्यान खींचती है–

साथी सो न कर कुछ बात
बोलते उडुगन परस्पर
तरू दलों में मंद "मरमर"
बात करती सरि लहरियाँ कूल से जलस्नात्
बात करते सो गया तू
रह गया मैं और आधी बात आधी रात।"[3]

---

1 . बच्चनः निशा–निमंत्रण, रचना0–1, पृ0–201

2. वही, पृ0– 197

3 वही, पृ0– 175

निशा- निमंत्रण के गीतों में भाव-भाषा का, यथार्थ कल्पना का तथा वातावरण के चित्रण का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। इन गीतों में एक ऐसे दुखी मन का रोदन-गायन है जिसका हृदय निष्कपट हे और हर दुखी मन के रोदन की अभिव्यक्ति है -

"रो तू अक्षर-अक्षर में ही
को तू गीतों के स्वर में ही
शांत किसी दुखिया का मन हो जिनको सूनेपन में गाकर
क्यों रोता है जड़ तकिये पर। [1]

वस्तुतः निशा-निमंत्रण के गीत दर्द भरे मन के गीत है। इन गीतों में मर्मस्पर्शी सत्य है यथार्थ कल्पना है -

हाँ तुम्हारी मृदुल इच्छा
हाय मेरी कटु अनिच्छा
था बहुत माँगा न तुमने किन्तु वह भी दे न पाया।[2]

इस प्रकार निशा निमंत्रण के सौ गीतों को पढ़ने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि गीतों का यह संग्रह स्वर्गगता अर्धांगिनी श्यामा की स्मृति को स्थाई बनाये रखने का अप्रतिम उपहार है। लगता है कवि रह-रह कर गीतों के माध्यम से स्वयं को समर्पित कर दिया है। किन्तु कवि इन सबको अपनी उपलब्धि स्वीकार नहीं करता है।" अपने अवसाद-विषाद संकट दुख में भी, या शायद उन्हीं के कारण, मैं अवसन्न, विषण्ण, संकटापन्न दुखी संसार को अपनी सहानुभूति (सह + अनुभूति), संवेदना (सम+वेदना) दे सकता था।"[3] यही कारण है कि निशा-निमंत्रण के गीत किसी व्यक्ति विशेष की वेदना न रहकर सामान्य जन मानस की विरह वेदना के गीत बन जाते

---

1. **बच्चन : निशा निमंत्रण, बच्चन रचनावली -1, पृ0-182**
2. **वही, पृ0-187**
3. **बच्चनः नीड़ का निर्माण फिर, रचना0-7, पृ0-320**

हैं। इसके साथ ही इस संग्रह में ऐसे गीतों की संख्या भी कम नहीं है जो घोर निराशा विषाद की घड़ी में भी कवि को अनास्थावादी बनने से बचा लेते हैं या कवि के आस्था को खण्डित नहीं होने देते।

"साथी नया वर्ष आया है", "खेल चुके हम फाग समय से", "मैंने दुर्दिन में गाया है" और "जग बदलेगा किन्तु न जीवन" आदि कविताएं इसी तरह को हैं जिसमें कवि का यह आस्थावादी रूप लक्षित होता है।

वस्तुतः निशा-निमंत्रण मात्र विरह विषाद के गीतों का संग्रह नहीं है अपितु है एक असहाय एकाकी विधुर मानव की मानसिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप शब्द चित्रों का सजीव एलबम है।"[1] अतः यह निर्विवाद है कि सायंकाल से लेकर प्रातःकाल तक की पृष्ठभूमि पर रचे गये निशा-निमंत्रण के गीत कवि के हृदयोद्गार और भावों की साकार प्रतिमा है। श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा है कि "निशा-निमंत्रण तथा एकान्त-संगीत के सम्बन्ध में बिना किसी अत्युक्ति के यह दावा किया जा सकता है कि उनकी कुछ त्रयोदश पंक्तियाँ संसार के श्रेष्ठतम गीति-काव्य के अन्तर्गत रखी जा सकती है।"[2]

**एकान्त संगीत :**

एकान्त संगीत निराशा एकाकी और अन्तर्मन से टूटे हुए कवि का अन्तर्द्वन्द्व है। यह अंतर्द्वन्द्व बहुत ही तीखे ढंग से व्यक्त हुआ है। परन्तु यह विषाद हताश नहीं करता बल्कि निराशा के तिमिर को विच्छिन्न करके आशा की किरण उगाने को प्रेरित करता है। वस्तुतः निशा निमंत्रण से आकुल अंतर तक की कविताओं में एक सांगिक सम्बन्ध है। निशा निमंत्रण के गीतों का विषाद एकान्त - संगीत के गीतों में अन्तर्मुख हो गया है।

---

1. जीवन प्रकाश जोशी- बच्चन :व्यक्तित्व एवं कवित्व, पृ0-50
2. रामस्वरूप चतुर्वेदी: आलोचना- काव्यालोचन विशेषांक, पृ0-16

एकान्त संगीत की पहली कविता "अब मत मेरा निर्माण करो" 1938 में बनारस में बी0टी0प्रशिक्षण विद्यालय के प्रवेश के समय तथा "बुलबुल जा रही है आज" प्रस्थान के समय लिखा गया गीत है।

यद्यपि जीवन की विषाक्त वेदना कवि के लिए नवीन नहीं परन्तु मधु काव्य काल में कवि ने उसे मधु के घट और मधुबाला के पट से ढंकने का प्रयास किया था। परन्तु उसे ऐसा करने में सफलता नहीं मिली। कवि इतना अधिक दुखी एवं निराश हैकि अपने पुर्ननिर्माण का विरोध करता है–

इस चक्की (या चक्का) पर खाते चक्कर
मेरा तन मन जीवन जर्जर
हे कुंभकार, मेरी माटी को और न अब हैरान करो
अब मत मेरा निर्माण करो।"[1]

कवि स्पष्ट करता है कि कहने और सहने की एक सीमा होती है। वह रोकर हल्का होना नहीं अपितु हृदय पर पत्थर रख कर भारी होना चाहता है।

एकान्त संगीत को छठे संस्करण की भूमिका में बच्चन जी ने लिखा है "निशा निमंत्रण के गीतों को लिखते समय मैंने एक साथी की कल्पना की थी। कई गीत उसको सम्बोधित करके लिखे गये थे जैसे साथी सो न कर कुछ बात। निशा निमंत्रण के अन्त में मैंने उस साथी से विदा ले ली थी", जाओ कल्पित साथी मन के ? शायद मेरे मन में आया होगा कि जो अंधकार मेरे सामने आया है उसे एकदम एकाकी होकर देखूँ– छाया रूपी साथी से भी विरक्त अलग होकर ।"[2]

निशा निमंत्रण में प्राय: रात के वातावरण में गीतों का ताना–बाना बुना गया था। अंधेरे का वातावरण–अवसाद को व्यक्त करने में स्वाभाविक ही अनुकूल पड़ा

---

1 बच्चन: एकान्त संगीत : बच्चन –रचनावली–1, पृ0–215

2. बच्चन: एकान्त संगीत: अपने पाठकों से (छठे संस्करण की भूमिका) पृ0 208

था। एकान्त संगीत में वातावरण का आग्रह भी कवि ने छोड़ दिया है। निशा निमंत्रण की भाँति गीतों की भावना अब वातावरण पर निर्भर नहीं थी।

निशा निमंत्रण की प्राणघाती निराशा भी कवि से जीने की अभिलाषा और कामना न छीन सकी और एकान्त संगीत के प्रथम गीत में ही निराशा और विषाद से लड़ने की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है–

कहने की सीमा होती है
सहने की सीमा होती है
कुछ मेरे भी वश में, मेरा कुछ सोच समझ अपमान करो।[1]

ऐसा नहीं है कि अवसादने इसके बाद कवि को नहीं घेरा। वास्तव में एकान्त संगीत कवि के अवसाद, एकाकीपन में डूबने और उससे उबरने का काव्य है। अपने एकाकी पन के क्षणों में कवि किसी को गोदी में सिर रखकर सो जाना चाहता है।[2] जीवन की व्यर्थता का दंश कवि को साल रहा है–

व्यर्थ गया क्या मेरा जीवन
क्या न किसी के मन को भाया
दिल न किसी का बहला पाया
क्या मेरे ही उर के अन्दर ही गूंज मिटा उर क्रंदन मेरा
व्यर्थ गया क्या जीवन मेरा।"[3]

(एकान्त संगीत)

निराशा के गहनानंधकार में प्रकाश की कोई भी किरण न पा सकने की विवशता, शरीर के जड़त्व तथा सांसों के महज चलने की की बाध्यता का बोध

---

1. बच्चन: एकान्त संगीत, बच्चन रचनावली–1, पृ0–215
2 वही, पृ0–216
3. वही, पृ0–217

इन गीतों में उमड़ पड़ा है। कवि के व्यक्तिगत विषाद, नियति के निर्मम प्रहार समाज के ठेकेदार के मिथ्यारोपण से वह आर्तनाद कर उठता हैं –

जिसके पीछे पागल होकर
मैं दौड़ा अपने जीवन भर
जब मृग जल में परिवर्तित हो मुझ पर मेरा अरमान हंसा
तब रोक न पाया मैं आँसू !
जिसमें अपने प्राणों को भर
कर देना चाहा अजर अमर
जब विस्मृति के पीछे छिपकर मुझ पर मेरा वह गान हँसा।"[1]
(एकान्त संगीत)

परन्तु पुनः कवि अपने को संयत कर लेता है और इस विषाद पूर्ण मनःस्थिति से अपने को उबार लेता है और कह उठता है –

है हार नहीं यह जीवन में
जिस जगह प्रबल हो तुम इतने
हारे सब हैं मानव जितने
उस जगह पराजित होन में है ग्लानि नहीं मेरे मन में।[2]

आगे कवि कहता है –

मदिरा – मज्जित कर मन काया
जो चाहा तुमने कहलाया
क्या जीता यदि जीता मुझको मेरो निर्बलता के क्षण में
है हार नहीं यह जीवन में
सुख यहाँ विजित होने में है
अपना सब कुछ खोने में है
में हारा भी जीता ही हूँ जग के ऐसे समरांगण में
है हार नहीं यह जीवन में।

---

1. बच्चनः एकान्त संगीत – बच्चन रचनावली–1, पृ0–230
2. वही, पृ0–231
3. वही, पृ0–231

इस प्रकार आशा – निराशा अंधकार प्रकाश के बीच चलता हुआ कवि आगे बढ़ता है। कभी निराशा का घोर अंधकार तो कभी उससे संघर्ष कर उससे उबरने की चेष्टा । इसी संघर्ष में कवि संसार से कहता है–

योग्य नहीं यदि मैं जीवन के
जीवन के चेतन लक्षण के
मुझे खुशी से दो मत जीवन मरने का अधिकार मुझे दो
मत मेरा संसार मुझे दो।"[1]

परन्तु इस संघर्ष में मनुष्य की नश्वरता की ओर ध्यान जाता है तो कवि कह उठता है।

"मिट्टी दीन कितनी, हाय" और एक बार पुनः कवि एकाकीपन के सागर में डूबता है।

त्राहि – त्राहि कर उठता जीवन
जब रजनी के ये सूने क्षण में
तनमन के एकाकीपन में
कवि अपनी विह्वल वाणी से अपना व्याकुल मन कहलाता।[2]

"एकान्त संगीत" में कवि के यौवन की असफल प्रणयासक्ति, अभावग्रस्त जीवन की घोर निराशा के प्रति आक्रोश भरा तीव्र स्वर उभरता है–

प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर,
युद्ध क्षेत्र में दिखला भुजबल
रहकर अविजित अविचल प्रतिपल।"[3]

---

1. बच्चनः एकान्त संगीत, बच्चन रचनावली–1, पृ0–232
2. वही, पृ0–239
3. बच्चनः एकान्त संगीत, बच्चन रचनावली–1, पृ0–254, पद–92

और इसीलिए –

"क्षतशीष मगर नतशीष नहीं", का संदेश वाक्य कवि देता है और साथ ही कवि को अपने ऊपर इतना आत्मविश्वास है कि वह किसी से कोई सहायता स्वीकार नहीं करता। वह इस संसार रूपी अग्नि पथ को अकेले अपने तम पर पार करना चाहता है।

संक्षेप में यदि कहें तो "एकांत संगीत" के सौ गीतों में मध्यवर्गी व्यक्ति के जीवन संघर्ष की कठोर और मर्मस्पर्शी गाथा है। एकान्त संगीत के गीत निराशापरक हैं। किन्तु गीतों का मूल स्वर संघर्षपरक ही कहा जा सकता है। "अग्निपथ", "प्रार्थना मत कर", "अग्नि देश से आता हूँ मैं", तुम्हारा लौह चक्र आया, आदि गीतों में उस महासंघर्ष की प्रतिध्वनियाँ परिलक्षित होती हैं जो कवि की निराशा और अपराजेय जिजीविषा के बीच चल रहा था। इन गीतों में विषाद और निराशा की जो अभिव्यक्ति है वह आशा की किरण की खोज में अंधकार और निराशा के अन्तिम तह तक जाने और उस अन्तिम तह में भी जो किरण उजाला कर रही हैं उसी के सहारे कवि के ऊपर उठने की यात्रा है। यह कवि के आस्था की परीक्षा थी जिसमें वह सफल हुआ है और आशा का संदेश देता है –

दीपक है नभ के अंगारे
चलो इन्हीं के साथ सहारे
राह ? नहीं है राह यहाँ पर अपनी राह बनाओ
आगे हिम्मत करके आओ।[1]

## आकुल अन्तर

आकुल अन्तर की कविताएं सन् 1940–42 में लिखी गयी हैं। ऐसा लगता है कि एकान्त संगीत के बाद और सौ गीतों का संग्रह तेयार करने की धुन में कवि

का वह तारतम्य जो निशा निमंत्रण और एकान्त संगीत में था आकुल अन्तर तक आते-आते खण्डित हो जाता है। सम्भवतः इसी कारण कवि को 71 गीतों के बाद ही इसे संग्रह का स्वरूप स्वीकार करना पड़ा। इस संग्रह के गीतों में न तो पूर्ववर्ती आत्मीयता ही रह पाती है और न केन्द्रीय भाव।

"निशा निमंत्रण में जिस अवसाद की छाया उतरी थी उसके अन्तिम और संघनतम रूप को देखने के लिए मैं एकान्त संगीत सुनता हुआ आकुल अन्तर की गुहा में पैठ गया। जहाँ अँधकार सघनतम है, वहीं प्रकाश की पहली किरण है। उसी के धुंधलके किन्तु निश्चित प्रकाश की ओर हाथ फैलाता हुआ मैं आकुल अन्तर से निकलकर सतरंगिनी के आँगन में पहुँच गया।"[1]

इस प्रकार यदि एकान्त संगीत के गीत आत्म केन्द्रित मनुष्य के घोर विषाद और उसके तीव्र चीत्कार को ध्वनित करते हैं तो आकुल अन्तर के गीत इस चीत्कार को हटाकर जगत-गति में स्वयं को लीन कर देने के लक्ष्य की ओर इशारा करते हैं।"[2]

बच्चन जी के अनुसार "इन तीनों ही रचनाओं में एक सांगिक सम्बन्ध है। इन तीनों रचनाओं की इकाई जीवन के गहनान्धकार में पैठने, उससे संघर्ष करने और उससे बाहर निकलने की भाव यात्रा है –

गहनान्धकार में पाँव धार
युग नयन फाड़, युग कर पसार
उठ उठ, गिर-गिर कर बार-बार
मैं खोज रहा हूँ अपना पथ, अपनी शंका का समाधान।"[3]

---

1. बच्चन: आकुल अंतर- बच्चन छठा सं0- अपने पाठकों से, पृ0-262
2. जय प्रकाश भारी: बच्चन का साहित्य कथ्य और शिल्प : पृ0-62
3. बच्चन: एकांत संगीत (भूमिका) रचना0-1, पृ0-207

परन्तु कवि व्यक्तिगत परिस्थितियों एवं जीवन घटनाओं को परिसीमित इसलिए नहीं कर पाता कि वह इसके माध्यम से अपनी नहीं बल्कि अपने जैसे भुक्तभोगी समाज की सहानुभूति को ही वाणी देता है। भले ही इसके लिए कवि ने आत्मानुभव के साधन को अपनाया है।

एकान्त संगीत के "कितना अकेला हाया में" लिखने के बाद कवि आकुल अंतर की पहली कविता में ही यह बताता है सागर की लहर में, अम्बर की वायु में, कलिका के गन्ध में, मधुवन के पुष्प में, कोकिल की कूक में गायक के गान में तथा कवि के गीत में उसकी विकलता ही मुखरित होती है। कवि को पीड़ा होती है कि उसे उसकी पीड़ा में सांत्वना देने ऐसे लोग आते हैं जो उसे समझ नहीं पाए है और उसकी दुर्बलताओं से लाभ उठाने वाले लोग ही मिले ऐसा कोई व्यक्ति नहीं आया जो उसे उसकी दुर्बलता में दुलराता। कवि का प्राण मन इस बात से आहत हैं कि कल तक जिसे वह अपना समझता था वो आज ऐसे हैं जैसे उनसे कभी पहचान हो न थी।

आज आहत मान, आहत प्राण
कल जिसे समझा कि मेरा
मुकुर बिम्बित रूप
आज वह ऐसा कभी की हो न ज्यों पहचान।[1]

तब वह जानकर अनजान बन जाने तथा हृदय को पाषाण बन जाने के लिए कहता है। कवि अब ऐसे किसी के साथ अपने सुख-दुख बाँटने के लिए तैयार नहीं जिसमें मौलिकता नहीं जिसमें आग न हो। क्योंकि सब कुछ पुरातन जीर्ण-शीर्ण है अतः कवि को ऐसी प्रणय की भेंट स्वीकार नहीं जिसमें नयापन न हो। क्योंकि कवि जान चुका है कि छद्म प्रेमावेग और मृगतृष्णा में वह बहुत भटक चुका है और यह उसकी सबसे बड़ी नादानी थी।

---

1 बच्चन: आकुल अन्तर- बच्चन रचनावली-1, पृ0-268

वह कि ी अंतस्थल की तलाश में है जिसमें वह अपनी विकास विकृति को निःसंकोच रख सकता है। पुनः वह किसी ऐसे वक्षस्थल की तलाश में है जहां अपनी गर्दन ऊँची रखकर चलने का प्रण लेकर भी, और कभी पलायन न करने का प्रण लेकर भी वह अपनी गर्दन झुका सके, जहाँ वह अपना मत्था टिका सके और अपना शीश झुका सके।[1] और तुरन्त बाद ही वह ऐसे शरणस्थली की तलाश करने लगता है जहाँ जीवन रूपी समर के बीच भी युद्ध की प्रतिध्वनि न हो। जहाँ जीवन एक गीत है और गायक उस ठौर की तलाश में है जहाँ मूकता भंग न होती हो।

ऐसी स्थिति में उसे लगता है कि क्या यही जीवन है –

मैं पुलक उठता न सुख से
दुख से तो क्षुब्ध होता
इस तरह निर्लिप्त होना लक्ष्य तो मेरा नहीं
हाय क्या जीवन यही था।"[2]

(आकुल अंतर 25)

और उसे लगता है वह छला गया जीवन ने उसे छल लिया है–

छल गया जीवन मुझे भी
देखने में था अमृत वह
हाथ में आ मधु गया रह
और जिह्वा पर हलाहल। विश्व का वंचन मुझे भी।"[3]

(आकुल अंतर–27)

और कवि को हर जगह समत्व दीख पड़ने लगता है।

"अनासक्त था मैं सुखों दुखों से
अधरो को कटु–मधु समान था।[4]

---

1. बच्चन: आकुल अन्तर– बच्चन रचनावली–1, पृ0–269
2. वही, पृ0–277 , पद–25
3. वही, पृ0–278, पद–27

इस सनातन सत्य के परिप्रेक्ष्य में कवि अपने अकेलेपन की शक्ति को पहचान जाता है। वह जान जाता है कि दूसरों की संवेदना वस्तुतःनिरर्थक ही है। क्योंकि उससे अधिक धोखा और प्रवंचना कोई अन्य नहीं दे सकता। कोई किसी के दुख को बाँट नहीं सकता दुख तो स्वयं को ही सहना पड़ता हे फिर संवेदना की क्या आवश्यकता–

कौन है जो दूसरे को
दुख अपना दे सकेगा ?
कौन है जो दूसरे से
दुख उसका ले सकेगा
क्यों हमारे बीच धोखे
का रहे व्यापार जारी
क्या करूं संवेदना लेकर तुम्हारी
क्या करूं ?[1]

(आकुल अन्तर)

अब कवि उस "महापीर" की समाप्ति का अनुभव करता है जो विधाता के सिर पर वज्र गिराने चली थी–

मेरे मानस की महापीर
जो चली विधाता के सिर पर,
गिरने को बनकर वज्र शाप

× × ×

होती समाप्त अब वही पीर
लघ–लघु गीतों में शक्ति हीन[2]

(आकुल अंतर)

---

1. बच्चनः आकुल अन्तर – बच्चन रचनावली–1, पृ0–289, पद–51
2. वही, पृ0–276, पद–22

विद्रोही कवि बच्चन यहाँ आकर समझौता वादी हो जाता है–

"स्वागत सबके लिए यहाँ पर नहीं किसी के लिए प्रतीक्षा।"[1]

इस प्रकार आकुल – अंतर में कवि व्यक्तिगत विषाद से उबरने का प्रयास कियाहै। पूर्व के गीत संग्रहों जैसी आत्म तल्लीनता तथा अनुभूति – अभिव्यक्ति की तीव्रता एवं सुन्दरता आकुल अन्तर के गीतों में नहीं रही। आकुल– अंतर के गीतों में भावुकता कम विवेक तर्क अधिक है। फिर भी विषाद से मुक्ति के प्रयास में गीतों में आशावादिता की झलक दृष्टिगत होती है कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

तू तो जलता हुआ चला जा
जीवन का पथ नित्य तमोमय
भटक रहा इन्सान भरा– भय
पल भर सही परग भर को ही कुछ को राह दिखा जा।"[2]

इसी प्रकार "मैं जीवन की शंका महान"

"उठ समय से मोरचा ले", "बजातू वीणा और प्रकार"
"तू एकाकी तो गुनहगार", आदि सभी गीत निराशा के
नहीं आशा के गीत है, रोदन के नहीं ओज के गीत हैं।
अनास्था नहीं आस्था के, विनाश नहीं निर्माण के, पलायन
नहीं संघर्ष के गीत हैं, संक्षेप में आकुल अंतर
मानवीय पीड़ा से जूझनं, उबरने उभरने और आस्था के
साथ दृढ़ कदमों से बढ़ने और संवरने की अविस्मरणीय
विस्मयकारी कृति है।"[3]

---

1. बच्चनः आकुल अन्तर – बच्चन रचनावली–1, पृ0–282, पृ0–34
2. बच्चनः आकुल अंतर– रचना0–1, पृ0–294
3. कृष्ण चन्द पाण्ड्या– बच्चन व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ0–124

## तृतीय चरण

**सतरंगिनी** :

सतरंगिनी में कुल 50 कविताएँ हैं एक प्रवेश गीत है; शेष 49 कविताएँ सात–सात कविताओं के सात खण्डों में विभक्त हैं।

निशा–निमंत्रण से चलकर अंतर तक आते आते बच्चन को अपनी अगली मंजिल का अहसास हो गया था –

यहीं नहीं यह कथा खतम है
मन की उत्सुकता दुर्दम है
चाह रही है देखे आगे
ज्योति जगी या सोया तम है।[1]

इसके साथ ही कवि यह भी कहता है –

घोषणा करे इसका गायक
जीवन है जीने के लायक
जीवन है कुछ करने के लायक
जीवन है लड़ने के लायक
जीवन है मरने के लायक
जीवन के हित बलि कर जीवन।[2]

सतरंगिनी तम भरे, गम भरे बादलों के ऊपर इन्द्रधनुष रचन का प्रयास है। अवसाद के अन्धकार से प्रसन्नता की रंग छटा में आने का–

काले घनों के बीच में
काले क्षणों के बीच में
उठने गगन में, लो लगी,
यह रंग–बिरंगी विहंगिनी
सतरंगिनी, सतरंगिनी।[3]

---

1. बच्चन: सतरंगिनी– बच्चन रचनावली–1, पृ0–308

जो विहंगम आह भर-भर कह रहा था "लुट गये मेरे सलोने नीड़ के तृणपात साथी" वह अब नीड़ का निर्माण फिर गाता है–

नाश के दुख से कभी
दबता नहीं निर्माण का सुख
प्रलय की निस्तब्धता से
सृष्टि का नवगान फिर–फिर ।[1]

इसी प्रकार जो जुगनू एक दिन आशा मय उजियाले का अवशेष मात्र लगा था, वह विध्वंश के बीच निर्माण की आशा का प्रतीक बन गया।

प्रलय का सब समाँ बाँधे प्रलय की रात है छायी
विनाशक शक्तियों की इस तिमिर के बीच बन आई
मगर निर्माण में आशा दृढ़ाये कौन बैठा है ?
अँधेरी रात में दीपक जलाए कौन बैठा है ?[2]

जिसने एक दिन कहा था, "उठो मिटा दें आशाओं को",
वही अब कहता है –

सुन यदि तूने आशा छोड़ी
तो अपनी परिभाषा छोड़ी
तुझे मिली थी यह अमरों की केवल एक निशानी
मानी देख न कर नादानी।[3]

इस प्रकार सतरंगिनी अंधकार के ऊपर प्रकाश विध्वंश के ऊपर निर्माण, निराशा के ऊपर आशा और मरण के ऊपर जीवन की जीत का गीत है। यह कोई सस्ता आशावाद नहीं। यह अश्रु, स्वेद, रक्त का मूल्य चुकाकर उपलब्ध किया गया है।

---

1. बच्चन: सतरंगिनी– बच्चन रचनावली–1, पृ0–349
2. वही, पृ0–334
3. वही, पृ0–348

सतरंगिनी के इन्द्रधनुषी छाया में आकर कवि जीवन के नए प्रात, नई सृष्टि और नए उत्तरदायित्व के बोध से परिचित होता है।"

फुल्ल कमल, गोद नवल, मोद नवल
गेह में विनोद नवल
बाल नवल लाल नवल
दीपक में ज्वाल नवल ।[1]

जीवन प्रकाश जोशी के अनुसार सतरंगिनी के गीतों को दुख के क्षणों में भी गाकर सुख मिलता है और सुख के क्षणों में भी।[2] संक्षेप में सतरंगिनी जीवन के दारूण दुखद के ऊपर सुख की मधुर अभिव्यक्ति है। किन्तु स्वयं कवि के शब्दों में वह आग से राग के संसार में पदार्पण का बोध करातो है।[3]

पहले रंग की कविताओं में सतरंगिनी, वर्षा–समीर, कोयल, पपीहा, जुगनू, नागिन तथा मयूरी है। सतरंगिनी आकाशीय इन्द्रधनुष न होकर धरातलीय रंग–बिरंगी विहंगिनी भी है। वर्षा– समीर जाते–जाते एक बार फिर कवि को दहन सहन का आभास देकर चली जातो है। कोयल शीर्षक कविता पूरे संग्रह की सबसे बड़ी कविता है। "पपीहा" में मानव के विशेषत्व की माँग का प्रतिनिधित्व हुआ है। "जुगनू" जहाँ बचे हुए विश्वास को वाणी देने वाली कविता है तो विगत में मृगमरीचिका में फँसे मानव के प्रायश्चित का स्वर भी है।

नागिन और मयुरी दोनों ही रचनाएं प्रतीकात्मक हैं जो सतरंगिनी है जो इन्द्र धनुष है, मृगमरीचिका है वही नागिन भी है। दूसरे शब्दों में नागिन प्रमदा नायिका का प्रतीक है। नागिन और मयूरी सतरंगिनी के दो ध्रुव हैं। मृगमरीचिका– गलत नारी से सही नारी की खोज यात्रा है। स्वयं बच्चन जी के शब्दों में "साधारण व्यक्ति

---

1 बच्चन: सतरंगिनी, रचना0–1, पृ0–360

2. बच्चन: व्यक्तित्व एवं कवित्व, जीवन प्रकाश जोशी, पृ0–128

3. बच्चन: नीड़ का निर्माण फिर– (आत्मकथा) –बच्चन रचनावली–7,

का जीवन जब विश्रृंखल होता है तो उसमें या तो नारी का अभाव होता है या गलत तरह की नारी उसके जीवन में आ जाती है, या नारी के प्रति उसकी धारणाएं विकृत हो जाती हैं और जब वह अपने जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए संघर्ष करता है तो उसकी पहली खोज सही नारी के लिए होती है। मैं निःसंकोच लिखना चाहता हूँ कि संतरंगिनी में विश्रृंखला से सामंजस्य की ओर अग्रसर होने में एक संघर्ष सही नारी के खोज के लिए भी है।"[1]

नागिन "प्रमदा" का प्रतीक है तो मयूरी परिणीता का। कवि ने सतरंगिनी की भूमिका में लिखा है– प्रमदा जीवन का, विशेषकर हमारे आधुनिक जीवन का बहुत बड़ा विकार है, बहुत बड़ी चुनौती भी। उसके साथ प्रणय, जिसमें वासना का आकर्षण ही अधिक होता है, संघर्ष बन जाता है। उन्होंने आगे लिखा है प्रमदा जीवन को अवरूद्ध करती है, परिणीता जीवन को विकसित। प्रमदा जीवन को विश्रृंखलता और उच्छृंखलता में बदल देती है, परिणीता जीवन की विश्रृंखलता को सामंजस्य प्रदान करती है।

आध्यात्मिक, भाषा में नागिन "माया" का और मयूरी "परमात्मा" का प्रतीक है। बच्चन के जीवन में एक नहीं पाँच प्रमदाएं आईं। परन्तु सभी को नागिन स्वीकार नहीं कर पाए। ऐसा क्यों ? इसलिए कि वे बच्चन की उपलब्धियाँ बन गयी। माया (आइरिस) परमात्मा (तेजी) तक पहुँचने में बाधा न बनकर सहायक बन गयी। विस्मय की बात है कि जहाँ माया (नागिन प्रमदा) सांसारिक प्राणियों को नाच नचाती है वहीं यह सांसारिक प्राणी यह आभासित करते हुए भी कि उसके आलिंगन में हिम श्रृंगों की शीतलता और ज्वालामुखियों की दाहकता साथ–साथ है। उससे नर्तन करने को कहता है। कुछ भी हो कवि इस रहस्यमयी छलना–ललना के आगे निःसंकोच आत्मसमर्पण कर देता है। क्योंकि साम, दाम, दण्ड, भेद, जप, तप. व्रत, संयम सभी कुछ करने के बाद भी "असफल सारा व्यापार हुआ" और अंततोगत्वा इस निष्कर्ष पर पहुँचता है–

---

1. बच्चनः सतरंगिनी– "भूमिका", बच्चन रचनावली–1, पृ0–317

अब शान्ति, अशान्ति मरण जीवन
या इनसे भी कुछ भिन्न अगर
सब तेरे विषमय चुम्बन में
सब तेरे मधुमय दंशन में ।[1]

मयूरी काफी चर्चित रचना है। चर्चा इस बात को कि मयूरी कहीं मयूर नाचता है। परन्तु इस विवाद में न पड़ना ही श्रेयस्कर है। मयूरी एक प्रतीक है जिसे पहले ही कहा जा चुका है।

दूसरे रंग की पहली छः कविताएं विगत स्मृतियों, विध्वंश, असफलताओं अप्राप्तियों से उबरने उभरने की कविताएं हैं। तथा सातवीं "कामना" मृत्यु की गोदी में जीवन के सपने देखने की कविता है। तीसरे रग की प्रथम कविता "प्रतिकूल" पावस के स्थान पर वासंतिक के संचरण की, दूसरी कविता– "सम्मानित"– पूर्वाग्रहों के परित्याग की, तीसरी "अजेय" – दुर्दम्य जीवन की, चौथी– "अधिकारी"– स्नेह के बंधन द्वारा मुक्ति के नव द्वार खोलने की, पाँचवी–"प्रत्याशा" –महानाश की छाती पर नव निर्माण की, छठी – "चेतावनी" – ध्वंसों में सिर उठाकर सृजन का गीत गाने की तथा सातवीं कविता – "निर्माण" – नीड़ के पुनः निर्माण की कविता है, समग्रतः तीसरे रंग की कविताएं "नाश में निर्माण" की कविताएं हैं।

चौथे रंग की – दो नयन, जादू, तूफान, मृग तृष्णा, प्यार और संघर्ष तुम नहीं हो, तथा नई झनकार, "मृग तृष्णा से निकलने और नई झनकार सुनने के द्वन्द्व की कविताएं है।

पाँचवे रंग की– मुझे पुकार लो– शूल सी गड़ी भूल को सुधारने की, "कौन तुम हो" – देव तुल्य वरदान को समझने की, "वेदना का गीत" – अंतर्ज्वाला को दो आँसुओं की बूँद से बुझाने वाले के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन की, "तुम गादो" जीवन

---

1. बच्चनः सतरंगिनीः "नागिन" – बच्चन रचनावली–1, पृ0–334

गीत को स्वर संगीत देने की "जयमाल" पुनर्वरण के क्षणों की स्मृति की, लौटा लाओ– चिर–पिपासित अधरो को रस की एक बूंद लौटा लाने की पुकार की तथा अभिसार के पल"– अभिसार के पलों को निर्बाध भोगने की तैयारी की कविता है।

छठे रंग की सभी कविताएं तथा सातवें रंग तीन कविताओं में कवि ने छोटे छोटे छन्दों का प्रयोग किया है। लघु छन्दों वाले यह गीत सशक्त अभिव्यंजना लिए हुए है। शेष चार कविताएं काल, कर्तव्य, साधन और विश्वास अदम्य साहस और आस्था की कविताएं है।

## हलाहल

प्रकाशन क्रम की दृष्टि से "सतरंगिनी" के बाद "हलाहल" आता है। वस्तुतः इन कविताओं की भावभूमि मधुशाला के आस–पास की है। इसका रचना काल बहुत लम्बा है। 1936–1945 के मध्य ये कविताएं लिखी गयी। प्रारम्भ में उनकी पत्नी स्वर्गता श्यामा की मृत्यु का प्रभाव हलाहल की प्रेरणा था परन्तु बाद में माँ की मृत्यु का प्रभाव भी है जिसकी मृत्यु में पूर्ण संतुष्टि का भाव था। वस्तुतः बच्चन जी ने अपने मधु काव्योत्तर काल में कुछ अन्य संग्रहों की कल्पना भी की थी। "अतीत का गीत", मरघट, हलाहल, विकल विश्व। जिनमें से "अतीत का गीत" और मरघट अधूरे ही कहीं बच्चन जी के कागज पत्रों में पड़े हैं। विकल विश्व कभी प्रकाशित नहीं हुआ। बाद में उन कविताओं को "धार के इधर उधर" में प्रकाशित किया गया। और "हलाहल" बहुत वर्षों बाद कुछ भिन्न रूप में प्रकाशित कराया गया।

अतः विकास क्रम की दृष्टि से हलाहल" मधुशाला का ही समकक्षी है। वही भाषा, वही छंद – वही कथन भंगिमा जो मधुशाला में थी यहाँ भी है। हलाहल का मूल स्वर टूटे हुए व्यक्ति मन की विजय का स्वर है। हलाहल की दार्शनिक चिन्तन जीवन सत्य तथा युगानुभूति पर आधारित है।

न जीवन है रोने का ठौर
न जीवन खुश होने का ठौर
न होने का अनुरक्त विरक्त
अगर कुछ करके देखो गौर ।"[1]

"हलाहल"

हलाहल के सम्बन्ध में पन्त जी का कथन है– इसमें मर्मस्पर्शी व्यथा की नींव पर एक व्यापक जीवन दर्शन के प्रसाद का निर्माण हुआ है। हलाहल कवि के जीवन की कटुता तथा उसकी विकट परिस्थितियों का प्रतीक है। कवि संघर्ष को चुनौती मानकर पूरी आस्था के साथ कहता है –

नहीं मैं यह कहता हूँ भूल
कि जब था आमज्जित मधु बीच
नहीं क्यों आकर मुझको मौत
गई ले इस जीवन से खींच
तभी यदि करता मैं प्रस्थान
अधूरा रहता मेरा गान
मुझे आया है मधु का स्वाद
हलाहल पी लेने के बाद।"[2]

"हलाहल"

इतना ही नहीं कवि कहता है कि मदिरा और हलाहल दोनों से ही मुक्ति मिल सकती है –

मुक्ति ही यदि जीवन का ध्येय,
मुझे मदिरा में भी थी प्राप्त
मुक्ति ही यदि जीवन का ध्येय
हलाहल के कण–कण में व्याप्त।"[3]
"हलाहल"

---

1. बच्चन: : हलाहल– बच्चन रचनावली–1, पृ0–388, पद–49
2. वही, पृ0–385, पद–32
3. वही, पृ0–936, पद – 111

जीवन की इच्छा की यही कठोर वास्तविकता उनको रचनाओं में हलाहल का रूप धारण करके उतरी है, "हलाहल" में कवि जीवन के इसी संघर्ष का रूप प्रकट हुआ है। हलाहल की कविता हम सभी के जीवन की कविता है और उसकी प्रत्येक पंक्ति मानों हमारे निजी जीवन का ही परिचय कराती सी जान पड़ती है क्योंकि जीवन की ये कठोर वास्तविकताएं हम सभी के समक्ष उपस्थित होती हैं। जहाँ मधुशाला में मस्ती का रंग ही प्राप्त होता है वहाँ "हलाहल" से आशा और कर्मशीलता का संदेश प्राप्त होता है।

जीवन क्या है इसे केवल मधु का घूंट पीकर नहीं जाना जा सकता केवल आनन्द से जीवन का एक ही पक्ष जाना जा सकता है। जीवन वास्तव में क्या है इसे तो "हलाहल" पीने के बाद ही जाना जा सकता है। कवि को न तो जीवन का मोह है न ही वह मरने को तैयार है। इस संसार के जो जीवन मरण का अर्थ है वह भी उसे स्वीकार नहीं।

अपने कष्टों से जूझते रहकर ही कवि को यह अनुभव होता है कि मधु कोरी कल्पना मात्र है और यदि जीवन संघर्ष से हार मान लें तो यही मधु "हलाहल" बन जाता है। पर संघर्ष करते रहें तो सुख का अमृत अवश्य ही मिलेगा। यही "हलाहल" का केन्द्रीय भाव है।

जीवन में सुख और दुख दोनों ही आते हैं। केवल सुख की कामना करने वाले ही निराश होते हैं। जबकि यदि सुख है तो दुख भी अवश्य आता है और जब केवल सुख की ही आशा में दुख आ जाता है तो लगता है–

> "हलाहल के स्वागत को किन्तु,
> न था इतनी जल्दी तैयार।"[1]

---

1. बच्चन: हलाहल: बच्चन रचनावली–1, पृ0–381, पद–3

किन्तु तैयार होने न होने से दुख का आना तो रूकेगा नहीं और यदि सुख आता भी है तो वह क्षणिक मात्र होगा।

"तुम्हें अब करके भी तो प्राप्त
रहा हूँ विष ही आगे देख
हलाहल के दो युग के बीच
एक मदिरा की कल्पित रेख।"[1]

"हलाहल"

और यदि जीवित रहना है तो हलाहल का पान करना ही होगा और मधु का असली स्वाद भी तभी आता है जब हलाहल का पान कर लिया जाय। अर्थात् सुख का आनन्द भी तभी आयेगा जब साथ में दुख भी आए। बिना दुख के सुख की कल्पना ही नहीं की जा सकती। या कहें कि सुख का अस्तित्व ही नहीं होगा बिना दुख के इसीलिए कवि कहता है –

मुझे आया है मधु का स्वाद
हलाहल पी लेने के बाद [2]

हलाहल जहाँ जीवन का कटु सत्य है वहाँ सुरा जीवन का स्वप्न है। अतः जीवन के स्वप्नों को कटु यथार्थ का सामना तो करना ही पड़ेगा।

मधुशाला का कवि एक होते हुए भी अकेला नहीं है, वह मधु के प्रेमियों के समाज का अंग है। पर "हलाहल" का कवि अकेला है –

हलाहल पीने में भी साथ
किसी का चाहो, तो नादान
अकेलापन है पहला घूँट
हलाहल का, लो इसको जान।[3]

"हलाहल"

---

अकेलेपन एवं निराशा के इस वातावरण में कवि जगत की विराटता, नश्वरता और निरन्तर परिवर्तनशीलता पर भी विचार करता है, और पाता है–

जगत है चक्की एक विराट
पाट दो जिसके दीर्घाकार
गगन जिसका ऊपर फैलाव
अवनि जिसका नीचे विस्तार ।"[1]

"हलाहल"

निश्चय ही जीवन की नश्वरता से सम्बन्धित अनेक तर्क अपने पूर्ववर्ती तर्कों की भाँति यहाँ भी अकाट्य हैं। व्यक्तिवादी अस्तित्व बोध की सबल अभिव्यक्ति हलाहल की विशेषता हैं।

कवि जीवन का हलाहल पीकर उसे पिलाने वाले के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हैं –

"गरल पीकर भी मेरी आवाज अमरता का गायेगी गान
इसे भी मैं देने के हेतु तुम्हारा मानूँगा अहसान।"[2]

क्योंकि कवि में इसी हलाहल को पीने से इतनी शक्ति आ जाती है कि वह अकेले चल पड़ता है। यद्यपि "हलाहल" में नश्वरता, क्षण भंगुरता निराश मनःस्थिति की परिचायक हे तथापि अंत में कवि की आस्था इन सभी पर विजय प्राप्त करती है। यहाँ आस्था– अनास्था का द्वन्द्व सामने आता है। इस प्रकार कवि अंत में निराशा के चक्र से बाहर निकलकर उस गौरव पूर्ण स्थिति पर पहुँच जाता है जहाँ न तो जीवन से मोह है न ही मरने को तेयार। इस संसार में जीवन मरण का जो अर्थ है वह भी कवि को नहीं स्वीकार है। कवि को न तो अपनी लघुता पर संतोष है न प्रभुता पर विश्वास –

---

1. बच्चन: हलाहल– बच्चन रचनावली–1 पृ0–388, पद–50
2. वही, पृ0–382, पद–8

मरण था भय के अन्दर व्याप्त
हुआ निर्मम तो विष निस्तत्व
स्वयं हो जाने को है सिद्ध
हलाहल से तेरा अमरत्व।"[1]

संक्षेप में "हलाहल मधु के स्वप्न लोक से उतर कर जीवन के यथार्थ गरल का काव्य है।[2] यहाँ आस्था, आशा और विश्वास की विजय के लिए ही अनास्था निराशा और अविश्वास को तुलनात्मक रूप में ग्रहण किया गया है।

## मिलन यामिनी

मिलन यामिनी का रचना काल सन् 1945–49 है। मिलन यामिनी में संयोग और वियोग की चरम अनुभूति के क्षण अनुभव किये जा सकते हैं। मिलन यामिनी में वियोग की अपेक्षा संयोग का अंकन अधिक हुआ है।

जहाँ निशा निमंत्रण में कवि के विरह तथा करूण भावना के अद्वितीय गीत हैं वहाँ मिलन–यामिनी में मिलन भावनाओं की अभिव्यक्ति करने वाले अनुपम गीत हैं। श्रृंगार का एक रस सिक्त पक्ष निशा निसंत्रण है, दूसरा रसोद्वेलित पक्ष मिलन यामिनी में है। दोनों में अनुभूति की अतल गहराई तथा अभिव्यक्ति में गीत विधा की पूर्णता है। निशा निमंत्रण में जहाँ एक प्रकार की तन–मन–प्राण की अतृप्ति थी, वहाँ मिलन यामिनी में एक तृप्ति है। ऐन्द्रिकता को माध्यम बनाकर हृदय की गहरी से गहरी तह को स्पर्श किया गया है। इन गीतों की यही विशेषता है। कृति को तीन भागों में कवि ने विभाजित किया है– "पूर्व भाग", "मध्य भाग" एवं "उत्तर भाग"।

पूर्व भाग में संयोग श्रृंगार की मधुरता का दर्शन होता है। प्रकृति का उद्दीपक वातावरण की सृष्टि जैसा इस कृति में है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

---

1. बच्चन: "हलाहल" बच्चन रचनावली–1, पृ0–400 पद–137
2. कृष्ण चन्द पाण्ड्या– बच्चन व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ0–140

मिलन यामिनी के गीत आनन्द, मस्ती व आह्लाद के गीत हैं। इन गीतों में मानवीय संवेदना, सहानुभूति एवं पर दुख कातरता की सहज अभिव्यक्ति मिली है। जीवन प्रकाश जोशी के अनुसार – "संयोग श्रृंगार के जो सरस और श्रृंगार भावना को उद्दीप्त करने वाले प्रकृति के वातावरण की रंगीन सृष्टि मिलन यामिनी के गीतों को पढ़ाते हुए होती है वह अन्यत्र दुर्लभ है।"[1] मिलन यामिनी के पूर्व भाग में कवि जिज्ञासु है और अनुसंधान में प्रयत्नशील है। प्रकृति का उद्दीपक वातावरण कवि के अंतस को उद्दीप्त करने में सहायक होता है। गीतों में "प्राण" को ही अधिकता से संबोधन किया गया है।

> चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में
> भूमि का उर तप्त करता चन्द्र शीतल
> व्योम की छाती जुड़ाती रश्मि कोमल
> किन्तु भरती भावनाएं दाहमन में ।[1]

इसी प्रकार मिलन यामिनी के कई गीतों में ऐसी अभिव्यंजना भी है जहाँ कवि अपनी नवीन उपलब्धियों को देखता है और संकल्प एवं विश्वास के साथ जीवन को स्वीकारता है।

मिलन यामिनी के मध्य भाग के गीत भावुकता के फैलाव के गीत हैं। संगीत तथा सौंदर्य को कवि की अनुभूति संभालती है। मध्य भाग के गीतों में मानवीय संवेदना, सहानुभूति के स्वर जहाँ पर भी व्यक्त हुए हैं, वहाँ पर अत्यन्त सहज और व्यापक बन पड़े हैं–

> जो औरों का आनंद बना, वह दुख मुझ पर फिर–फिर आए,
> रस में भीगे दुख के ऊपर, मैं सुख का स्वर्ण लुटाता हूँ।"[3]

---

1. जीवन प्रकाश जोशी: बच्चन– व्यक्तित्व एवं कवित्व, पृ0–62
2. बच्चन: मिलन यामिनी– बच्चन रचनावली, पृ0–23
3. बच्चन: मिलन यामिनी– बच्चन रचनावली–2, पृ0–50

मिलन यामिनी का मुख्य स्वर जीवन का स्वर हैं। उसके गीतों में श्रृंगारी भावनाओं का प्रकाशन अत्यधिक प्रभावपूर्ण हुआ है –

मैं रखता हूँ हर पाँव सुदृढ़ विश्वास लिए
ऊबड़–खाबड़ तम की ठोकर खाते–खाते
इनसे कोई रक्ताभ किरण फूटेगी ही।"[1]

इसी प्रकार –

जीवन की आपाधापी में कब वक्त मिला
कुछ देर कहीं पर बैठ कभी यह सोच सकूँ
जो किया, कहा, माना उसमें क्या बुरा भला।"[2]

इन गीतों में भाव भाषा छंद की एक अद्वितीय गति है–

"जब इस पथ पर थे पाँव दिये, तब चीख पड़ा था यो अंबर
इसकी मंजिल पाई जाती, केवल मरकर, केवल मिटकर"[3]

जीवन की तलाश में ही कवि कहता है –

फूलों से, चाहे आँसू से, मैंने अपनी माला पोही,
किन्तु उसे अर्पित करने को, बाट सदा जीवन की जोही,
गई मुझे ले मृत्यु भुलावा, दे अपनी दुर्गम घाटी में
किन्तु वहाँ पर भूल–भटककर, खोजा मैंने जीवन को ही।"[4]

इसीलिए मिलन यामिनी के कवि को सिर्फ भोगी या इश्क मिजाजी मानना भूल होगी। जीवन की गति के प्रति कवि हर समय सजग है –

---

1. बच्चन: मिलन यामिनी– बच्चन रचनावली–2, पृ0–41
2. वही, पृ0– 67
3. वही0 पृ0–42
4 वही, पृ0– 43

मैं कितना ही भूलूँ, भटकूँ या भरमाऊँ
है एक कहीं मंजिल जो मुझे बुलाती है,
कितने ही मेरे पाँव पड़े ऊँचे नीचे,
प्रतिपल वह मेरे पास चली आती हैं"[1]

जीवन की खोज में मनुष्य की जिजीविषा सहज हो देखी जा सकती है –

मनुष्य विश्व प्रेम में पगा हुआ मनुष्य आत्म युद्ध में लगा हुआ
हरेक प्रण प्रयास में ठगा हुआ, मनुष्य हर स्वरूप में पवित्र है।
अपूर्ण को पूर्ण न कर सका कभी, अभाव के न घाव भर सका कभी
हजार हजार से न हार सका कभी, मनुष्य की मनुष्यता विचित्र है।"[2]

मिलन यामिनी के मादक गीतों की ओर मन बरबस ही आकर्षित हो जाता है। यह एक ऐसी कृति है जहाँ वियोग विषाद के टूटे हुए तारों को जोड़कर कवि ने संयोग के गीत गाए हैं –

"प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ
अरमानों की एक निशा में होती है कै घड़ियाँ,
आग दबा रखी है मैंने जो छूटी फुलझड़िया
मेरी सीमित भाग्य परिधि को और करो मत छोटी।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिलन यामिनी के गीतों में मिलन का मादक राग ही प्रधान है और इस मादक राग में कहीं भी नग्नता नहीं है–

अधर पुटों में बंद अभी तक
थी अधरों की वाणी
हाँ-ना से मुखरित हो पाई
किसकी प्रणय कहानी।[4]

---

1. बच्चन: मिलन यामिनी, बच्चन रचनावली–2, पृ0–68
2. वही, पृ0–78
3. वही, पृ0–61
4. वही, पृ0–61

इस दृष्टि से बच्चन के वस्तु चित्रणों में मानवीय स्तर की संवेदना, मस्ती और तल्लीनता पूर्ण रूप से निहित रहतो है। मिलन यामिनी के गीतों में जहाँ बच्चन संवेदनशील कवि के रूप में उपस्थित होते हैं वहाँ दूसरी ओर वह हमारे समक्ष प्रकृति की अद्वितीय सुषमा को मानवीय भाव भूमि पर उतारने वाले कुशल चित्रकार हैं।

उत्तर भाव के गीत कवि को प्रकृति के चित्रकार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उत्तर भाग की कविताएँ हिन्दी गीति काव्य की नवीन शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन गीतों में प्रकृति के सौंदर्य का मानवीय भावनाओं के साथ सुन्दर समन्वय किया गया है। प्रकृति वर्णन को परम्परागत लीक से हटकर किया गया है। अलंकार अपने परिवेश को भीतर समेटे चलते हैं। वे सायास नहीं है :-

> कसी हुई तड़ित पयोद-पाश में हुआ संयोग वासना विलास में
> प्रमन्त स्वप्न -मग्न आँख अधमुँदी, प्रणय-घटा हृदय गगन घुमड़ चली
> बरस पड़े विवश जल्द जमीन पर, गमक उठी सुगंधि भूमि से उभर ।
> सरस रस दिशा, सजल नयन अधर, द्रवित निशा प्रभात की शरण चली।[1]

इस प्रकार मिलन यामिनी का उत्तर खण्ड एक ही छंद एवं लय के विभिन्न गीतों का एक अद्वितीय खण्ड काव्य रूप है -

निष्कर्षतः मिलन यामिनी कवि के राग के संसार को जीने भोगने की अनुभूति है। पूर्व खण्ड संयोग श्रृंगार की मधुरता से ओत प्रोत है तो मध्य खण्ड में जीवन का स्वर है। उत्तर खण्ड में कवि का आस्थावान एवं अपराजित व्यक्तित्व लक्षित होता है।

## प्रणय - पत्रिका

सन् 1950 से 1954 तक के समय के गीत प्रणय-पत्रिका में संकलित हैं। कुछ गीतों को छोड़कर सभी गीत प्रवास काल में लिखे गये हैं। "मिलन यामिनी" की अनुभूति की

---

1. बच्चनः मिलन यामिनी, बच्चन रचनावली-2, पृ0-75

कलात्मक श्री वृद्धि प्रणय पत्रिका के गीतों में हुई । कवि के अनुसार यह एक विशिष्ट योजना के अंश है जिसे वह विनय पत्रिका के तर्ज पर लिखना चाहता था। प्रणय पत्रिका के गीतों में श्रृंगारी वातावरण, प्रकृति चित्रण तथा भावों की सरसता का एक लय प्रवाह कवि हमारे सामने उपस्थित करता है। बच्चन के अभिव्यक्ति कौशल में हमें नवीन रूप दिखाई देता है। यह निसंदेह कहा जा सकता है कि प्रणय पत्रिका के गीतों में बच्चन को अपनी सभी गीत कृतियों की अपेक्षा भाषा, भाव, अभिव्यक्ति एवं कला कौशल की दृष्टि से अधिक सफलता प्राप्त हुइ है। इन गीतों में मधुरता व सरसता का अपना अलग ही आकर्षण है। अधिकांश गीतों में प्राकृतिक दृश्यों, बिम्बों तथा भावों का सृजन अत्यधिक हृदयस्पर्शी बनकर वह स्वयं मुखरित हो उठा है। ये गीत भले ही विदेश में रहकर लिखे गये हों, मगर हमारी संस्कृति का पुट इसमें व्याप्त है। डा0 जीवन प्रकाश जोशी के शब्दों में यदि कहें तो प्रणय पत्रिका के गीत "रस्यते इति रस:" उक्ति को चरितार्थ करते हैं। उनमें न अतिरिक्त विदग्धता है न उक्ति चमत्कार। है तो केवल भावमयता।

प्रणय पत्रिका की प्रेरणा स्मृति है जो कवि के विरह को गीतमय करती है। सुधियों में निशा–निमंत्रण नहीं है। कवि की आशा–निराशा और पिपासा अपनी प्रेयसी को पूर्णतः समर्पित है। यही प्रेयसी प्रणय पत्रिका के गीतों का आलंबन है।

"एम यही अरमान गीत वन प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊँ ।"[1]

प्रणय पत्रिका के गीतों की विशेषता रही है कि उनमें कोई भी भाव ऐसा नहीं है कि जिसका आधार भोग का अनुभव न हो।

प्रणय पत्रिका के हंस सम्बन्धी गीत अद्वितीय हैं। हंस हमारे संत–दर्शन काव्य में जीव का प्रतीक माना गया है। कबीर ने अनेक स्थानों पर हंस का प्रयोग जीवात्मा के लिए किया है। बच्चन जी ने भी प्रणय पत्रिका में हंस का प्रयोग प्रतीक

---

1. बच्चन: प्रणय पत्रिका– बच्चन रचनावली–2, पृ0–97

रूप में किया है किन्तु उसकी उड़ान ब्रह्म को पाने के लिए नहीं है। प्रणय पत्रिका में हंस का राग तो इस संसार में माया ममता का राग है–

दग्ध पर की दग्ध स्वर की कद्र केवल
एक धरती जानती है,
लाख आकर्षित किसी को भी करें, आकाश अपनाता कहाँ है।[1]

जीवन की शक्ति सीमा, जीव की महत्वाकांक्षा आदि का वास्तविक चित्रण कवि ने किया है। जीवन का अहं, जीव का अन्तिम विश्वास और जिन्दगी के प्रति उसकी अमर चाहना का स्वर प्रस्फुटित हुआ है।

पंख टूटा है, मगर यह खैरियत है, पाँव जो टूटा नहीं है
जल तरंगों से चपल सम्बन्ध मेरा, तो अभी छूटा नहीं है।

कवि ने प्रायः भूत को निराशामय, भविष्य को आशामय और वर्तमान को संघर्ष मय व्यक्त किया है–

कवि के उर के अंतःपुर में, वृद्ध अतीत बसा करता है
कवि की दृग कोरों के नीचे, बाल भविष्य हँसा करता है
वर्तमान के प्रौढ़ स्वरों से, होता कवि का कंठ निनादित ।

किन्तु जो जीवन में जो व्यतीत हो चुका है उसके प्रति कवि की भावनाएं कुछ इस प्रकार हैं –

क्षण भंगुर होता है जग में, यह रागों का नाता
सुखी वही है जो बीती को, चलता है बिसराता
और दुखी है पूर्ति ढूंढता, जो अपनी साधों की
रह जाती है जो उर के बीच अधूरी
भावाकुल की कौन कहे मजबूरी ।

---

1. बच्चनः प्रणय पत्रिका– बच्चन रचनावली–2, पृ0–118
2 वही, पृ0–122
3. वही, पृ0–97

कवि ने जो कुछ भी अनुभव किया उसकी निश्छल अभिव्यंजन किया है। कवि ने अपने अन्तर्मन का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।

"शब्द नहीं मानव ने पाया, अपने मन की बात छिपाए
औरों को धोखे में रखते-रखते खुद भी धोखा खाए"[1]

कवि ने अपने आत्मग्लानि एवं मानवीय विश्वास को प्रणय पत्रिका में वाणी दी है।

"बन्द कपाटों पर जा जा कर, जो फिर फिर सांकल खटकाए
और न उत्तर पाए, उसकी लाज व्यथा को कौन बताए
पर अपमान पिए फिर भी पग, उस ड्योढ़ी पर जाकर ठहरे" [2]

यद्यपि प्रणय - पत्रिका के गीतों ने श्रृंगार का प्राधान्य दिखता है परन्तु गीतों का मुख्य स्वर श्रृंगार नहीं है वरन् समर्पण है। मिलन यामिनी के गीतों में शारीरिक पक्ष प्रधान है वहाँ प्रणय पत्रिका के गीतों में प्राण पक्ष प्रधान रूप से मुखरित हुआ है। इन गीतों में भावों की पूर्ण सच्चाई मुखरित हुइं है। खासकर उन गीतों में जहाँ कवि की ध्वनि पश्चाताप से भरी है। इन गीतों में "कृत्रिमता न होकर अनुभूति की हृदयस्पर्शी ध्वनि ही मुखरित होती है-

मैंने तो हर तार तुम्हारे, हाथों में प्रिय, सौंप दिया है।
काल बतायेगा यह मैंने ठीक किया या गलत किया।

× × ×

या तुमने मुझे छुआ छेड़ा भी, और दूर के दूर रहे भी,
उर के बीच बसे हो मेरे सुर के भी तो बीच बसो ना।
सुर न मधुर हो पाए, उर की वीणा को कुछ और कसो ना।"[3]

---

1. बच्चन: प्रणय पत्रिका- बच्चन रचनावली-2, पृ0-113
2. वही, पृ0- 99
3. वही, पृ0-95

यहाँ कवि की पीड़ा और उसका पश्चाताप कोरा शब्दों का इन्द्रजाल न होकर भावों का उद्द्रेक है।

> था मुझे छूना कि तूने भर दिया झंकार से घर
> और मेरी सांस को भी, सात स्वर के लग चले पर
> अब अवनि छू लूँ, कि सातों स्वर्ग छू लूँ
> सब मुझे आसान मेरे साथ जो तू गा रहो है।[1]

प्रणय पत्रिका में प्राण पक्ष की प्रधानता का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं –

> नाम तुम्हारा ले लूँ, मेरे स्वप्नों की नामावलि पूरी
> तुम जिससे सम्बद्ध नहीं वह काम अधूरा, बात अधूरी
> तुम जिसमें डोले वह जीवन, तुम जिसमें बोले वह वाणी
> मुर्दा मूक नहीं तो मेरे सब अरमान सभी अभिलाषा
> अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा और पिपासा।"[2]

प्रणय पत्रिका का प्रणय सौन्दर्य से आकर्षित नहीं राग पोषित है। यहाँ कवि का दर्द, पीड़ा, पश्चाताप, विषाद और बन्धन सभी स्मरणीय हैं। यहाँ हर गीत का भाव पवित्र है, जो मन को मांजता है और मथकर उसमें मधुरता भरता है।

इस प्रकार मनुष्यता के सुख–दुख– संवेदना का सहभोक्ता होकर बच्चन जी ने अनेक ऐसे मधुर गीत लिखे हैं जिन पर गर्व किया जा सकता है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि प्रणय पत्रिका में कवि ने भाव भाषा कल्पना तथा शिल्प की दृष्टि से जीवन को रागात्मक बनाया है। रागात्मकता की दृष्टि से प्रणय पत्रिका के गीत कुंज खड़ी बोली के गीत कुंज है। गीत के प्रति कवि की अमर आस्था के यह स्वर बार–बार गूँजते हैं–

---

1. बच्चन: प्रणय पत्रिका– बच्चन रचनावली–2, पृ0–96
2. वही, पृ0– 98

गीत चेत.ा के सिर कलंगी
गीत खुशी के मुख पर से हरा
गीत विजय की कीर्ति पताका
गीत नींद गफलत पर पहरा।[1]

प्रणय पत्रिका की मूल चेतना नैतिक होते हुए अनायास रहस्योन्मुखी होने लगती हैं। काव्य यात्रा करते-करते कवि के दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर आ गया है। अब न तो वह पूर्णरूपेण दार्शनिक है और न ही रूढ़ि नैतिकता के समर्थक । प्रणय पत्रिका में केवल मांसल प्रणय ही नहीं जातीय, राष्ट्रीय एवं मानवीय संवेदनशीलता का प्रणय भी सहज मुखरित है।

## चतुर्थ चरण
## बंगाल का काल

"बंगाल का काल" 1943 में प्रकाशित हुई। यह कवि की बहिर्मुखी उद्‌भावना थी। इसके पूर्व आकुल अन्तर तक प्रायः अन्तर्मुखी उद्‌भावना थी। अन्तर के रचना काल में अकसर उनकी अन्तर्मुखता बहिर्मुखी हो जाती थी। कवि को बंगाल की दशा पर उतना क्षोभ नहीं हुआ जितना कि उसकी नपुंसक सहिष्णुता पर जिससे उसने "मानवी स्वार्थ प्रेरित इस दानवी इंति – भीति को मष्ट मारकर झेल लिया।"[2]

यह कविता पूरी मुक्त छंद में लिखी गयी है। कवि इस कविता में सहिष्णुता जन्माने वाले निष्क्रिय भाग्यवाद की भर्त्सना करता है। फ्रांस की क्रांति की याद दिलाकर बंगाल की जनता में रोष तथा साहस जगाना चाहता है–

---

1. बच्चनः प्रणय पत्रिका, बच्चन रचनावली-2, पृ0-97

ओ बंगाल देश के वासी
प्रबल शक्ति वाले सैनिक तुम
धन धरती स नाता तोड़े
और मृत्यु के निकट पहुँचकर
पुरजन परिजन से तृण तोड़े
केवल सबसे बड़ा मोर प्राणों का
तुमको अब भी बाँधे ।[1]

(बंगाल का काल)

इस कविता के माध्यम से कवि बंगाल के अतीत के गौरवान्वित इतिहास को देखता है। एकता एवं संगठन की शक्ति के महत्व को भी इस रचना के माध्यम से प्रतिपादित करता है। बंगाल का काल में आत्म गौरव, क्रान्ति, आक्रोश, शौर्य शक्ति एवं उदात्त भावनाओं का सफल चित्रण हुआ है।

डा0 श्याम सुन्दर घोष कहते हैं कि "अकाल पीड़ित जनता का ऐसा वर्णन जो हमारे रोंगटे खड़े कर दे "बंगाल का काल"में नहीं है। उस अनुभव को संजीदगी से व्यक्त करने का प्रयास नहीं है।"[2] इतना होते हुए भी यह कविता आत्म सम्मान आत्म विश्वास, आत्म गौरव और आत्म बलिदान के महत्व को मूल्यांकित करती है और लीक से हटकर विशिष्ट स्थान का अधिकारी है।

वस्तुतः समसामयिकता से कलाकार की सहज सम्पृक्ति रहती है। युग चेतना से किसी रचनाकार का किसी भी प्रकार विच्छेद अथवा अलगाव न तो सहज है और न ही काम्य। परन्तु युग चेतना की अभिव्यक्ति में अन्तर हो सकता है। वस्तुनिष्ठ और वाह्यमुखी साहित्यकार में स्थूल चित्रण मिलता है तो आत्म केन्द्रित साहित्यकार में इसका सूक्ष्म किन्तु गौण रूप मिलता है। बच्चन चूँकि कवि हैं इसीलिए समसामयिकता के प्रति पर्याप्त सजग होते हुए भी उसकी अभिव्यक्ति में पर्याप्त कायर रहे हैं। उनकी

---

1. डा0 श्याम सुन्दर घोष: बच्चन का परवर्ती काव्य, पृ0–140
2. गंगा प्रसाद पाण्डेय, महाप्राण निराला, पृ0–238

कविता के सन्दर्भ में डा0 गंगा प्रसाद पाण्डेय ने महाप्राण निराला नामक पुस्तक में एक संस्मरण दिया है – जिसमें वे लिखते हैं कि अंग्रेजों के भय से श्री बच्चन ने उस समय "बंगाल का काल" नामक कविता अप्रकाशित ही रहने दी। इसका प्रकाशन उन्होंने स्वतन्त्रताके बाद कराया। डा0 गंगा प्रसादकी धारणा है कि श्री बच्चन तब इस कविता के प्रकाशन से फाँसी पर लटक गये होते तो हिन्दी साहित्य में अमर हो जाते। वह तब इस यश से कहीं अधिक यश कमा लेते जो उन्होंने अब तक लिख कर कमाया है।[1] इस कायरता की निंदा भी उन्होंने की है। परन्तु यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि इसमें बंगाल की भूमि पर पड़े हुए दुर्भिक्ष की विभाषिका का सूक्ष्म और यथार्थ चित्रण हुआ है।

कवि कविता का प्रारम्भ बंगाल में पड़े हुए अकाल की विभीषिका से करता है–

पड़ गया बंगाले में काल
भरी कंगालों से धरती
भरी कंकालों से धरती ।
दीनता ले असंख्य अवतार
पेट खला
हाथ पसार
पाँच उँगलियाँ बाँध
मुँह तक ला
भीतर घुसी हुई आँखों से
आँसू ढार
मानव होने का सारा सम्मान विसार
घूमती गाँव–गाँव ...[2]

---

1. गंगा प्रसाद पाण्डेय -- महाप्राण निराला– पृ0–238
2. बच्चन : बंगाल का काल, पृ0–417

अकाल की विभीषिका, मृत्यु का तांडव, इन सभी का वर्णन करते – करते कवि अतीत में चला जाता है और याद करता है कि यह वही बंगाल है जहाँ –

वही बंगाल
जिस पर छाये सजल घनों की
छाया में लह–लह लहराते
खेत धान के दूर–दूर तक[1]

यह वही बंगाल है जिस पर नदियाँ, सरोवर सभी फैले हुए थे। इसी बंगाल को देखकर कवि ने "वन्दे मातरम्" गाया था। इसी बन्दे मातरम् को जपकर बड़े–बड़े क्रान्तिकारी हँसते– हँसते फाँसी के फन्दो पर झूल गये थे। यह वही बंगाल है जिसने पूरे देश में आत्म सम्मान की आग फूँक दी–

आज की गति भी कैसी, हाय,
स्वयं असहाय,
स्वयं निरूपाय
स्वयं निष्प्राण
मृत्यु के मुख का होकर ग्रास
गिन रहा है जीवन की साँस– साँस [2]

पुनः कवि बंगाल की दीन दशा का वर्णन करता है और है कि वह शस्य श्यामला भूमि आज "शस्यहीन है दीन क्षीण है चिर मलीन है और अन्न के लिए तरसते लोग कैसे अपने सगे सम्बन्धियों के शवों को नोंच कर खा रहे हैं –

"मरघट सा अब रूप बनाकर
अजगर सा अब मुँह फैलाकर
खा लेती अपनी संतान।"[3]

---

1. बच्चन: "बंगाल का काल" – बच्चन रचनावली–1, पृ0–418
2. वही, पृ0– 419
3. वही, पृ0–420

अब आगे कवि प्रश्न करता है कि आखिर ये सब हुआ कैसे –

ठीक, अन्नपूर्णा के आँचल
में है सबंस,
अन्न तथा रस,
पड़ा न सूखा,
बाढ़ न आई,
और नहीं आया टिड्डी दल
किन्तु बंग है भूखा– भूखा– भूखा !
माता के आँचल की निधियाँ
अरे लूटकर कौन ले गया ?[1]

तुरन्त ही कवि बंगाल की जनता की इस दशा के लिए उसकी नपुंसकता प्राणों का मोह आदि को कारण ठहराते हुए ललकारता है। उसे बंगाल के शहीदों का स्मरण दिलाता है जिनके क्रान्तिकारी कारनामों से पूरा देश हिल उठा था। कवि एक–एक उन सभी महान पुरूषों की उनको याद दिलाता है। जनता के निष्क्रिय भाग्यवाद की आलोचना करता है और फ्रांस की क्रान्ति की याद दिलाकर बंगला की जनता में रोष तथा साहस जगाना चाहता है। उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ने का आह्वान करता है। कवि आह्वान करता है कि भूख को ही अपनी शक्ति बनाओ –

भूख नहीं है दुर्बल, निर्बल
भूख, सबल है, भूख प्रबल है
भूख अटल है
भूख कालिका है, काली है।[2]

भूख प्रचण्ड शक्ति शालिनी है, अखण्ड शौर्यशाली है वह अन्याय का नाश करने में सक्षम है। इसके बाद कवि फ्रास की क्रान्ति का हवाला देकर बंगाल वासियों को संदेश देता है कि जब तक जनता स्वयं इस अन्याय का प्रतिकार करने

---

1. बच्चन: "बंगाल का काल" बच्चन रचनावली–1, पृ0–420
2. वही, पृ0–429

को आगे नहीं आती तब तक कुछ होने वाला नहीं है। हमें अपना आत्म सम्मान, आत्म विश्वास, आत्म अवलम्ब प्राप्त करना ही होगा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह रचना अब तक के काव्य लीक से हटकर एक विशिष्ट रचना है।

## खादी के फूल

गाँधी वादी विचारधारा, गाँधी जी के व्यक्तित्व और गाँधी जी को श्रृद्धांजलि से सम्बन्धित उस संग्रह में कुल 108 गीत हैं। इस गीत का रचना काल 1948 है। जैसा कि "सूत की माला" संग्रह के प्राक्कलन में बच्चन जी ने स्वयं लिखा है कि गाँधी जी की मृत्यु के बाद 100 दिनों के भीतर 204 कविताएं लिखी जिनको उन्होंने दो संग्रहों में प्रकाशित किया "सूत की माला" और "खादी के फूल"। "खादी के फूल" में क्रम संख्या 13–27 तक के गीत सुमित्रानन्दन पन्त के द्वारा रचित है। इस संग्रह के प्राक्कलन में पन्त जी लिखते हैं – "महात्मा जी के अश्रांत उद्योग से जहाँ हुए हमें स्वाधीनता प्राप्त हुई वहाँ उनके महान व्यक्तित्व को हमें गम्भीर सांस्कृतिक प्रेरणा भी मिली। महात्मा जी ने राजनीति के कर्दम में अहिंसा के वृत्त पर जिस सत्य को जन्म दिया है वह संस्कृति की देवी का ही आसन है। अतः बापू के उज्जवल जीवन की पुण्य स्मृति से सुरभित इन खादी के फूलों को हम पाठकों को इस विनीत आशा से समर्पित करते हैं कि हम खादी के स्वच्छ परिधान के भीतर गाँधी वाद के संस्कृत हृदय को स्पंदित कर सकेंगे।"[1]

जब वक्तव्य में गाँधी वादी संस्कृति के प्रति प्रतिबद्धता का इजहार किया गया है। यही कारण है कि इस संग्रह के गीतों में एक ओर तो गाँधी वाद की पृष्ठभूमि पर मानवता के विकास पर प्रकाश डाला गया है तो दूसरी ओर गाँधी जी के महान व्यक्तित्व का विश्लेषण विविध दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया गया है और उन्हें श्रृद्धांजलि

---

1. बच्चनः खादी के फूल , पृ0– 6

अर्पित की गयी -

> वह शक्ति दिखाई तुमने सिहांसन डोले
> सत्ताधारी सम्राट तुम्हारी जय बोले
> तुमने सगर्व भंगी बस्ती को अपनाया
> लघुतम – महानतम दोनों से ही समता की।[1]

"सूत की माला" की कविताओं की ही भाँति इस संकलन की भी अधिकांश रचनाएं दुर्बल हैं। परन्तु कहीं – कहीं अभिव्यंजना का सौंदर्य व्यंग्य द्वारा मुखरित हुआ है। जैसे कि गाँधी जी के महा प्राणत्व पर श्रद्धा की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है –

> "अपनी गौरव से अंकित हो नभ के लेखे
> क्या लिए देवताओं ने ही यश के ठेके
> अवतार स्वर्ग का ही पृथ्वी ने जाना है
> पृथ्वी का अभ्युत्थान
> स्वर्ग भी तो
> देखे ।"[2]

## सूत की माला

"सूत की माला" काव्य संग्रह सन् 1948 में लिखित रचनाओं का संकलन है। यह संग्रह जमादर श्री जुमेराती को समर्पित है। संकलन में कुल 111 गीत हैं। इस संग्रह के सभी गीत या तो गाँधी वादी विचारधारा से प्रभावित है या गाँधी जी के जीवन की विविध घटनाओं से सम्बन्धित है। प्राक्कथन में बच्चन जी ने लिखा है– "कविता लिखना मेरे जीवन की एक विवशता है– कहना चाहिए अनेक विवशताओं में से एक है और अपनी इस विवशता का अनुभव संभवत: कभी मैंने इतनी तीव्रता से नहीं किया जितनी बापू जी के बलिदान पर। बापू की हत्या के लगभग एक सप्ताह बाद मैंने लिखना प्रारम्भ किया और प्राय: सो दिनों में 204 कविताएं लिखी इन कविताओं को दो संग्रहों में प्रकाशित कर रहा हूँ। "खादी के फूल" में श्री सुमित्रानन्दन पंत

---

1. बच्चन: खादी के फूल: रचना0–1, पृ0–468
2. वही, पृ0– 487

के 15 गीतों के साथ मेरे 93 गीत श्रद्धांजलि सम्बन्धी और सूत की माला में बलिदान से सम्बद्ध घटनाओं पर मेरे 111 गीत हैं।"[1]

संग्रह के प्रथम गीत में ही बापू के महा प्रयाण का मार्मिक वर्णन किया गया है –

उठ गये आज बापू हमारे
झुक गया आज झण्डा हमारा
देश की आन और बान वे थे,
देश के एक अरमान वे थे
देश के फक्र औ नाज वे थे ।[2]

बच्चन जैसे यह स्पष्ट किया है कि गाँधी जी की इच्छा के पीछे शासन की नीति और देश का विभाजन कारण थे –

बापू को मारा नीति विभाजन शासन ने
बापू को मारा दो कौमों के क्रंदन ने
बापू को मारा हिन्द भूमि के खण्डन ने
वध में नगण्य
है हाथ मराठे
कातिल का ।[3]

सम्पूर्ण संग्रह में प्रायः इति वृत्तात्मक रचनाएं हैं। इन रचनाओं में अधिकतर तुकबन्दी के ही दर्शन होते हैं। इस संग्रह में गाँधी जी के व्यक्तित्व और गुणों को आँका गया है –

---

1. बच्चनः खादी के फूल (प्राक्कथन), रचना0-1, पृ0-447
2. बच्चनः सूत की माला – रचना0-1, पृ0-501
3. वही, पृ0- 517

तुम परम्परा में थे गुरूओं गणियों की
मृष्टा मनीषियों, ऋषियों, मुनियों की
बन गया सूत्र सम्यक ज्ञानी शुचितर

जो तुमने अपने
मुख से शब्द
निकाला ।[1]

अपनी तुकबन्दी और इतिवृत्तात्मकता के कारण ही इस संग्रह की अधिकांश कविताएं अत्यधिक दुर्बल है, भाव सम्बन्धी विखराव और शब्द अनगढ़ से है और सर्वाधिक अखरने वाली बात यह है कि तुकबन्दी के लिए अनुचित शब्दों का प्रयोग।

आलोच्य संग्रह में बहुत कम ऐसी कविताएं हैं जिनमें अभिव्यंजना का सौंदर्य मुखरित हुआ है। जैसे कि गाँधी जी की मृत्यु के प्रसंग पर तथा क्रान्तिकारी एवं मानवतावादी भावनाओं पर अच्छी अभिव्यक्ति देखने को मिलती है–

अब तक दुहराती मस्जिद की मीनारें,
अब तक दुहराती पेड़ों की हर तरफ कतारें,
दुहराते दरिया के जल कूल कगारे,
चप्पे – चप्पे इस राजघाट के रटते,
जो लगे यहाँ थे चिता शाम को नारे,
हो गये आज से बापू अमर हमारे ।[2]

इस प्रकार आलोच्य संग्रह की कुछ कविताओं में ही अनुभूति की गहनता के दर्शन होते हैं। गाँधी जी को दिव्यता प्रदान करना, उनकी देश को देन, उनका अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से महत्व और गाँधी जी के मार्ग के अनुसरण का उपदेश ही इन कविताओं के विषय हैं। कथ्य की दृष्टि से इन कविताओं का थोड़ा महत्व माना जा सकता है परन्तु शिल्प की दृष्टि से ये कविताएं कमजोर है।

---

1. बच्चनः सूत की माला, बच्चन रचनावली–1, पृ0–554
2. वही, पृ0–548

## धार के इधर – उधर

1940 से 1956 के मध्य विभिन्न विषयों तथा अवसरों पर लिखी गयी रचनाएं इस संग्रह में संग्रहीत हैं। यह रचना पूर्ववर्ती तथा परवर्ती काव्य के मध्य की कड़ी है अर्थात् धार के इधर– उधर । यहाँ कवि का दृष्टिकोंण स्व से हटकर पर की तरफ निहारता हुआ दिखाई देता है। इन रचनाओं में समसामयिक राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचारात्मक दृष्टि से प्रकाश डाला गया है। यहाँ कवि का दृष्टिकोंण पूर्णतः मानवतावादी हे। इन रचनाओं का प्रमुख स्वर स्वतन्त्रता विषयक गतिविधियों से प्रेरित है। पहली कविता से ही कवि के इस क्रान्तिकारी दृष्टिकोंण की झलक मिलती हे –

> "पृथ्वी रक्त स्नान करेगी"
> आग लगी धरती के तन में
> मनुज नहीं बदला पाहन में
> अभी श्यामला, सुजला, सुफला ऐसे नहीं मरेगी
> पृथ्वी रक्त स्नान करेगी ।

"अग्नि परीक्षा" कविता में राष्ट्र के लिए बलिदान होने के लिए यह मानव को अग्नि परीक्षा का समय है। "मानव का अभिमान" में वह गर्वोन्मत मानव को धिक्कारता है जो कि मनुष्य होकर भी मनुष्य का अपमान कर रहा है। परन्तु फिर भी कवि को विश्वास है कि शुद्ध सोना तपने पर और निखरता है। मनुष्य अंहकार में भूल गया है कि मानव का अन्तर्मन प्राण एक ही हे भले ही वह बाहर से अलग दीखता हो। आज इसी दूषित मानवता के कारण पृथ्वी रूदन कर रही है। इस प्रकार इन गीतों में युद्ध की पशुवत प्रवृत्ति के विरूद्ध विरोध का स्वर मुखर है।

> "था सकल संसार बैठा, बुद्धि में बारूद भरकर
> क्रोध ईर्ष्या द्वेष मद की प्रेम सुमनावलि निदर कर
> एक चिनगारी उठी, लो आग दुनिया में लगी है
> युद्ध की ज्वाला जगी है।"[2]

---

1. बच्चनः धार के इधर–उधर : बच्चन रचनावली–2, पृ0–139
2. वही0 पृ0– 141

कवि विश्व के इस कुरूप तथा विकृत चरित्र का संशोधन तथा परिष्कार चाहता है। कवि के अनुसार व्याकुलता तो आंतरिक अव्यवस्था में है–

> जहाँ घृणा करती है वास
> जहाँ शक्ति की अनबुझ प्यास
> जहाँ न मानव पर विश्वास
> उसी हृदय में, उसी हृदय में, उसी हृदय में, वहीं, वहीं
> जग की व्याकुलता का केन्द्र ।[1]

कवि राष्ट्र की साम्प्रदायिकता एवं रूढ़िवादिता की आलोचना करता है। वह कवियों, राष्ट्र के युवकों, नायकों तथा राष्ट्र के नेताओं को चेतावनी देता हुआ अपने ओजस्वी स्वरों में यह कह रहा है–

> "तुम्हें कहीं न राजमद कलंक दे ।"[2]

कवि का युवकों का आह्वान आह्लादकारी है –

> बढ़ो गनीम सामने खड़ा हुआ
> बढ़ो निशान जंग का गड़ा हुआ
> सुयश मिला कभी नहीं पड़ा हुआ
> मिटो मगर, लगे न दाग देश पर ।[3]

इसी प्रकार देश के लेखकों से आह्वान करता है कि जब समस्त देश में त्राहि- त्राहि मची हुई है वहाँ आज कल्पना स्वप्न और सुख की बात न करके आज अपने देश की मुसीबतों पर लिखो ।

---

1. बच्चन: इधर–उधर : बच्चन रचनावली–2, पृ0–142
2. वही, पृ0–163
3. वही, पृ0– 157

करो विचित्र इन्द्रधनुष विभा परे
तजो सुरम्य हस्ति–दन्त– धरहरे
न अब नखत निहार कर निहाल हो
न आसमान देखते रहो खड़े
तुम्हें जमीन देश की पुकारती।"[1]

देश के स्वतन्त्रता के साथ ही देश विभाजन का जो करारा झटका लगा कवि को संवेदना शून्य बना देता है और कवि को अहसास होता है कि देश छला गया जहाँ ममता सौहार्द्र था वहाँ घृणा और मार–काट मची हुई है–

स्वतन्त्रता प्रभात क्या यही– यही
कि रक्त से उषा भिगो रही– मही
कि त्राहि–त्राहि शब्द से गगन जगा
जगी घृणा ममत्व प्रेम सो गया।[2]

"धार के इधर – उधर" में कवि ने अपने राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। रचनाओं का भाव पक्ष सशक्त है। बाह्य विषयों से सम्बन्धित रचनाओं में इससे पूर्व इतना ओजस्वी एवं संतुलित स्वर हमें नहीं देखने को मिलता।

## आरती और अंगारे

"आरती और अंगारे" सन् 1958 की रचना है। जिसमें कवि ने हृदय के हावों–भावों, मानस मंथन स्मृति, ह्रास–रूदन सभी को नए प्रौढ़ परिपक्व रूप में ढाला है। इस कृति की रचना कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। श्री कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर का कथन है कि – "आरती और अंगारे" लिखकर बच्चन जी ने इस युग की कविता का बड़ा पुण्य कमाया है। धरती से लेकर आकाश तक देखता है यह आदमी भी।"[3]

---

1. बच्चनः धार के इधर–उधरः बच्चन रचनावली–2, पृ0–163
2. वही, पृ0–159
3. जीवन प्रकाश जोशीः "बच्चन व्यक्तित्व और कवित्व", पृ0–116

इस संग्र: के पूर्व भाग में उन कवियों की आरती है जिन्होंने अपनी-अपनी भाषाओं में ज-।-जीवन की भावनाओं को प्रकट किया है। आदि कवि बाल्मीकि से प्रारम्भ करते हुए व्यास कालिदास, जयदेव, जगन्नाथ, रासो कवि, कवि विद्यापति शेखर, कबीर, जायसी, तुलसी सूर, मीरा, केशव, रहीम, भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त, खैयाम, मीर, गालिब, इकबाल, गुरूदेव टैगोर, ईट्स आदि कवियों के प्रशस्ति में कविताएं लिखी है। इसके अतिरिक्त साँची के शिल्पियों अजन्ता के अनाम चित्रकारों, खजुराहो के निडर कालाकारों, भुवनेश्वर के शिल्पियों, कांगड़ा शैली के चित्रकारों आदि के प्रशस्ति में काव्य की रचना हुई है।

इसके अतिरिक्त कवि ने कुछ कविताओं में अपने पारिवारिक जीवन के चित्र भी खींचे हैं। दादा-दादी, माँ, पिता, भाई-बहिन, प्रथम पत्नी श्यामा भिखारी इलाहाबाद आदि पर गीत लिखे गये हैं।

उत्तर भाग की कविताओं में दंभियो दुराग्रहियों के चरित्र के प्रति कवि ने करारी चोट की है। एक तरफ जहाँ आरती पुराने का विदागीत बना और नए का स्वागत का गीत बना वहीं अंगारे नवीन क्रान्ति का। एक ओर मृदु सायास विद्रोह या विरोध का स्वर है जो कवि ने शुरू से ही अपनाया है तो दूसरी ओर पुरानी रूढ़ और बेजान मान्यताओं को विनम्र भाव और तार्किक बल से छोड़ने की दिशा दिखाई है। सड़ी गली मान्यताओं को रूखे ढंग से दुत्कारा नहीं परन्तु सविनय अपनी बात अपनी मस्ती में कह दी है।

आरती और अंगारे में कवि ने कला, काव्य, जीवन और मनुष्यता के प्रति अपने गम्भीर भावों को स्वर प्रदान किया है। इन भावों और विचारों में कवि का गूढ़ अध्ययन, मनन, चिन्तन एवं सशक्त भावाभिव्यंजन हुआ है। जटिल से जटिल विषयों को भी कवि ने काव्यात्मक भाषा में परिभाषित किया है और वहाँ बौद्धिकता का अंश कहीं नजर नहीं आता।

कला और कविता की वास्तविक रचना जीवन के रचनात्मक स्वप्नों द्वारा नहीं वरन् जन अंतर की क्रान्ति द्वारा निर्मित होती है –

"कला नहीं बसती पत्थर में, स्वर में, रंगों की श्रेणी में,
बाजंतर में कंठ लेखनी में, तूली, कीली, छेनी में
कोई मंदर जब जन अंतर मंथन करता, स्वप्न उघरते
कला उभरती, कविता उठती, कीर्ति निखरती विभव बिखरते।"[1]

कवि की अमूर्त आकांक्षाओं का प्रतिबिम्ब ही तो कला के नाम से रूप धारण करता है। स्वप्न और कला का पारस्परिक सम्बन्ध बच्चन की रचनाओं में बहुत ही सुन्दर ढंग से हुआ है–

स्वप्न जीवन का कला है, जो कि जीवन
में निखर कर वह कला से झांकता है।"[2]

"आरती आर अंगारे" में कवि ने अनेक पहलुओं से गुजर कर तीखे मीठे अनुभवों से गुजर कर जिस तरह से कथ्य और सत्य का उद्घाटन हमारे सामने किया है वह दृष्टव्य है। संघर्षरत जीवन का सत्य कवि कंठ से इस प्रकार फूट पड़ा है–

"औ न आधी हार से मानी पराजय
औ न की तसकीन हो आधी विजय से।"[3]

मानवीय स्नेह और संवेदना के भाव हृदय को छू जाते हैं –

"प्यार पूर्णता मांगा करता है यह सच है
यह भी सच है प्यार पूर्णता दे सकता है।"[4]

---

1. बच्चन: "आरती और अंगारे"– बच्चन रचनावली–2, पृ0–207
2. वही, पृ0–209
3. वही, पृ0–226
4. वही, पृ0–232

जीवन धारा के प्रबल प्रवाह में बह जाने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस सत्यता को जीता और भोगता है, आगे बढ़ता है, अन्त में अपनी मंजिल पा ही लेता है-

चलना ही जिसका काम रहा हो दुनिया में
हर एक कदम के ऊपर है उसकी मंजिल ।[1]

झूठी प्रसिद्धि प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले प्रचारकों और दंभियों के प्रति कवि ने कटाक्ष किया है -

और ये जितने उछलते कूदते हैं
क्या सभी कुछ पा रहे हैं ?
कुछ न पाएं, पर जमाने की नजर में
तो उभरते आ रहे हैं।"[2]

निश्चय ही "आरती और अंगारे" की रचनाओं में बच्चन ने अपने जीवन के अनुभव; अनुभूति और अभिव्यक्ति को व्यापकता प्रदान की है जिसमें मुख्य रूप से मानवता विश्वास के स्वर ही प्रधान हे।

गान उन्हीं का मान जिन्हे है
मानव के दुख दर्द दहन का
गीत वही बाँटेगा सबको, जो दुनिया की पीर सकेले।"[3]

इन रचनाओं में बच्चन जी ने व्यवहारिक जीवन दर्शन तथा अपनी साहित्यिक मान्यताओं को परोक्ष रूप से इन गीतों में गाया है। इनमें कवि का स्वाभिमान, उसकी संघर्षशीलता तथा उसकी साहित्यिक ईमानदारी एवं अडिगता असंतोष की अंत: धारा के साथ हमारे समक्ष उपस्थित हुई है। जो कि "प्रणय पत्रिका" की पूरक ही है।

---

1. बच्चन: आरती और अंगारे: बच्चन रचनावली-2, पृ0-255
2. वही, पृ0-250
3 वही, पृ0-255

आरती और अंगारे वस्तुतः जन सामान्य की भाषा शैली में लिखी गयी कृति है। उर्दू तथा बोलचाल के अनेक शब्दों का और मुहावरों का समाहार जी खोलकर किया है। यहाँ बच्चन की काव्य भाषा भावों के बिल्कुल अनुकूल है और यही उसकी लोकप्रियता का कारण भी। वैसे भी अतीत में भविष्य और वर्तमान में इतिहास का सम्मिश्रण सदा से रहा है। भूमिका में कवि ने कहा है "जैसे कल के व्यक्तित्व में आज का व्यक्तित्व बीज रूप में वर्तमान था, वैसे ही आज के व्यक्तित्व में मेरे कल का व्यक्तित्व भी समाया है। वैसे हो मधुबाला में "आरती" का कुछ प्रकाश और "अंगारे" की कुछ चिनगारियाँ मौजूद थीं और आरती और अंगारे में मधुशाला का राग रंग किसी न किसी रूप में समाया है और इसी प्रकार आगे की रचनाओं में आरती का कुछ धूप और अंगारे का कुछ ताप रहेगा।"[1] अतः यह सिद्ध है कि प्रस्तुत रचना पूर्ववर्ती के मध्य सशक्त सेतु है जो दोनों भावना और यथार्थ के ईंट चूने से बना है।

## पंचम चरण

### बुद्ध और नाचघर :

इस कृति में 1944 से 1957 तक की मुक्तक छंद की कविताएं संग्रहीत हैं। यह कृति बच्चन के काव्य में अभिनव मोड़ की सूचक है। इसी कृति से उनके काव्य का परवर्ती रूप हमारे सामने उपस्थित होता है।

"बुद्ध और नाचघर" कवि की मुक्त छंद में लिखी प्रथम प्रौढ़ कृति है। यहाँ कवि का जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण है, नई अनुभूति है, और उसे नए ढाँचे में गढ़कर नए ही रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस कृति में तीन प्रकार के परिवर्तन स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होते हैं ः 1. छन्द गत परिवर्तन 2. शैली गत 3. विषय गत परिवर्तन तो रचनाओं के शीर्षक से ही हो जाता है यथा– "सृष्टि", "वरदान",

---

1. बच्चनः आरती और अंगारे की भूमिका से पृ0–181

"पूजा", "कडु· अनुभव", "युग का जुआ", "नया चाँद", "दिल्ली के बादल", "नागिन" और "देवकन्या" । उनके अन्य संग्रहों में जहाँ विषय-वस्तु की एकरसता है वहाँ बुद्ध और नाचघर में पूर्णरूपेण विषय वैविध्य है।

"सृष्टि", "पूजा", "तप" तथा वरदान शीर्षक कविताएं चिंतन व दर्शन प्रधान रचनाएँ हैं। इन कविताओं में कवि का दार्शनिक चिन्तन व्यक्त हुआ है।

"सृष्टि, व्याकुलता प्रलय की,
प्रलय के सूने निलय की,
प्रलय के सूने हृदय की,
प्रलय के उर में उठी जो कल्पना
वह सृष्टि
प्रलय पलकों पर पला जो स्वप्न
वह संसार ।"[1]

जहाँ तप ही कवि के लिए जीवन की भाषा और जगत की परिभाषा बन जाए वहाँ वही सृष्टि का विस्तार भी और संहार भी दोनों बन जाता है–

तप आशा
तप ही जीवन की भाषा
तप ही जगती की एकमात्र परिभाषा
तप एक सृष्टि आधार
तप से ही तो विस्तार
और संहार ।"[2]

"हिन्दू और मुसलमान" शीर्षक कविता साम्प्रदायिक एकता की भावना से प्रेरित है :

---

1. बच्चन: बुद्ध और नाचघर – बच्चन रचनावली–2, पृ0–278
2. वही, पृ0– 279

बेकार है तुम्हारा होना हिन्दू
बेकार ह तुम्हारा होना मुसलमान
अगर न रह सके हम इन्सान
अगर न रख सके तुम इन्सान का स्वाभिमान
अगर न रख सके तुम इंसान के लिए
सुख की जमीन,
स्नेह का आसमान ।"[1]

पपीहा और चील कौआ, चोटी की तरफ, शैल विहंगिनी "चाँद और बिजली की रोशनी", "दिल्ली के बादल", "नागिन और देवकन्या" शीर्षक रचनाएं व्यंग्य कविताएं हें। "दोस्तों के सदमें", "नीम के दो पेड़" और "कड़ुआ अनुभव" आदि कविताओं में कवि के मानो जीवन के अनुभवों को ही अभिव्यक्ति है–

मेरी बात
यह कर गाँठ
कायर के प्रहारों से
कभी कोई नहीं मरता
जानकर अनजान बनता
भी नहीं कम वोरता है,
धीरता है,
वीर है वह
घा। जो आगे लिए हो दुश्मनों के
और पीछे दोस्तों के ।"[2]

इस प्रकार इस काव्य संग्रह में कवि का लहजा व्यंगात्मक रहा है। इस कृति में इस प्रकार की कई कविताएं हैं जो सफल व्यंग्य कविताएं कही जा सकती हैं और तो और कृति का नानकरण भी एक व्यंग्यात्मक कविता क नाम पर ही किया गया है। "बुद्ध और नाचघर" शीर्षक रचना कृति की अन्तिम रचना है। कविता

---

1. बच्चन: बुद्ध और नाचघर – बच्चन रचनावली–2, पृ0–286
2. वही, पृ0– 310

में व्यंग्य की धार बहुत ही तेज है। इस कविता में प्रदर्शन प्रवृत्ति तथा खोखली सभ्यता पर कटु व्यंग्य किया गया है—

बुद्ध भगवान
अमीरों के ड्राइंगरूम
रईसों के मकान
तुम्हारे चित्र तुम्हारी मूर्ति से है शोभायमान
पर वे हैं तुम्हारे दर्शन से अनभिज्ञ
तुम्हारे विचारों से अनजान
सपने में भी उन्हें आता नहीं इसका ध्यान
× × ×
और आज
देखा है मैंने
एक ओर है तुम्हारी प्रतिमा
दूसरी ओर है डांसिंग हाल।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि का व्यंग्यात्मक रूप स्पष्ट हो जाता है। जो कि स्पष्ट तौर पर एक मोड़ का सूचक है।

बुद्ध और नाचघर की भाषा आधुनिक कविता की भाषा हैं। शैलीगत परिवर्तन के अन्तर्गत कथन भंगिमा का परिवर्तन भी बहुत महत्वपूर्ण है अतः यह परिवर्तन भी बच्चन के काव्य में इसी कृति से दृष्टिगोचर होता है। इस कृति की गद्यात्मकता और व्यंग्यात्मकता ही इसे अपने पूर्ववर्ती काव्य की कथन भंगिमा से पृथक सिद्ध करती हैं।

**त्रिभंगिमा :**

त्रिभंगिमा में कवि की सन् 1958–1960 तक की रचनाएं संकलित हैं। त्रिभंगिमा में कवि तीन भंगिमाओं के साथ उपस्थित होता है। कवि इन तीनों

---

1. बच्चन: बुद्ध और नाचघर: बच्चन रचनावली–2, पृ0–352

भंगिमाओं (लोक गीत, छंद बद्ध एवं मुक्त छंद) का उत्तरदायित्व प्रेरणा पर डालता है। आलोच्य कृति के लगभग पच्चीस गीत लोक धुनों पर आधारित है। लोक धुनों की खड़ी बोली की लय में बाँधना शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। क्योंकि खड़ी बोली को ग्रामीण पदावली, छन्द आदि के अनुकूल ढालना जरा कठिन है। उनके कुछ गीत अभिव्यक्ति की इस दिशा में बहुत सुन्दर बन पड़े हैं –

जो है कंचन का भरमाया
उसने किसका प्यार निभाया
मैंने अपना बदला पाया
मांगी मोती की लरी, पाई आँसू की लरी
पिया आँसू की लरी पिया आँसू की लरी
माँगी मोती की लरी पाई आँसू की लरी
जाओ लाओ पिया नदिया से सोन मछरी
पिया, सोन मछरी, पिया, सोन मछरी।"[1]

इन पंक्तियों में संगीत की स्वतः साध्य गूँज और नृत्य मुद्रा किसी भी व्याख्या की अपेक्षा नहीं रखती।

बच्चन के लोक गीतों में उस लोक मानस तथा लोक संस्कृति को नही देखा जा सकता जो कि प्रायः लोक गीतों में प्राप्त होती है। उन गीतों के भोलेपन तथा उसकी सहजता से ये गीत उतने ही फासले पर हैं जितने कि शहर से गाँव।

त्रिभंगिमा के द्वितीय खण्ड की कविताओं में काफी अस्त-व्यस्तता है। एक ओर "फिर चुनौती", "कवि और वैज्ञानिक", "ये काम पर जाने वाले", "युग की उदासी" जैसी युगबोध की कविताएं हैं तो दूसरी ओर "यात्री से", "ढाई अक्षर", "मिट्टी से हाथ लगाये रख", "मैंने ही न देखा", "गीत शेष", "मौन यात्री", "जादूगर का जादू" और "जाल समेटा" जैसी निर्यात प्रधान, वैराग्य मूलक

---

1. बच्चन: त्रिभंगिमा– बच्चन रचनावली–2, पृ0–369

रचनाएं हैं।

त्रिभंगिमा के मध्य भाग में कुछ अध्यात्म विषयक गीतों को संकलित किया गया है।

> काम जो तुमने कराया, कर गया जो कुछ कहाया कह गया ।
> यह कथानक था तुम्हारा और तुमने पात्र भी सब चुन लिए थे
> किन्तु उनमें ये बहुत से जो अलग ही टेक अपनी धुन लिए थे,
> और अपने आपको अर्पण किया मैंने कि जो चाहो बना दो।"[1]

त्रिभंगिमा के तीसरे भाग में मुक्त छंद की कविताएं हैं। मुक्त छंदी कविताओं में कवि ने जग जीवन की कठिन परिस्थितियों और ज्वलन्त अनुभवों को स्वर प्रदान किया हैं।

> बुद्ध की छाती, तुझे मालूम होना चाहिए था,
> जिन्दगी के वास्ते निर्वाण ही काफी नहीं है,
> घास भी वह माँगती हे।"[2]

कुछ कविताएं अपने सूक्ष्म व्यंग्य और अर्थ आशय में अत्यधिक शक्तिशाली बन पड़ी है। इनमें चेतावनी, महागर्दभ और गणतंत्र दिवस आदि प्रमुख है। "महागर्दभ" कविता के प्रतीक और रूपक मन मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ते हैं। इसमें कवि ने संस्कृतियों के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भोली भाली भ्रमित जनता की जो राजनैतिक गति अगति रही है उसका व्यंग्यपूर्ण वास्तविक वर्णन है–

---

1. बच्चन: बच्चन रचनावली–2, "तुम्हारी नाट्य शाला", पृ0–396
2. वही, पृ0–442

और गर्दभ राज इंगलिस्तान के
सपने संजोते, दौड़ने को भूल
"रन" करते रहे दो सौ बरस तक
पर न लंगर पास आया।
और आया गर्दभारोही नया फिर
खुरदुरा खद्दर पहनकर,
और बोला बन्धु हम तुम एक ही हैं।"[1]

त्रिभंगिमा की कुछ कविताओं में अदम्य जिजीविषा और आस्था के स्वर को वाणी मिली है जो आज के युग में निरन्तर विरल होते जा रहे हैं –

मृतिका की सर्जना – संजीविनी में
है बहुत विश्वास मुझको ।
वह नहीं बेकार होकर बैठती है
एक पल को
फिर उठेगी ।"[2]

इस प्रकार अन्ततः स्पष्ट है कि बच्चन "त्रिभंगिमा" में एक जीवंत कवि के रूप में उपस्थित हुए हैं।

## चार खेमे चौंसठ खूँटे

इस कृति में कवि की सन् 1960–1962 तक की रचनाएं संग्रहीत हैं। त्रिभंगिमा की ही भाँति यह कृति भी चयन और सम्पादन कौशल की दृष्टि से पूर्णतः अव्यवस्थित है।

---

1. बच्चन : त्रिभंगिमा– बच्चन रचनावली–2, पृ0–458
2. वही, पृ0–421

इस कृति में मुख्य रूप से चार प्रकार की रचनाएँ संकलित हैं – 1. मुक्त छंद की कविताएं, 2. लोकधुनों पर आधारित गीत, 3. छंद युक्त कविताएँ एवं 4. मंच गान । कृति के प्रारम्भ में दो मुक्त छंद कविताएं हैं– "खेमे राम" और "खूँटे चन्द"। इन्हीं के ऊपर कृति का नामकरण किया गया है।

"चार खेम चौंसठ खूँटे" के नामकरण के विषय में स्वयं कवि ने भूमिका में लिखा है – "फिर चौंसठ की संख्या भी अपनी संस्कृति में संदर्भ विहीन नहीं है। एक ओर तो काम की चौंसठ कलाओं और दूसरी ओर तंत्र की चौंसठ योगिनियों से आप अपरिचित नहीं होंगे। काम और अध्यात्म के बीच में दुनिया है, कम से कम कवि की।"[1]

इस कृति की मुक्त छंद की कविताओं में हमें लोक अध्ययन से अधिक आत्म विश्लेषण तथा सूक्ष्म –चिन्तन ही दृष्टिगत होता है। इन मुक्त छंदी कविताओं में बच्चन का सामयिक जीवन का यथार्थ रूप लक्षित होता है।

बच्चन को यथार्थ की भीषणता क्षुब्ध और उद्वेलित करती है। "सत्य की हत्या" शीर्षक कविता में इस भाव को इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

आज सत्य,<br>
असत्य इतना हो गया है<br>
कान में सीसा गला<br>
ढलवा सकेंगे<br>
सत्य सुनने नहीं तैयार होंगे।"[1]

---

1. बच्चन: चार खेमे चौंसठ खूँटे – बच्चन रचनावली–2, पृ0–518

क्षोभ और आक्रोश के इसी भाव को कवि ने "ध्वस्तपोत" शीर्षक कविता में प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है –

क्रोध करना कर्णधारों पर निरर्थक
वे थके, बूढ़े पके संघर्ष से ऊबे,
भुजाओं, कमर कंधो को जरा आराम देना चाहते थे।[1]

बच्चन की परवर्ती रचनाओं में व्यंग्यात्मकता की प्रवृत्ति प्रमुख है। चार खेमे चौंसठ खूँटे में इसका निखरा हुआ रूप देखा जा सकता है। बच्चन के व्यंग्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अत्यन्त सहज और सरल है, उसमें क्षोभ आक्रोश और तिक्तता का अभाव है। पुराने मान मूल्यों को समाप्त होते देख कवि को क्षोभ होता जरूर है परन्तु वे इस क्षोभ को पी जाते हैं और यथार्थ को स्वीकार कर लेते हैं।

बच्चन जी की इस कृति में एक अटूट जिजीविषा के दर्शन भी होते हैं –

"इसलिए इस अमर यात्रा के मुसाफिर, सब उठो फिर
कमर बाँधो साँस साधो;
समर जीवन का अभी अविजित पड़ा है ;
तुम न थकने के लिए, आराम करने को बने हो,
कर्म प्रतिक्षण कर्म, का वरदान या अभिशाप
तुम हो जन्म के ही साथ लाए।"[2]

---

1. बच्चन : चार खेमे चौंसठ खूँटे – सत्य की हत्या, पृ0– 530
2. चार खेमे चौंसठ खूँटे: "ध्वस्तपोत"– बच्चन रचनावली–2, पृ0–530

या

रीढ़ मुझको दो,

जहाँ पर हो जरूरी

मैं खड़ा हो सकूँ तन कर

लौह दृढ़ – तन–प्राण–मन कर

आन पर टूटूँ ।[1]

इन पंक्तियों में आस्था, विश्वास अदम्य जिजीविषा और संघर्ष प्रियता के जो चित्र उपस्थित हुए हैं वे आज के युग में विरले होते जा रहे हैं।

इस कृति में कुछ दार्शनिक कविताएं भी हैं जिनका प्रस्तुतीकरण बड़ा ही प्रौढ़ लगता है किन्तु यहाँ रहस्य नहीं है सिर्फ चिन्तन और आत्म निरीक्षण है –

आह रोना और पछताना इसी का
एक भी विश्वास को
पूरी तरह मैं जी न पाया
कभी उसमें भ्रमा
इसमें कभी भ्रमता रहा
या कि गया भ्रमाया ।
जिया जिसको जान भी उसको न पाया।"[2]

मुक्त छंद में लिखी इस कृति की अन्तिम कविता मरणकाल बहुत ही प्रभावी बन पड़ी है। इस कविता में बच्चन की मुक्त छंदी रचनाओं की भाषा तया भावों की समग्र विशिष्टता एक ही स्थान पर सिमट आई है।

---

1. **चार खेमे चौंसठ खूँटे – "प्रार्थना"– बच्चन रचनावली–2, पृ0–555**

2. **बच्चन: चार खेमे चौंसठ खूँटे, बच्चन रचनावली–3, पृ0–547**

मरा
मैंने गरूण देखा
गगन का अभिमान
धराशायी, धूल धूसर म्लान
मरा
मैंन सिंह देखा
दिग्दिगंत दहाड़ जिसकी गूँजती थी ।
एक झाड़ी में पड़ा चिपका थूक ।"[1]

मुक्त छंद की कविताओं के बाद लोक धुनों पर आधारित रचनाएं हें। "फूटी गागर ", "वर्षा मंगल", "जामुन चूतो है" और बंजारे की समस्या आदि लोक गीतों में भावों का प्रवाह अद्वितीय बन पड़ा है –

देहरी प्यासी, आँगन प्यासा
पथ पर चलता हे चौमासा
चोली चूनर भीग नहाती
में भी साथ नहाऊँ रे
जगह जगह से फूटी गागर
राम कहाँ तक ताऊँ रे
ताऊँ रे भई ताऊँ रे।[2]

"मलिन बीकानेर की" एवं "हरियाने की लली" आदि कविताएं बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। "मालिन बीकानेर की" में तो मानो कवि ने राजपूताने की ऐतिहासिक प्रणय भावना को सजीव कर दिया हो और "हरियाने की लली" को देखकर शहर की नारियाँ लाज के मारे गड़ जातो है –

उसको देख शहर की नारी
पच्छिम के फैशन की भारी
करती मोटर की सवारी, मारे लाज के गली
मारे लाज के गली, मारे लाज के गली।"[3]

---

1. बच्चन: चार खेमे चौंसठ खूँटे –बच्चन रचनावली–3, पृ0–560
2. चार खेमे चौंसठ खूँटे– फूटी गागर –बच्चन रचनावली–2, पृ0–498
3. वही, "हरियाने की लली" बच्चन रचनावली–2, पृ0–506

ः ते में कुछ छंद युक्त गीत प्रभु वंदना से सम्बन्धित हैं। जैसे "प्रभु मन्दिर यह दे री" एवं मैं तो "बहुत दिनों पर चेता" आदि । किन्तु इन गीतों में प्रार्थना के पदो जैसा भाव नहीं है।

इस प्रकार "चार खेमेः चौंसठ खूटे" संकलन में कवि एक जीवंत रचनाकार के रूप में उपस्थित हुआ है।

## दो चट्टानें

इस संग्रह में संग्रहीत रचनाएं कवि ने सन् 1962–64 के बीच लिखी है। "दो चट्टाने " में बच्चन की उत्कृष्ट आधुनिक कविताएं संगृहीत हैं। आलोच्य कृति का नामकरण कृति की अन्तिम कविता "दो चट्टानें" अथवा "सिसफस बरकस हनुमान' के आधार पर हुआ है जो कई दृष्टियों से उचित प्रतीत होता है। कृति के नामकरण को प्रतीक रूप में ग्रहण करने पर कवि का यथार्थ बोध और प्रौढ़ व्यक्तित्व दो चट्टानें हैं जो अपनी समस्त दृढ़ता के साथ अंकित हैं।

इस कृति की रचनाओं का मुख्य स्वर वाह्य है। इसमें कुल 53 कविताएं हैं जिनमें ए. गीत है और शेष सभी मुक्त छंद की रचनाएं हैं। अधिकांश रचनाएं समसामयिक संघर्ष और युगीन मूल्यों – अवमूल्यों पर आधारित हैं। चीनी आक्रमण के प्रसंग में लिखी कविता "26–1–63" बच्चन के साहस, स्वाभिमान और क्षोभ को व्यक्त करती हं –

> और हार की
> धरती में धँस जाने वाली लाज भुलाए
> एक बेह्या, बे गैरत, बेशर्म जाति के
> लाखों मर्द, औरतें, बच्चे
> रंग बिरंगी पोशाकों में

राजमार्ग पर भीड़ लगाकर,
उन्हें देखकर शोर मचाकर
अपनी खुशियाँ जाहिर करते ।
शब्द हमारे आहें भरते ।"[1]

सचमुच कितनी तीव्र अनुभूति है।

"27 मई", "गुलाब की पुकार", "द्वीप लोप", "गुलाब कबूतर और बच्चा" "दो स्कूल" और "कील काटों में फूल" आदि कविताएं नेहरू जी से सम्बन्धित हैं। इसी प्रकार अन्यान्य सामयिक प्रसंगों को लेकर लिखी गयी कविताओं में भी "ड्राइंग रूम में मरता हुआ गुलाब" मुक्तिबोध की स्मृति में लिखी गयी है। "विक्रमादित्य का शासन", "गाँधी" "युगपंक", "युगताप", "शिवपूजन सहाय के देहावसान पूरा लिखे गये हैं। "भोलेपन की कीमत"लुमुम्बा की स्मृति में रचित है।

कुछ अन्य प्रकार की कविताएँ हैं जिनमें कवि ने अधिकतर व्यंग्य और आक्रोश की मुद्रा अपनायी है – जैसे – "गैंडे की गवेषणा", "माँस का फर्नीचर", "कवि से केंचुआ", "आधुनिक निंदक", "श्रृगालासन", "काठ का आदमी", "क्रुद्ध युवा बनाम कुद्ध वृद्ध" आदि ।

दो चट्टानें की कुछ कविताओं में कवि ने अपने अन्तर की प्रतिक्रिया को सहानुभूति और गहनतम अनुभव की सच्चाई के साथ व्यक्त किया है– जैसे: "दयनीयता", "संघर्ष–ईर्ष्या", "दिये की माँग", "ऐसा क्यों करता हूँ", "दो रातें", जीवन परीक्षा, आभास, धरती की सुगन्ध और नया–पुराना कविताएं ऐसी ही हैं।

---

1. बच्चन: दो चट्टानें – रचनावली–3, पृ0–29

परन्तु "दो चट्टानें" संग्रह की तीन कविताएं इस संग्रह की प्रतिनिधि कविताएं कहीं जा सकती हैं – इनमें पहली कविता "खून के छापे", द्वितीय "सार्त्र के नोबेल पुरस्कार ठुकरा देने पर" एवं तीसरी "दो चट्टानें" अथवा सिसफस बरक्स हनुमान" है।

"खून क छापे" शीर्षक कविता उन देशभक्तों के लिए लिखी गयी है जिन्होंने अपने देश की मुक्ति के लिए अपने को निछावर कर दिया था किन्तु आज जो ताना शाहियत की चट्टान पर पटक दिये जाते हैं।

यह बेमालूम खून किसका है ?
क्या उन सपनों का ?
जो एक उगते हुए राष्ट्र की
पलकों पर झूले थे, पुतलियों में पले थे,
पर लोभ ने, स्वार्थ ने, महत्वाकांक्षाओं ने
जिनकी आँखे फोड़ दी हैं,
जिनकी गर्दने मरोड़ दी हैं।"[1]

"सार्त्र के नोबेल पुरस्कार ठुकरा देने पर" शीर्षक गीत सम्बोध गीत है। यह रचना अत्यधिक मर्मस्पर्शी बन पड़ी है। पूँजवादी समाज व्यवस्था में विश्वविद्यालयों अकादमियों और प्रसिद्ध संस्थानों की हालत क्या होती है यह इस कविता में स्पष्ट हुआ है –

विश्वविद्यालय बँधे हे
विगत मूल्य परम्परा में
और अब तो बिक रहे वे
राजनीति खरीदती है[2]

---

1. दो चट्टानें – खून के छापे – बच्चन रचनावली–3, पृ0–41
2. दो चट्टाने – सार्त्र के नोबेल पुरस्कार ठुकराने पर – बच्चन रचनावली–3 पृ0 – 91

एवं

औ अकादमियाँ
समय जर्जरित, जड़ हठ–हूश,
दकियानूस
सिद्धान्तों विचारों के जरठ अड्डे रही हैं
और अब वे
स्वार्थ साधक, चालबाज प्रचार का भी
क्षुद्रताओं की बड़ी दुर्भेद्य गढ़ियाँ ।"[1]

इस संग्रह की अन्तिम रचना दो चट्टानें अथवा सिसिफस बरक्स हनुमान' इस संकलन की ही नहीं वरन् अब तक की रचनाओं में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह बहुत लम्बी कविता हे इसके दो भाग हैं पूर्वार्द्ध जिसका प्रतिनिधित्व सिसिफस जो कि यूनानी पौराणिक पुरूष है। दूसरा भाग जिसका प्रतिनिधित्व हनुमान करते हैं। पौरूष के ये दो प्रतीक ही दो चट्टाने हैं। इनके माध्यम से हमारे युग की कई बातें बड़े प प्रभावशाली ढंग से कवि ने सामने रखी है। कविता में सिसिफस और हनुमान को ही प्रधानता है किन्तु अन्य प्रासंगिक पात्र भी हैं। यह कविता बच्चन की प्रबन्ध रचना की प्रतिभा का प्रमाण है। कल्पना, वस्तु योजना और वर्णन का ऐसा अद्वितीय रूप बच्चन की किसी अन्य कविता में नहीं दिखाई देता।

कविता के निर्वाह में कवि की संतुलित दृष्टि से दर्शन होते हैं। कविता के उत्तरार्द्ध में हनुमान का वर्णन है।

इस कविता से बच्चन की सीमा तथा शक्ति दोनों प्रकट हो जाते हैं।

---

1. दो चट्टाने : सात्रे के नोबेल पुरस्कार ठुकराने पर, बच्चन रंचनावली, –3, पृ0– 92

## बहुत दिन बीते

यह कृति सन् 1965 से 1967 के मध्य लिखी कविताओं का संग्रह है। यह भी मुक्त छंद में लिखी गयो है। इसमें कुल 69 कविताएं हैं। इस संग्रह की कविताओं में जहाँ एक ओर नवीनता का आग्रह है वहीं प्राचीन विचार भूमि का मोह भी है।

इस संग्रह के प्रारम्भिक दस पन्द्रह कविताएं व्यंग्य प्रधान है। शेष कविताओं में कवि का एक सजग, संवेदनशील प्रौढ़ रूप व्यक्त हुआ है इसमें कवि का गहन आत्म विश्लेषण व्यक्त हुआ है जिसमें कवि भोगे हुए युग जीवन के कटु सत्य को स्वर दिया है –

प्रारम्भ की कविताओं में उनका यह कटु सत्य का स्वर व्यंगय रूप में फूट पड़ा है –

बाढ़ आ गयी है, बाढ़
वह सब नीचे बैठ गया है
जो था गरू मरू
भारी भरकम
× × ×
आर ऊपर उतरा रहे हैं
किरासिन के जाली टिन
डालडा के डिब्बे ।[1]

किन्तु आलोच्य कृति की प्रतिनिधि रचनाएं वे हैं जो चिंतन प्रधान हे। "19·1·66" कविता में उनका प्रौढ़ चिन्तन स्पष्ट लक्षित होता है।

---

1. बच्चन: बहुत दिन बीते– बच्चन रचनावली–3, पृ0–152

ख़ून पसीने की रोटी
खाने वाली ये
एड़ी से लेकर चोटी तक
कर मेहनत से,
मार थकावट में डूबी ये
नहीं जानती
इसके भी अतिरिक्त कहीं कुछ
दुनियाँ में होता जाता है।[1]

इस काव्य संग्रह में कवि के भोगे हुए, अनुभव संगृहीत है –

धागा माला नहीं कि जीवन
तोड़ दिया जाए जब चाहे
कवि की नियति यही
कवित्व से कविता से अपने से भी
निर्वासित होकर
शापित इंसायिनत निबाहे ।[2]

कृति की अन्तिम सशक्त रचना "यात्रांत" है। यह जीवन का यात्रांत कोई ट्रेजेडी नहीं किन्तु यही जीवन का सच्चा संघर्ष और पुरूषार्थ मय आनन्द है –

रथ बड़े बीहड़ पहाड़ी,
बियाबानी, जंगली
जन मरे, निर्जन
रास्तों पर से गुजरता
रात–दिन
दिन–रात चलता
कभी पीछे को न मुड़ता
कहीं क्षण भर को न रूकता
पौर पर आकर तुम्हारे
थम गया है।[3]

---

1. बच्चन: बहुत दिन बीते– बच्चन रचनावली–3, पृ0–147
2. वही, पृ0–209
3. वही, पृ0–220

अन्त में "बहुत दिन बीते" कृति जगजीवन की गति व्यापने वाले एक जागरूक कवि के निश्चल आत्मशोध और बोध की एक महत्वपूर्ण कृति है। विषय तथा वाणी के विकास के क्रम की दृष्टि से आलोच्य कृति की अभिव्यंजना तक बच्चन ने साधारणीकरण को निभाया है।

## कटती प्रतिमाओं की आवाज

"कटती प्रतिमाओं की आवाज" सन् 1967–68 में रचित है। इस कृति में 91 कविताएं है। वैसे बच्चन जी के अनुसार "आप ऐसा ही समझे कि चूँकि संख्या में कविताएं अधिक थीं, इसलिए उन्हें दो खण्डों में प्रकाशित किया जा रहा है, गुण की दृष्टि से उन्हें पहले या दूसरे खण्ड में नहीं रखा गया क्रय–विक्रय की सुविधा को ध्यान में रखकर दूसरे खण्ड को एक अलग ही नाम दिया जा रहा है।"[1]

इस कृति में छायावादोत्तर पीढ़ी के उन शक्तिमन स्वरों के मुखर रूप है जिसने बदलते जमाने के प्रति आँखे खुली रखी है। इस संग्रह के सम्बन्ध में लिखते हुए बच्चन जी कहते हैं – "मैंने इसे कटती प्रतिमाओं की आवाज कहा है, क्योंकि इसकी कविताएं लिखते हुए बारम्बार मेरा ध्यान उस विखण्डन, विघटन और बिखराव की ओर गया है जो आज हमारे बाहर, और बाहर से अधिक भीतर चल रहा है।"[2]

इस कृति में नई पुरानी पीढ़ी का संघर्ष है और इस संघर्ष में समन्वय के बीज छुपे हुए है। कवि इस संघर्ष में नई पीढ़ी के साथ हो जाता है–

---

1. बच्चन: कटती प्रतिमाओं की आवाज, भूमिका से : बच्चन रचनावली–3, पृ0–228
2. वही, पृ0 – 227

नई उम्रों को न रोको
नई ज्वाला से
अभय हो
खेलने दो
जूझने दो [1]

"कटती प्रतिमाओं की आवाज" का समूचा कथ्य जगजीवन के विराट परिवेश में सृजन का वह संतुलित बोध व्यक्त कराता है जो अपने समग्र रूप में देश काल की अस्त – व्यस्त स्थिति का ही आधुनिक बोध कहला कर क्षणिक न होकर शाश्वत है। क्योंकि इस बोध में व्यक्ति जीवन की तमाम अभाव अनास्था कुण्ठा निराशा आक्रोश की आवाज होते हुए भी उसके प्रति सूक्ष्म मानवीय प्रेम आस्था, और आत्म उन्नति की अभिव्यक्ति हुई है ।

"टूटा हुआ होकर कोई शान्त नहीं रह पाता,
एक समय
फिर जुड़ने को तुम व्याकुल होगे,
इधर– उधर भटकोगे,
अपना सिर पटकोगे।"[2]

परिवार किसी भी व्यक्ति के विकास क्रम में पहली सीढ़ी है। परिवार के बाद ही व्यक्ति समाज या राष्ट्र से जुड़ता है। बच्चन ने अपनी कविताओं में पारिवारिक सम्बन्धों का चित्रण बखूबी किया है –

पूज्य पितामह
और पितामह तुल्य बृद्ध जन
आदरणीय पिता
प्रणमय ताऊ चाचा गण
मान्य अग्रजों
प्रियवर अनुजों
प्यारे बेटों और भतीजों
चिरंजीव पोतों
सबका स्वागत करता हूँ।"[3]

---

1. बच्चन:कटती प्रतिमाओं की आवाज: भूमिका से –बच्चन रचनावी–3 पृ0–269
2. वही, पृ0–291
3. वही, पृ0–257

एक व्यक्ति और परिवार के स्थूल सम्बन्ध स्तर पर रची इन कविताओं का काव्यगत महत्व इस दृष्टि से विशेष है कि कवि ने व्यक्ति परिवार के सम्बन्धों से ऊपर उठकर मात्र मानवीय तकाजों का मूल्य कितना निर्मूल्य ठहराया है, जबकि लोक व्यवहार में आज बड़े से बड़ा नेता समाज सुधारक इन सम्बन्धों के स्वार्थमय संकीर्ण दायरे से मुक्त नहीं हो पाता। बच्चन ने इस दिशा में निर्द्वन्द्व अभिव्यक्ति का साहस दिखलाया है।

## उभरते प्रतिमानों के रूप

इस संग्रह में संगृहीत कविताएं 1967–68 के बीच लिखी गयी जैसा कि कटती प्रतिमाओं की आवाज की भूमिका में कवि ने लिखा है कि प्रारम्भ में इन दोनों संग्रहों को एक में ही प्रकाशित करने का इरादा था परन्तु कविताओं की संख्या अधिक हो जाने के कारण इसे दो संग्रहों में प्रकाशित किया गया। इस संग्रह में 71 कविताएं हैं। इनमें अनेक कविताएं उस समय की अनुभूतियों को संजोए है जबकि कवि विदेश भ्रमण को गये थे। रूस की गुड़िया, मंगोलिया का घोड़ा, चेकोस्लावाकिया का भूल भुलैया, बुखेनवाल्ड बन्दी शिविर, ताशकन्द, बारमा की आँखे, गिरि अरारात आदि कविताओं का विषय विदेश से सम्बन्धित है। विदेशी विषय वस्तु पर ही "सीवान किनारे", सीवान किनारे प्रतिध्वनियाँ 1–6 तक "तिबलिसी पहाड़ी से", "तिबलिया पहाड़ी पर", "सुखूमी" जिप्सी, वोल्गा से गंगा तक आदि कविताएं अपनी अनुभूति की गहराई के लिए हमेशा याद की जाएगी।

"वोल्गा से गंगा तक" एक तीखा विरोधाभास उपस्थित करता है–

फैक्टरियों से मिलो, कारखानों से
ओ वोल्गा किनार के
बन्दरगाहों पर लंगर डाले
पोतों से भोंपू की आवाजें रह–रह
रह– रह उठती है।
आर–पार तट गुंजित करती

× × ×
लोगों ने हर हर गंगे कहकर
फिर – फिर ली होगी डुबकी"[1]

कवि ने अपने व्यंग्य वाणों से किसी को भी नहीं बख्शा चाहे वह राजनीतिज्ञ हो चाहे साहित्यकार । राजनेताओं पर व्यंग्य की एक बानगी –

आसन भी है शासन भी है
अफसर दफ्तर, फाइल नोट
पुलिस कचहरी पलटन सलटन
सबसे ताकतवर है वोट
वोट नहीं क्यों पाया तुमने
तिकड़म बाजी में तुम फेल ।"[2]

ऐसे लोगों पर भी व्यंग्य करता है जो सपने परम्परागत मूल्यों को नहीं छोड़ पाते अपने अन्दर के इन्सान को नहीं मार पाते, मानवीयता नहीं भुला पाते और आज के इस दौर में तिकड़मबाजी नहीं जानता।

किन्तु जमाने में कुछ ऐसे हैं,
महानगर में जा तो पड़े
मगर मानवता अपनी छोड़ नहीं पाए हैं।"[3]

कुल मिलाकर उभरते प्रतिमानों के रूप में जो एक बात उभरकर आती है कि सृजन सदा संहार के बाद होता है। सृजन के लिए संहार आवश्यक है। इस प्रकार इस संग्रह की कविताओं में युग जीवन की विकट वास्तविकताओं तथा नए पुराने जीवन मूल्यों के संघर्ष को वाणी प्रदान की गयी है।

---

1. बच्चन: "उभरते प्रतिमानों के रूप" – बच्चन रचनावली–3, पृ0–332
2. वही, पृ0–335
3. वही, पृ0–347

संक्षेप में बच्चन की काव्य यात्रा के प्रथम चरण में जहाँ "मधुशाला" में जीवन के भोगवाद के प्रति चरम आसक्ति परिलक्षित होती है वहीं "मधुबाला" में रूप सौंदर्य के प्रति प्यास एवं तृप्ति की तीव्र पुकार प्रतिध्वनित होती है। "मधुकलश" अस्तित्ववादी दर्शन का गीतमय रूपांतरण जान पड़ता है। मधुकलश के गीतों में व्यक्ति की मस्ती का नहीं उसकी हस्ती तथा उसके हौसले का नाद है। द्वितीय चरण में "निशा निमंत्रण" के गीतों के पीछे नियति की निमर्मता का भयंकर प्रहार और उससे उठा मर्म भेदी चीत्कार ध्वनित होता है। इन गीतों में वैराग्य, वेदना, अनास्था की ध्वनि है परन्तु इन गीतों की उदासी ऐसी है जो पाठक की उदासी को सोख लेती है। "एकान्त संगीत" तथा "आकुल अन्तर" में कवि का एकाकीपन जनित विषाद बहुत तीखे ढंग से व्यक्त हुआ है। परन्तु इन कविताओं का मूल स्वर संघर्षपरक है जो कि अंधकार में पैठने उससे संघर्श करने और उबरने का काव्य है।

काव्य यात्रा के तृतीय चरण में कवि एक बार पुनः राग रंग में डूब जाता है। परन्तु इस समय का प्रणय किशोरावस्था के प्रणय की तरह सरल नहीं है इसमें "हलाहल" मिला हुआ है। "सतरंगिनी" आग से राग के क्षेत्र में प्रवेश का काव्य है। सतरंगिनी की इन्द्रधनुषी छाया में आकर कवि का नवजीवन के नए प्रात, नई सृष्टि और नए उत्तरदायत्वि के बोध से परिचय होता है। "मिलन यामिनी" के गीत आनन्द एवं मस्ती के हैं तो "प्रणय पत्रिका" में राग और विप्रलम्भ श्रृंगार के मूल स्वर के साथ समर्पण की भावना प्रमुख है।

चतुर्थ चरण की रचनाओं में समाज चेतना का मूल स्वर है। "खादी के फूल" की रचना गाँधी जी की हत्या के प्रतिक्रिया स्वरूप हुई। सूत की माला गाँधी जी की हत्या के बाद उनकी श्रृद्धांजलि के रूप में है। "धार के इधर–उधर" में कवि स्व से पर की ओर उन्मुख हुआ है। इन रचनाओं में राष्ट्रप्रेम के साथ साम्प्रदायिक वैमनस्य आदि के प्रति क्षोभ व्यक्त हुआ है। "आरती और अंगारे" में एक ओर आरती का विनत समर्पण है दूसरी ओर उसमें अंगारों सी उन्तप्त भावों की वाणी है।

प.वर्ती काव्य धारा का प्रारम्भ "बुद्ध और नाचघर" काव्य संग्रह से होता है। यहाँ जीवन के प्रति नया दृष्टिकोण है, नई अनुभूति है। त्रिभंगिमा" अदूरदर्शी संचयन और अधैर्य सम्पादन का परिणाम हे। "चार खेमे चौंसठ खूँटे की कविताओं में युगाभिव्यक्ति के साथ व्यंग्य का सशक्त स्वर प्रस्फुटित हुआ है। "दो चट्टाने" में युग यथार्थ की ऐतिहासिक परिवेश में मार्मिक अभिव्यक्ति है। "बहुत दिन बीते" की कविताएं मूलतः व्यंग्य प्रधान है। कहीं युग, विकृतियों की आर संकेत है तो कहीं रूढ़ियों के प्रति आक्रोश और उनमें समन्वय की बात । वस्तुतः यह संग्रह समन्वय की विराट चेष्टा है। "कटती प्रतिमाओं की आवाज" में मूलतः नई पीढ़ी का संघर्ष हे और इसके समन्वय के बीच है। अन्त में "उभरते प्रतिमानों के रूप" में युगाभि व्यक्ति का प्रखर रूप मिलता है।

****

## अध्याय – तृतीय

## समकालीन काव्य प्रवृत्तियाँ और बच्चन

बच्चन किसी एक विचारधारा या वाद विशेष के कवि नही हैं उन्होंने जीवनानुभूतियों से प्रभाव ग्रहण किया और तदनुरूप काव्य का सृजन किया। जीवन की कटु–मधु–अनुभूतियाँ उनसे जो कुछ लिखाती गयीं वे लिखते गये। बच्चन वस्तुतः अपने भीतरी सत्य अपनी अनुभूति और घुटन के कवि हैं। अधिक उचित यही होगा कि उन्हें वाद विशेष की अपेक्षा जीवन के धरातल पर पहचानने की कोशिश की जाय। जीवन का धरातल जब अध्ययन की परिसीमाओं में उतरता है तो कतिपय प्रवृत्तियाँ के रूप में। इन्हीं प्रवृत्तियों को वाद की संज्ञा भी दी जाती है। प्रत्येक कवि या रचनाकार अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित अवश्य होता है। जाने या अनजाने उस युग का प्रभाव उसकी कविता में आ जाता है। बच्चन के काव्य के सन्दर्भ में हम उन्हीं प्रवृत्तियों का अध्यन करेंगे जिनका प्रभाव जाने या अनजाने में कवि की रचनाओं में आया है। इस दृष्टि से बच्चन की समकालीन काव्य प्रवृत्तियाँ जिनका प्रभाव उन्होंने ग्रहण किया है निम्नलिखित हो सकती है जिन्हें अध्ययन का आधार बनाया गया है–

1. हालावाद
2. स्वच्छंदतावाद
3. प्रगतिवाद
4. प्रयोगवाद
5. यथार्थवाद
6. आदर्शवाद
7. व्यक्तिवाद

**हालावाद :**

हालावाद का दर्शन अपने मूल स्थान फारस में एक प्रकार का सूफी दर्शन है। इस्लाम के वाह्य आचारवाद के विरूद्ध इस्लाम के अन्दर से ही विद्रोह शुरू हुआ। इस विद्रोह को अंजाम देने वाले थे सूफी संत। इन्होंने इस्लाम के आचारवाद की निंदा की और खुदा की प्राप्ति में बाधा मानते हुए क्रान्ति कर दी। सूफियों ने वाह्य आचारों जैसे रोजा–नमाज आदि को चुनौती दी और शराब, सुराही, प्याला, साकी

मीना आदि को प्रतीक बनाकर अपनी साधना की नींव खड़ी की। सूफियों का मानना था वाह्याचारों के अंधानुगमन से खुदा प्राप्त नहीं हो सकता। जब तक कि उसे प्रेम का पात्र न बनाया जाय उसकी प्राप्ति असम्भव है। इस्लाम में खुदा से प्रेम करना कुफ्र है। किन्तु सूफियों ने उस नियंता के जलवे को संसार के प्रत्येक पदार्थ में देखा। सूफियों ने आत्मा--परमात्मा के एकता की घोषणा की किन्तु जगत को मायावादियों की भाँति मिथ्या न मानकर उसे परब्रह्म का प्रतिबम्ब माना। अतः इस प्रतिबिम्ब (जगत) में उस मूल बिम्ब (परमात्मा) की अनुभूति करना स्वाभाविक था।

इस्लाम में जिस शराब और प्रेम का निषेध था। सूफियों ने उसी को आधार बनाया। लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम का आधार बन गया। बुतों से दिल लगाना बुरा न समझा गया क्योंकि प्रेम की पीर का विकास इसी से होगा जो उस खुदा की ओर ले जायेगा। इस प्रकार प्रेम मादकता, शराब प्याले आदि की चर्चा सूफियों के एक आन्दोलन के रूप में चल पड़ी। उसका अपना एक दर्शन बन गया।

सुप्रसिद्ध सूफी साधकों में जून नून वह पहला व्यक्ति है जिसने सूफी मार्ग का विशद विवेचन किया है। वही सम्भवतः पहला व्यक्ति है जिसने आध्यात्मिक प्रेम के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया। शराब पिलाने वाली साकी और प्याले के रूपक का प्रयोग आध्यात्मिक प्रेम के लिए उसी ने किया। अन्य प्रमुख सूफी साधकों में रूमी, खैयाम, राबिया, हाफिज आदि ने प्रेम जन्य मादकता की अतिशयता और उससे उत्पन्न भावुकता और तन्मयता का प्रतीक मदिरा की मादकता को बनाया।

सूफी दर्शन के इस प्रभाव को मध्यकालीन हिन्दी साहित्य के कुछ संतो--कवियों यथा कबीर आदि में देखा जा सकता है। आधुनिक काल में सूफी दर्शन हालावाद के रूप में सामने आया। इसके मूल में फारसी प्रभाव नही है। हिन्दी में यह दर्शन फिट्जेराल्ड के अंग्रेजी अनुवाद "रूबाइयत उमर खैयाम" के माध्यम से आया। इसी अनुवाद के माध्यम से हिन्दी जगत का खैयाम से परिचय हुआ।

सन् 1920 के लगभग "सरस्वती" में उमर खैयाम की यदा--कदा चर्चा होनी प्रारम्भ हो गयी थी। 1930 के आस--पास खैयाम की रूबाइयों की धूम मच गयी

थी। प्रश्न उठता है कि ऐसी कौन सी मनःस्थिति थी जिसने खैयाम की ओर लोगों को आकर्षित किया। वास्तव में तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक स्थिति निराशाजनक थी। सारे देश में कुंठा व्याप्त थी। ऐसे समय में उमर खैयाम की रूबाइयों ने उपयुक्त भूमि प्रदान की।

हालावाद निराशावाद के क्रोड़ से उत्पन्न हुआ था। कवि समाज से भिन्न प्राणी नहीं होता। अतः इन कवियों ने जो कुछ कहा उसमें तत्कालीन समाज की प्रेरणा निहित थी। सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक थपेड़ों ने भारतीय जीवन में उथल-पुथल मचा दी थी इसी दुख से क्षणिक मुक्ति का काम हालावादी साहित्य ने किया। निराश भारतीय जनता को हाला, मदिरालय, प्याला सुराही आदि ने क्षणिक विराम दिया। भूत और भविष्य की चिन्ता से क्षणिक मुक्ति पाकर व्यक्ति वर्तमान क्षण में जीने की बात करने लगा।

भगवती चरण वर्मा, हृदयेश, नवीन, बच्चन अंचल आदि अनेक कवियों ने इस मादकता और बेहोशी के गीत गाये। सभी में प्रतिपल के परिवर्तन के क्षणवादी दृष्टिकोंण है। परिमाण और ख्याति दोनों ही दृष्टियों से "बच्चन" का स्थान इन सबमें ऊँचा है।

बच्चन हालावादी साहित्य के प्रमुख कवि हैं। उन पर उमर खैयाम का प्रभाव दो प्रकार से पड़ा। प्रथम उन्हें उसके भाव इतने प्रिय लगे कि उन्होंने रूबाइयत का अनुवाद कर डाला और इसके अतिरिक्त खैयाम का जीवन दर्शन इतना हृदय स्पर्शी लगा कि बच्चन न उसे अपना लिया और तीन स्वतन्त्र मधुवादी काव्य कृतियों की रचना की। इसमें कवि ने मदिरालय, हाला, मधुबाला, प्याला और साकी के प्रतीकों को स्वीकार कर उनका विभिन्न अर्थो में प्रयोग किया। कहीं हाला प्राण है तो पात्र शरीर, कहीं हाला जीवन है तो पात्र जगत, हाला सागर है तो पात्र पृथ्वी। इस प्रकार कवि ने सृष्टि की असंख्य वस्तुओं में मधुशाला एवं हाला के दर्शन कर सभी प्रकार के पीने वालों को तृप्त करने का प्रयास किया। बच्चन ने इन कृतियों में कल्पना विचार और

भावों का समन्वय अत्यन्त ही कौशल के साथ किया है।

मधुशाला में बच्चन कहीं सुधारक के रूप में दिखाई देते हैं तो कहीं विद्रोही। सामाजिक विषमताओं, जातीय विभिन्नताओं और धार्मिक आडम्बरों पर किये गये व्यंग्य अत्यन्त तीव्र हैं। बच्चन किसी प्रकार की जातीय संकीर्णता के पक्ष में नहीं है। उनकी कामना है कि मनुष्य जातीयता और धार्मिक संकीर्णताओं से मुक्त हो, समानता का व्यवहार करे। इस प्रकार सभी असामंजस्य, विभिन्नता को दूर करने का उनकी दृष्टि में एक ही उपाय है – "हाला"। यही "हाला" प्रेम की मस्ती का दूसरा रूप है जो सृष्टि की समस्त वस्तुओं से छलक रहो है। यही नहीं हाला की मादकता में कवि को अनंत सुख की प्राप्ति होने लगती है।

इस प्रकार हाला एक ओर लोक सुख का साधन है तो दूसरी ओर परलोक सुख का। मधुबालाा में बच्चन अध्यात्मवाद का अच्छा रूपक उपस्थित करते हैं। इनमें मालिक मधुशाला, मदिरालय, सुराही, मधुपायी, प्याला आदि सृष्टिकर्ता, जगत, प्राणी, जीवन और आनन्द के प्रतीक हैं। कवि ने मधुबाला में लौकिक और अलौकिक दोनों भावनाओं का आरोपण किया है।

बच्चन अपनी प्रेम रूपी मदिरा का प्याला लिए सारे संसार को ललकारते हैं। धार्मिक संकीर्णताओं पर जमकर प्रहार करते हैं। कबीर की भाँति हिन्दू-मुस्लिम दोनों को फटकार लगाते हैं और स्वयं को दोनों से मुक्त बताते हुए कहते हैं–

> "हमने छोड़ी कर की माला, पोथी पत्रा भू पर डाला
> मन्दिर–मस्जिद के बंदीगृह को तोड़ लिया कर में प्याला।"[1]

कवि की दृष्टि में मन्दिर मस्जिद से तो मधुशाला अधिक पवित्र हैं उनका तर्क है–

> "रक्त से सींची गयी है राह मन्दिर मस्जिदों की
> किन्तु रखना चाहता मैं पाँव मधु सिंचित डगर में ।"[2]

---

1. बच्चन– मधुबाला, बच्चन रचनावली–1, पृ0–87
2. बच्चन– मधु कलश, बच्चन रचनावली–1, पृ0–135

उसे आलोचकों का कोई भय नहीं है। वह प्रत्यक्ष देखता है कि पाप पुण्य के दायरे मानवों द्वारा निर्मित हैं। प्रकृति में ऐसा कोई विभाजन नहीं है–

"वह पुण्य कृत्य यह पाप कर्म, कह भी दूँ, तो दूँ क्या सबूत
कब कंचन मस्जिद पर बरसा, कब मदिरालय पर गाज गिरी।"[1]

प्रेम की मदिरा की मादकता ऐसी है कि मनुष्य बड़े से बड़ा दुख भूल जाता है।प्रेम की मादकता उसे जीवन के संघर्षों को झेलने में समर्थ बनाती है। मानव यह जानता है कि जीवन क्षण भंगुर है परन्तु प्रेम की हाला पीकर इस मस्ती में वह नश्वरता और अमरता का द्वन्द्व मिटा देना चाहता है–

"वह मादकता ही क्या जिसमें बाकी रह जाए जग भय।[2]

अपने प्रेम की हाला में कवि विश्व के विषमय जीवन में सुख का संचार करना चाहता हैं। वह सारे संसार का दुख दर्द झेलकर लोगों में प्यार बाँटता है–

"मैंजग जीवन का भार लिए फिरता हूँ
फिर भी जीवन में प्यार लिए फिरता हूँ ।"[3]

इस प्रकार कवि हाला, प्याला और मधुशाला के प्रतीकों के सहारे धार्मिक संकीर्णताओं और सामाजिक विषमताओं पर व्यंग्य करता है। कवि मधुशाला को इन सबका एक मात्र उपचार बताता है। धार्मिक संकीर्णताओं पर कवि की व्यंग्योक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

मुसलमान और हिन्दू हैं दो एक मगर उनका प्याला
एक मगर उनकी मदिरालय, एक मगर उनकी हाला
दोनों रहते एक न जब तक मन्दिर मस्जिद में जाते
बैर बढ़ाते मन्दिर मस्जिद मेल कराती मधुशाला ।[4]

---

1. बच्चन, मधुबाला, बच्चन रचनावली–1, पृ0– 96
2. वही, पृ0–102
3. वही, रचना–1, पृ0 111
4. बच्चन, मधुशाला, बच्चन रचनावली–1, पृ0–52

और

शेख कहाँ तुलना हो सकती
मस्जिद की मदिरालय से
चिर विधवा है मस्जिद तेरी
सदा–सुहागिन मधुशाला।[1]

कवि आडम्बर से दूर सहज अनुभूति को जीने वाला है वह स्पष्टवादी है। संसार तो छद्म को ही महत्व देता है पाप करके जो छिपा सके उसे संसार साधु समझता है–

मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता
शत्रु मेरा बनगया है छल रहित व्यवहार मेरा।[2]

ऐसे संसार की चिन्ता करना कवि ने छोड़ दिया है और मादकता का संदेश लिए फिर रहा है। जीवन क्षण भंगुर है न जाने कब मृत्यु का आलिंगन करना पडे इसलिए वर्तमान क्षण को वह जी–भोग लेना चाहता है। क्योंकि–

"अभी है जिस क्षण का अस्तित्व, दूसरे क्षण बस उसकी याद
याद करने वाला यदि शेष; नहीं क्या सम्भव क्षण भर बाद।"[3]

परन्तु इस प्रकार मादकता में सुख–दुख भूलने और अमरता–नश्वरता के द्वन्द्व से मुक्ति की बात करने वाले कवि पर पलायनवाद का आरोप लगाया गया जो कि मेरी नजर में गलत है क्योंकि कवि जीवन की अनुभूति के कवि हैं स्वयं उन्हीं के शब्दों में –

---

1 बच्चन, मधुशाला, बच्चन रचनावली–1, पृ0–51

2. बच्चन, मधुकलश, बच्चनरचनावली–1, पृ0–129

3. बच्चन, मधुबाला, : बच्चन रचनावली–1, पृ0–103

"राग के पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन
हैं लिखे मधुगीत मैंने हो खड़े जीवन समर में।"[1]

बच्चन की रचनाएं अपने इसी गुण के कारण आज भी अपनी चमक बनाए रख सकी हैं। बल्कि उनकी चमक उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है साथ ही कवि की लोकप्रियता भी। हालावाद के सम्बन्ध में बच्चन का कथन कि–"कोई सिद्धान्त बनाकर कोई वाद विशेष चलाने के विचार से, कोई दर्शन प्रतिपादित करने के ध्येय से, कोई क्रान्ति करने का लक्ष्य करके, अथवा स्थापित और प्रचलित काव्य विधा–छायावाद के विरूद्ध विद्रोह का कोई झण्डा खड़ा करने के लिए यह कविता नहीं आई। पर जब आई तो इसमें यह सब देखा गया और समय के साथ अधिकाधिक देखा जाने लगा। अगर मेरी कविता में यह सब था तो मेरे जीवन में आ चुका था। कोई सिद्धान्त बना था तो जीवन में, किसी वाद का आभास हुआ था तो जीवन में।"[2]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि बच्चन ने अपनी कविता के माध्यम से कोई वाद नहीं चलाया उनकी कविताओं को जो हालावाद नाम दिया गया सम्भवतः छायावाद से भिन्न समझा जाने के कारण। उन्होंने जीवनानुभूतियों से प्रभाव ग्रहण किया और उसी को अपने काव्य में वाणी दी। उन्होंने अपने जीवन में जो जिया, भोगा उसी को काव्य के माध्यम से कुछ प्रतीकों के सहारे व्यक्त किया।

## स्वच्छन्दतावाद :

स्वच्छन्दतावाद अथवा रोमांटिसिज्म एक प्रवृत्ति विशेष का द्योतक शब्द है। यह प्रवृत्ति प्रत्येक काल के साहित्य में परिलक्षित होती है। स्वच्छंदतावाद से आशय साहित्यिक उदारवाद से है अर्थात् प्राचीन शिष्ट तथा क्लासिक परिपाटी के विरोध में उठ खड़ी होने वाली विचारधारा को रोमान्टिसिज्म कहा जाता है।

रूसो रोमांटिसिज्म धारा का प्रथम प्रतिनिधि कवि था। स्वतन्त्रता की लालसा एवं बंधनों का त्याग उसका मुख्य आग्रह था। प्राचीन धर्म, परम्परागत सामाजिक संस्कार

---

1. बच्चन, मधुकलश, बच्चन रचनावली–1, पृ0–136
2. बच्चन, क्या भूलूं क्या याद करूं, रचना–07, पृ0–227

आदि के विरोध में ही रोमांटिसिज्म का जन्म हुआ। डा0 कमल कुमारी जौहरी ने स्वच्छंदतावाद की निम्न विशेषताएं मानी हैं –

1. कल्पना की प्रधानता
2. भावना का अतिरेक एवं प्रेम की प्रधानता
3. व्यक्तित्व का समावेश
4. प्रकृति प्रेम
5. अतीत प्रेम
6. सौन्दर्य प्रेम एवं सौंदर्य दृष्टि
7. साहसिकता तथा शौर्य का प्रदर्शन
8. असाधारण एवं अलौकिकता की ओर झुकाव एवं जीवन की वास्तविकता से पलायन
9. कौतूहल एवं औत्सुक्य दृष्टि
10. अभिव्यक्ति के क्षेत्र में नियमों तथा रूढ़ियों से मुक्त तथा शास्त्रीयता के विरूद्ध ।"[1]

स्वछंदतावाद में साहित्य को सीमा, नियम, आदर्श, उद्देश्य आदि से निकालकर व्यापक बनाया गया। साहित्य जीवन की तरह गतिशील है तथा युग एवं परिवेश के अनुकूल परिवर्तनशील। इसका बोध होते ही साहित्यकारों ने परम्परा के प्रति विद्रोह किया तथा अनुकरण के बदले प्रेरणा को महत्व दिया।

बीसवीं शती के प्रारम्भ में ही रीतिकाल तथा द्विवेदी युग के विरूद्ध छायावाद का उदय हुआ। छायावादी कवि अंग्रेजी के स्वच्छंदतावादी आन्दोलन से प्रभावित थे। छायावादी कवियों के विद्रोह का आधार भी वैयक्तिक स्वातन्त्र्य की आकांक्षा थी। छायावाद तथा रहस्यवाद दोनों ही अपनी विचार पद्धति और रूप विधान दोनों के लिए स्वच्छंदतावाद के ऋणी है। आध्यात्मिक स्तर का प्रकृति प्रेम, उदार मानवतावाद तथा काव्य की स्वच्छंद अभिव्यक्ति प्रणाली ये तीनों रोमांटिसिज्म की प्रवृत्तियां रहस्यवाद और छायावाद

---

1. डा0 कमल कुमारी जौहरी, हिन्दी के स्वच्छंदतावादी उपन्यास, प्र0सं0, पृ0– 36

में मिलती हैं। यह प्रभाव कुछ तो प्रत्यक्ष था और कुछ रवीन्द्रनाथ टैगोर के माध्यम से आया। छायावादी कवियों में इससे सबसे अधिक प्रभावित सुमित्रानन्दन पंत है।

बच्चन के काव्य में भी स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति विद्यमान है। हिन्दी काव्य क्षेत्र में स्वच्छंदतावाद के तीन मुख्य पक्ष हैं – दार्शनिक, कलात्मक और साहित्यिक। स्वच्छंदतावाद का दर्शन किसी तत्व ज्ञान के अर्थ में दार्शनिक नहीं है और न वह भक्तिकाल के आन्दोलन से मिलता जुलता है। यह तो एक दार्शनिक दृष्टिकोंण की अनुभूति मात्र है। यह यथार्थवादी व्यवहारिक दर्शन है अतः इसे मानवीय अनुभूति के सम्बन्ध में ही देखना उचित होगा। कवि को सागर, निर्झर, नदी–नाले, कोयल, बुलबुल आदि सब चेतन – अचेतन पदार्थो में चेतना का एक प्रवाह दिखाई देता है–

मग में कितने सागर गहरे, कितने नद-नाले नीर-भरे,
कितने सर, निर्झर, स्रोत मिले पर नहीं कहीं पर हम ठहरे।[1]

स्वच्छंदतावादी कविता ने कलात्मक प्रतिमान भी बदले। काव्यगत प्राचीन रूढ़ियों एवं परम्पराओं को तिलांजलि दे दी और काव्य क्षेत्र में प्रगीति एवं मुक्त छंद की ओर अपना रूझान किया। साहित्यिक रूप से परिवर्तन स्वच्छंदतावाद का तृतीय पक्ष है। इसके अन्तर्गत काव्य में छन्द, काव्य रूप एवं रचना प्रक्रिया में महान परिवर्तन हुआ। भाषा में शब्द शक्ति का पर्याप्त विकास हुआ। आधुनिक कवियों ने लाक्षणिकता, सांकेतिकता, शब्दों के ध्वन्यात्मक प्रयोग एवं वाद सौन्दर्य द्वारा भाषा का अनुपम श्रृंगार किया। बच्चन के काव्य में हमें इसी प्रकार का स्वच्छंदतावादी आवेश देखने को मिलता है –

"तुमने समझा मधुपान किया मैने निज रक्त प्रदान किया
उर क्रंदन करता था मेरा पर मैंने मुख से गान किया।"[2]

---

1. बच्चन: मधुबाला : बच्चन रचनावली–1, पृ0– 88
2. वही, पृ0– 95

बच्चन ने नियति से पराजित होकर भी अपराजेय बने रहने का संदेश स्वच्छंद रूप से इन पंक्तियों में प्रस्तुत किया है। उनके काव्य में स्वच्छंदतावाद की सभी प्रवृत्तियों का प्रयोग हुआ है। जब बच्चन का काव्य क्षेत्र में पदार्पण हुआ उस समय छायावाद विदा ले रहा था और प्रगतिवाद तेजी से अपने पाँव पसार रहा था। यह संधि युग था। बच्चन के काव्य में दोनों प्रवृत्तियों के दर्शन सहज रूप में दिखाई देते हैं –

> बादल वारिधि से मधु पीकर नभ के आँगन में मँडराते
> चपल साकी को संग लिए नर्तन करते गायन गाते।[1]

उपरोक्त पंक्तियों में छायावादी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत हो रहा है। परन्तु यह संधिकाल था छायावाद अपनी उम्र जी चुका था उसके वायवी अशरीरी सौन्दर्य के लिए अब कोई स्थान न था। जीवन की वास्तविकताएं और स्वच्छंदतावाद की अकुलाहट छायावाद को चुनौती दे रही थी। बच्चन ने इस चुनौती को निर्भीकता से ग्रहण किया। उन्होंने अपनी सरल सुबोध वाणी से जो रागिनी छेड़ी तो छायावाद का राग भी उसके सामने फीका पड़ गया–

> मेरी तृष्णा तो मूर्तिमती परिपूर्ण विश्व की आकांक्षा
> मानव अशांति, मानव स्वप्नों के गायन ही तो हूँ गाता
> गाऊँगा जब तक एक नहीं होकर मिलते संघर्ष प्रणय।[2]

बच्चन का स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोंण उनकी "बुलबुल" कविता में देखा जा सकता है–

> "यही श्यामल नभ का संदेश रहा जो तारों के संग झूम
> यही उज्जवल शशि का संदेश रहा जो भू के कण–कण चूम।"[3]

---

1. बच्चन, मधुबाला, बच्चन रचनावली–1, पृ0–101
2. वही, पृ0–102
3. वही, पृ0–103

बच्चन ने अपने काव्य में स्वच्छंदता के साथ ही युग यथार्थ का चित्रण भी प्रभावपूर्ण ढंग से किया है –

"विभाजित करती मानव जाति धरा पर देशों की दीवार
जरा ऊपर तो उठ कर देख यही जीवन है इस उस पार।"[1]

इस प्रकार इसमें कोई सन्देह नहीं है कि छायावाद को अपदस्थ करके युग प्रवृत्ति को एक नया मोड़ देने में बच्चन ने अपने काव्य के माध्यम से अद्भुत सफलता पायी है।

संक्षेप में स्वच्छंदतावाद किसी प्रकार का कोई बन्धन स्वीकार नहीं करता और यह बात यह रचनाकार में कहीं न कहीं अवश्य पायी जाती है। मानव स्वच्छंद रहना चाहता है और इसी की अभिव्यक्ति वह अपने काव्य में करता है। बच्चन तो स्वभाव से ही विद्रोही रहे हैं। वे अपने काव्य के माध्यम से यही संदेश देते हैं कि बंधनों को काट फेंको। मन्दिर–मस्जिद रूपी बंधनों में मत फँसो। मधुशाला इन बंधनों का विकल्प है परन्तु यह भी तभी तक श्रेय है जब तक यह साधन है यदि इसे ही साध्य मान लिया जायेगा तो फिर एक बन्धन तैयार हो जायेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चन का काव्य हर जगह स्वच्छंदता के ताने–बाने में बुना गया है। अतः बच्चन स्वच्छंदतावाद के सच्चे पुजारी हैं जो पूजा में लीन प्रतिपल नूतनता की सृष्टि में रत हैं।

## प्रगतिवाद :

प्रगति का साधारण अर्थ है आगे बढ़ना। जो साहित्य जीवन को आगे बढ़ाने में सहायक हो वह प्रगतिशील साहित्य है। इस दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो सभी युग के कवि प्रगतिशील ही माने जायेंगे। छायावाद की जीवन शून्य होती हुई व्यक्तिवादी वायवी काव्य धारा की प्रतिक्रिया स्वरूप जिस काव्य धारा का जन्म हुआ उसे प्रगतिवादी काव्य कहा गया। जिस समय छायावाद अपने व्यष्टि साधना में तन्मय हो जगत की वास्तविकता से आँखे मूँदे आत्म विभोर हो आगे बढ़ा जा रहा था उसी

---

1. बच्चन मधुबाला: बच्चनउरचनावली–1, पृ0–103

समय जगत की नग्न वास्तविकताओं को सामने लिए प्रगतिवाद आगे आया। प्रगतिवाद ने छायावादी कवि को झकझोर कर एक नयी चेतना का आलोक दिखाया। उसने छायावादी सूक्ष्म काल्पनिकताओं का विरोध कर उसे स्थूल जगत की कठोर वास्तविकता के सम्मुख ला खड़ा किया।

वास्तव में प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थ के नाम पर चलाया गया वह साहित्यिक आन्दोलन है जिसमें जीवन और यथार्थ के वस्तु सत्य को उत्तर छायावाद काल में प्रश्रय मिला और जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अग्रसर होने की प्रेरणा दी। प्रगतिवाद का उद्‌देश्य था साहित्य में उस सामाजिक यथार्थवाद को प्रतिष्ठित करना जो छायावाद काल की विकृतियों को नष्ट करके एक नए समाज की, एक नए साहित्य की और एक नए मानव की स्थापना करें। वर्ग संघर्ष की साम्यवादी विचारधारा और उस संदर्भ में नए मानव की कल्पना इस साहित्य का उद्‌देश्य था। इसकी मूल प्रेरणा मार्क्सवाद से विकसित हुई। इसका उद्‌देश्य और लक्ष्य जनवादी शक्तियों को संघटित करके मार्क्सवाद और भौतिक यथार्थवाद के आधार पर निर्मित मूल्यों को प्रतिष्ठित करना था।[1]

जैसा कि कहा जा चुका है कि प्रगतिवादी विचारधारा का मूलाधार मार्क्सवाद या साम्यवाद है, अतः इसका थोड़ा परिचय आवश्यक होगा। इस वाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स थे। मार्क्सवादी विचारधारा को मुख्यतः तीन शीर्षकों में विभाजित कर सकते हैं –

1. द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद
2. मूल्य वृद्धि का सिद्धान्त
3. मानव सभ्यता के विकास की व्याख्या

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार दो शक्तियों के पारस्परिक द्वन्द्व से भौतिक जगत का विकास होता है अर्थात् दो शक्तियों के परस्पर द्वन्द्व से ही सृष्टि का विकास होता है। इस प्रकार दर्शन में जो द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद है, राजनीति में वही

---

1. हिन्दी साहित्य कोष, पृ0–395

साम्यवाद है और साहित्य में इसे ही प्रगतिवाद कहा गया। मार्क्स ने जिस प्रकार राजनीति को प्रभावित करके पाश्चात्य शासन प्रणाली एवं राजनीतिक विचारधारा को प्रभावित किया था उसी प्रकार प्रगतिवाद ने साहित्य के क्षेत्र में साहित्यिक विचारधारा को भी प्रभावित करके उसको एक निश्चित साधन बनाने का प्रयास किया।

वास्तविक सन्दर्भ में देखने से प्रगतिवाद केवल एक अयथार्थवादी भावधारा मात्र रह जाता है। यथार्थ के प्रति उसका कोई दायित्व नहीं है क्योंकि वह यथार्थ की सीमित और संकुचित परिधि को ही देखना चाहता है। भारतीय जीवन में प्रगतिवाद अनुभूतियों के स्तर पर देश काल और सामाजिक यथार्थ की अवहेलना ही करता रहा है इसीलिए उसे वह आत्मशक्ति नहीं मिल सकी जो उसका उद्देश्य था।

किन्तु यह सब होते हुए भी प्रगतिवाद ने जो यथार्थोन्मुखी दृष्टि उत्तर छायावाद काल में विकसित की, उसका ऐतिहासिक महत्व कम करके नहीं आंका जा सकता। उस समय सारी साहित्यिक चेतना जिस पतनोन्मुखी प्रवृत्ति में घुट रही थी उसको यथार्थ दृष्टि देने का श्रेय प्रगतिवाद को ही है और इस दायित्व का निर्वाह उसने जिस भी रूप में किया हो इतना तो निश्चित ही है कि उसने समस्त चेतना को एक बार झकझोर तो अवश्य ही दिया।

प्रगतिवादी काव्य की निम्न मूल प्रवृत्तियाँ मानी जा सकती है—

1. प्रगतिवाद जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोंण प्रस्तुत करता है।
2. प्रगतिवाद का उद्देश्य पूँजीवाद, सामंतवाद आदि सभी प्रतिक्रियावादी तत्वों से सम्बद्ध सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक, धार्मिक तथा साहित्यिक रूढ़ियों का विरोध कर समाजवाद की स्थापना करता है।
3. प्रगतिवाद पूर्णतः भौतिक दृष्टिकोंण वाला है वह धर्म ईश्वर तथा परलोक को नहीं मानता है।
4. शोषित वर्ग के जीवन की दीनता एवं कटुता का चित्रण
5. नारी के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोंण

6 कला को .ह अभिव्यक्ति का साधन मानकर उसका सहज बोधगम्य रूप अपनानें पर जोर दे.। है जो सर्वसाधारण की समझ में आ सके।

7. प्रगतिवाद साहित्य में व्यक्ति के ऊपर समाज की सत्ता का अंकुश चाहता है।"[1]

बच्चन भी अपने काव्य में प्रगतिवादी रूप को समेटे हुए हैं। उनका काव्य प्रगतिवाद से अछूता नहीं है। उन्होंने निम्न वर्ग की दरिद्रता को देखा है बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि उन्होंनें दरिद्रता को जिया और भोगा भी है–

औ दरिद्रता निम्न वर्ग की
पशुता के अति निम्न धरातल से
उसको जकड़े रहती है
कुछ उसके अतिरिक्त कहीं, वह नही जानता
मानवता है दान, दया, दम।"[2]

दुनिया में कहाँ क्या हो रहा है बेचारा गरीब क्या जाने और जाने भी तो जानने की फुर्सत कहाँ है क्योंकि उसका दान, दया आदि से विश्वास उठ चुका है।

बच्चन ने पूंजीवाद, सामंतवाद आदि सभी प्रतिक्रियावादी शक्तियों से सम्बन्धित नैतिक सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा साहित्यिक रूढ़ियों का विरोध कर समाजवाद की स्थापना करने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं –

यह जानी मानी बात है
कि सिंहों के लेहँड़े कभी नहीं रहे
पर यह विश्वास रहा है
कि छोटा भी
अगर कोशिश करे
    करता रहे
    करता जाये
तो एक दिन बड़ा हो जायेगा।[3]

---

1. डा0 जय प्रकाश भाटी, बच्चन का साहित्य कथ्य और शिल्प, पृ0–164
2. बच्चन, उभरते प्रतिमानों के रूप, रचना–3, पृ0–346
3. बच्चन, कटती प्रतिमाओं की आवाज, रचना–3, पृ0–249

बच्चन अपने इस समाजवाद के प्रचार का एक विकल्प मधुशाला के रूप में देते हैं और इसे साम्यवाद की प्रथम प्रचारक बताया है। कवि के अनुसार यह युग अकेले साधना का नहीं है बल्कि सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है–

अब एकाकी साधना का नहीं
सामूहिक प्रयासों का युग है,
जिसका यह विश्वास है
कि सौ–पचास बकरियाँ
साथ मिलकर मिमियाएँ
तो एक शेर खड़ा हो जायेगा
दहाड़ लगायेगा।[1]

बच्चन के प्रगतिवादी काव्य में मुख्यतः आवेश, आक्रोश, गर्जन, तर्जन देखने को मिलता है। इस दृष्टि से उनकी "बंगाल का काल" कविता दृष्टव्य है–

"मन से अब संतोष हटाओ असंतोष का नाद उठाओ
करो क्रांति का नारा ऊँचा भूखों अपनी भूख बढ़ाओ
और भूख की ताकत समझो हिम्मत समझो
जुर्रत समझो कूवत समझो देखो कौन तुम्हारे आगे
नहीं झुका देता अपना सिर ।"[2]

बच्चन भूख का अर्थ समझाते हुए कहते हैं –

"अर्थ भूख का अभी न जाना, हमें भूख का अर्थ बताना
भूखों इसको आज समझ लो मरने का यह नहीं बहाना।"[3]

भूख इतनी शक्तिशाली है कि वह बड़े से बड़ा साम्राज्य मिटा सकती है। भूख राजा रंक में भेद नहीं करती। वह इन्कलाब का नारा बुलन्द करती है। इस

---

1. बच्चन, कटती प्रतिमाओं की आवाज, बच्चन रचनावली–3, पृ0–249
2. बच्चन, बंगाल का काल, बच्चन रचनावली–1, पृ0–427
3. वही, पृ0–429

प्रकार हम देखते हैं कि बच्चन के काव्य में प्रगतिवादी तत्व विद्यमान है। प्रगति की बुलन्द आवाज में बच्चन में कहीं क्रोध है तो कहीं आक्रोश, कहीं स्नेह है तो कहीं ममता। अपने को हीन न मानकर स्वयं को बदल डालने का मोह वह संवरण नहीं कर पाए है। उनके काव्य में प्रगतिवाद के स्वर इतने ऊँचे हैं कि यदि उन्हें निकाल दें तो बच्चन के अहं को समझ पाने में असमर्थ रहेंगे–

बुद्धिमान कम नहीं जिन्होंने समझ लिया था
उन्हें प्रेरणा नहीं स्वर्ग से मिलने वाली।"[1]

इस प्रकार प्रगतिवाद के सभी तत्व बच्चन के काव्य में मिल जाते हैं। यह अलग बात है कि वे जीवन की अनुभूतियों के कवि हैं किसी वाद विशेष के नहीं इसीलिए प्रगतिवाद के गुण यत्र तत्र उनकी रचनाओं में जीवन की सच्चाइयों के रूप में आ गये हैं। उन्होंने जो जैसा देखा वैसा अभिव्यक्त किया यही प्रगतिवाद का भी गुण है।

**प्रयोगवाद :**

प्रगतिवाद से इतर एक नयी काव्य प्रवृत्ति के दर्शन सन् 1943 से होने लगे। इसे प्रयोगवाद की संज्ञा दी गयी। प्रयोग तो प्रत्येक युग में होते आए हैं। हिन्दी के प्रारम्भिक काल से लेकर आज तक भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रयोग होते आए हैं। परन्तु प्रयोगवाद नाम उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया जो कुछ नए बोधों, संवेदनाओं तथा उन्हें प्रेषित करने वाले शिल्पगत चमत्कारों को लेकर शुरू–शुरू में तार सप्तक के माध्यम से प्रकाशन जगत में आई और जो प्रगतिवादी कविताओं के साथ विकसित होती गयी और जिनका पर्यवसान नई कविता में हो गया।"[2]

तार सप्तक में "अज्ञेय" ने प्रयोग की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा है– "प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये हैं। यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष

---

1. बच्चन, कटती प्रतिमाओं की आवाज, बच्चन रचनावली–3, पृ0–286
2. डा0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0–635

दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है, किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए है, उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए, जिन्हें अभी नहीं छुआ गया है या जिनको अभेद्यमान लिया गया है।"[1]

डा0 नगेन्द्र के शब्दों में "प्रयोगवादी कविता का जन्म छायावाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। अंग्रेजी साहित्य में भी प्रयोगवादी कविताओं में रोमानी प्रकृति के विरूद्ध विद्रोह का तीखा स्वर मिलता है, परन्तु वह व्यवहारिक की अपेक्षा सैद्धान्तिक अधिक है। हिन्दी में यह प्रतिक्रिया अधिक स्थिर और स्पष्ट है।"[2] इस सन्दर्भ में हमारे समक्ष यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रयोग की अनुभूति उन क्षेत्रों की अन्वेषण प्रवृत्ति है, जिन्हें अभेद्य या निरपेक्ष मानकर छोड़ दिया गया था। प्रयोगवाद ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ने की बौद्धिक जागरूकता है। यह जागरूकता व्यक्ति सत्य और व्यापक सत्य के स्तरों पर व्यक्ति की अनुभूति की सार्थकता को भी महत्वपूर्ण मानती है। प्रयोगवाद व्यक्ति अनुभूति की शक्ति मानते हुए समष्टि की सम्पूर्णता तक पहुंचने का प्रयास है।

प्रयोगवाद का मन्तव्य समस्त परम्पराओं का खण्डन करना नहीं है, वरन् उसके निर्जीव तत्वों के स्थान पर नए जीवंत तत्वों का अन्वेषण करना है। प्रयोगवाद, परम्परा की असमर्थता में साहित्यकार की जिज्ञासा की अभिव्यक्ति का साधन है।

हिन्दी में प्रयोगवादी प्रवृत्ति के कुछ कारण थे। प्रथम तो यह कि छायावाद ने अपने शब्दाडम्बरों में बहुत से शब्दों, बिम्बों के गतिशील तत्वों को नष्ट कर डाला था। दूसरी ओर प्रगतिवाद ने सामाजिकता के नाम पर विभिन्न भाव स्तरों को एवं शब्द संस्कारों को अभिधात्मक बना दिया था। ऐसी स्थिति में नए भावबोध व्यक्त करने के लिए न तो शब्दों में सामर्थ्य थी न परम्परा से प्राप्त शैली में। परिणामस्वरूप उन कवियों को जो इनसे पृथक थे सर्वदा नया स्तर और नये प्रतीकों का प्रयोग करना

---

1. हिन्दी साहित्य कोष, पृ0–410
2. डा0 नगेन्द्र, विचार और विवेचन, पृ0–137

पड़ा। ऐसा इसलिए भी करना पड़ा क्योंकि भावान्तर की नई अनुभूतियाँ विषय और सन्दर्भ में इन दोनों से सर्वथा भिन्न थीं।

इस प्रकार छायावाद के विरूद्ध जो प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई उसके फलस्वरूप मार्क्सवाद से प्रभावित एक वर्ग प्रगतिवाद की ओर झुका, किन्तु दूसरा वर्ग किसी भी राजनीतिक, धार्मिक या साहित्यिक सिद्धान्त को स्वीकार न कर अन्वेषण की ओर उन्मुख हुआ। इस वर्ग के लोगों ने अपनी कविता का नाम प्रयोगवाद रखा। प्रयोगवादियों का ध्येय सभी राजनीतिक वादों से मुक्त रहकर काव्य के विषय और मंडन शिल्प को नित्य नवीन प्रयोगों के आधार पर आधुनिक युग के सामाजिक जीवन के अनुकूल बनाना है।

प्रयोगवादी कवि यह मानकर चलता है कि किसी भी अनुभूति की एक बौद्धिक पृष्ठभूमि होती है और वह पृष्ठभूमि भी काव्यात्मक है। बौद्धिकता भी काव्य का अंग है, क्योंकि वह अनुभूति का जीवित अंश है। किसी भाव का बोध एक बौद्धिक प्रक्रिया है। जो हृदयवादी है वह इस बौद्धिकता का बहिष्कार करके सर्वथा त्याज्य बनाने की चेष्टा करते हैं। प्रयोगवाद इस त्याज्य विभाजन को स्वीकार नहीं करता। प्रयोगवाद की मान्यता है कि प्रत्येक अनुभूति का अर्थ और उसका संदर्भ एक बौद्धिक व्यक्ति की अनुभूति है, इसलिए बौद्धिकता को काव्यानुभूति से पृथक करके नहीं देखा जा सकता है।

काव्य के प्रयोगवाद साहित्यिक चेतना की सजीवता प्रस्तुत करता है। साथ ही वह उस धरातल का निर्माण करता है जहाँ यथार्थ तथा मूल्यों के नए परिप्रेक्ष्य स्पष्ट रूप से प्रस्तुत हो सकें। सजीवता का आशय यही है कि हम अपनी अनुभूतियों के प्रति अधिक से अधिक ईमानदारी का व्यवहार करें। कोई कविता अच्छी या बुरी अपनी ईमानदारी के नाते ही हो पाती हैं। यदि यह ईमानदारी कविता में सुरक्षित है तो उसकी प्रेषणीयता और उसका प्रयोग भी सफल प्रयोग है।

छायावादोत्तर कवियों में ऐसे अनेक कवि हैं जिन्होंने हिन्दी कविता को जीवन के समीप लाने की चेष्टा की। लेकिन ऐसे कवियों में बच्चन का नाम शीर्ष

पर रहेगा। जिस प्रकार प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा साहित्य की प्रवृत्तियों को झटके से मोड़ा और उसे समसामयिक जीवन के एकदम समीप ला दिया उसी प्रकार बच्चन जी ने भी कल्पनाशील भारतीय युवक मन को वास्तविकता के सामने ला खड़ा किया। बच्चन जी ने यह काम बड़ी ही कुशलता से किया किसी कुशल चिकित्सक की भाँति पहले उन्होंने निराश हताश युवा मन को मधु का विकल्प देकर उसकी निराशा हताशा को कम करने का प्रयास किया फिर एक एक कदम आगे बढ़ते हुए यथार्थ की ओर आगे बढ़ते गये। पहले उन्होंने युवा मन के साथ-साथ चलकर उसकी नब्ज टटोली फिर धीरे-धीरे अपनी आवाज को उठाते हुए और युवकोचित भावुकता का स्थान युग समाज की विकृतियों ने ले लिया। उनके पूर्ववती और परवर्ती काव्य में यह आरोह अवरोह इसलिए सम्भव हो सका कि वे जीवन का गान करने वाले कवि रहे हैं।

जीवन के यथातथ्य चित्रण के लिए प्रयोगवादी कवि प्रसिद्ध हैं "मूत्रसिंचित मृत्तिका के धैर्य धन गदहा" या "पदाक्रांत रिरियाता कुत्ता" जैसे चित्रणों की कमी नहीं है। ये चित्रण काव्य में अकारण ही नहीं आए हैं। इन चित्रों के माध्यम से प्रयोगवादी कवि समकालीन जीवन के विशेष पक्षों का उसकी तीव्रता और प्रभाव का बोध कराना चाहते हैं। लेकिन प्रयोगवादियों द्वारा प्रयुक्त ऐसे चित्रण अतिरेक के कारण चौंकाते हैं। जबकि बच्चन जी ने जीवन के यथार्थ सम्बन्धों को प्रत्यक्ष करने के लिए अपने काव्य में इस तरह की भाषा एवं शब्दावली बड़े ही सहज भाव से अपनायी है। उनके काव्य में ऐसे कितने ही अनगढ़, असुंदर और ग्राम्य शब्द हैं जैसे- बैंड बिगुल और झण्डें, चोर-छिछोरा, अंगड़ खंगड, छपक छैया, चिथ-चिरबत्ती आदि प्रयोगवादी शैली के बहुत निकट है। परन्तु इन सबका प्रयोग बहुत ही सहजता से किया गया है जिससे ये पाठक को चौंकाती नहीं बल्कि उसकी संवेदना को छूकर उद्वेलित कर देती है-

"बोया तो बासमती, काटी तो बाजरी
रींधी तो जोंधरी, खाई तो कांकरी
पहेली बूझौ चौधरी।"[1]

---

1. बच्चन, उभरते प्रतिमानों के रूप, बच्चन रचनावली"3, पृ0-355

इस प्रकार की शब्दावलियों के प्रयोगों के जो खतरे हो सकते हैं उसे बच्चन ने भी उठाए हैं। इसीलिए उनके काव्य में गद्यात्मकता और काव्य गुणों से हीन सपाट बयानी भी मिलती है –

पंक से तो हर पंकज उठता है तूने
पंक को भी उठाने का प्रयोग किया
अजब नहीं पंक में बहुत कुछ सन गया ।[1]

या फिर,

कुछ किस्मत के सांड जगत में होते ऐसे
संघर्षो के जुए न जाते जोते ।[2]

परन्तु काव्य में जीवन का अनुपात क्या हो ? इस विषय पर जब विचार होता है तो सपाट कथन भी जीवन का विशेष सम्बन्ध संकेतित करते दृष्टिगत होते हैं। हिन्दी के आधुनिक काव्य में जीवन का अनुपात बढ़ गया है। आज जीवन कविता में बहुत सहज भाव से बिना किसी वर्जना के उतर रहा है। बच्चन की कविता में जीवन के नानावर्णी रूप देखे जा सकते हैं। उनके काव्य में मानव जीवन का जो दौड़ता भागता- छलछलाता और बलैया लेता रूप प्रतिबिम्बित है वह अपने आपमें इतना साफ है कि उसकी वास्तविकता स्वयं सिद्ध है। एक उदाहरण दृष्टव्य है–

चार खूँटे गाड़कर खेमा लगाया
मिल गया जो
पिया खाया, धुँआ छोड़ा
और जो मन में आ गया तो
गीत कोई गुनगुनाया
या कि यों ही बुड़बुड़ाया
पीठ सीधी की

---

1. बच्चन– कटती प्रतिमाओं की आवाज, बच्चन रचनावली–3, पृ0–233

2. बच्चन, चार खेमे चौंसठ खूँटे– बच्चन रचनावली–3, पृ0–487

उठा सामान बाँधा
चल पड़ा कहता हुआ
श्री राम दंडक वन विहारी ।[1]

बच्चन के काव्य में जीवन का जो विशिष्ट अनुपात है वह समसामयिकता का ही तकाजा है। कवि ने इसे बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रयोगवादी शैली में वाणी दी है –

आँख मेरी आज भी मानव नयन की गूढ़तर तह तक उतरती
आज भी अन्याय पर अंगार बनती, अश्रुधारा में उमड़ती ।[2]

कवि कभी-कभी अपने कहने का ढंग बदलना चाहता है। परम्परागत वाणी का माध्यम उसे अपर्याप्त लगने लगता है और वह अभिव्यक्ति की कोई नई तकनीक ढूँढ़ने लगता है –

धन एक
ऋण एक
———————
मिलकर हुआ सुन्ना
कविता एक
अ-कविता एक
———————
मिलकर हुई दो कविताएँ, मुन्ना [3]

कभी-कभी तो संक्षेप में अपनी बात कह देने की लालसा अजीब रंग दिखलाती है–

" 'अ' से 'ज्ञ' तक मैनें पूरी पुस्तक पढ़ ली।"[4]

इस प्रकार हम देखते है कि अन्य काव्य प्रवृत्तियों की तरह प्रयोगवाद की प्रवृत्तियाँ भी बच्चन के काव्य में प्रचुर मात्रा में है। यही कारण है कि बच्चन का

---

1. बच्चन, चार खेमे चौंसठ खूँटे,: बच्चन रचनावली-2, पृ0-484
2. बच्चन, आरती और अंगारे, बच्चन रचनावली-2, पृ0-259
3. बच्चन, बहुत दिन बीते, बच्चन रचनावली-3, पृ0-157

काव्य अब तक अपनी ऊष्मा के साथ जीवित है। स्वयं कवि का मानना है कि बुढ़ापे में आकर ही कवि की लेखनी में यौवन जागता है। इस यौवन के पीछे प्रयोग की तीव्र शक्ति है और इसलिए बच्चन चाहे बृद्ध हो गये हों लेकिन उनकी लेखनी से निकली पंक्तियों में यौवन है। यह यौवन प्रयोग का है जो वृद्ध होना नहीं जानता।

यथार्थवाद :

साहित्य की एक विशिष्ट चिंतन पद्धति जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन के यथार्थ रूप का अंकन करना चाहिए, यथार्थवाद कहलाता है। यह दृष्टिकोंण वस्तुतः आदर्शवाद का विरोधी माना जाता है किन्तु आदर्श उतना ही यथार्थ है जितना कि अन्य कोई यथार्थवादी परिस्थितियाँ। जीवन में अयथार्थ की कल्पना करना दुश्कर है। परन्तु अपने संकुचित दृष्टि में यथार्थवाद जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति ईमानदारी का दावा करते हुए भी प्रायः सदैव मनुष्य की हीनताओं और कुरूपताओं का चित्रण करता है। यथार्थवादी कलाकार जीवन के सुन्दर अंशों को छोड़कर असुंदर अंशों का चित्रण ही अपना मुख्य ध्येय मान लेता है जो कि उसके पूर्वाग्रह के अलावा और कुछ नहीं।

कुछ लोगों ने यथार्थवाद का बड़ा ही भ्रान्तिपूर्ण अर्थ लगाया है। उनके अनुसार समाज में जो जैसा है या हृदय में जैसी बातें उठती हैं, बिना समाज के कल्याण की चिन्ता किये हुए उन्हें यथावत व्यक्त कर दिया जाय। परन्तु यह दृष्टिकोंण ठीक नहीं। यदि साहित्य में ऐसे भावों की अभिव्यक्ति होती रहेगी तो भौतिकता और अनैतिकता के बंधन स्वीकार नहीं होंगे। फलस्वरूप समाज में विश्रृंखलता उत्पन्न हो जायेगी। अतः यथार्थवाद का अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि मानव जो कुछ भी जिस रूप में देखे उसका वही नग्न रूप चित्रित कर दे। मनुष्य अपने जीवन में अनेक ऐसे कार्य करता है जो स्वाभाविक है परन्तु जिसे वह दूसरों के सम्मुख नहीं कर सकता है। अतः जहाँ आदर्शवाद में साधना की विशिष्टता प्रधान रूप से कार्य करती है वहाँ यथार्थवाद में जिज्ञासा और अनुभव की तीव्रता की प्रधानता रहती है। संक्षेप में यथार्थवाद की निम्नलिखित विशेषताएं हो सकती है –

1. जीवन के प्रति यथार्थ, स्वाभाविक और वास्तविक दृष्टिकोंण ।
2. समाज की व्यवस्था की शक्तिशाली प्रतिक्रिया ।
3. वर्णन में वस्तुओं की यथार्थता पर अधिक बल व स्पष्टता।
4. आदर्श की प्राप्ति के लिए प्रयत्न ।

यथार्थवाद में युग तथा जन समूह की सच्ची भावना होती है जो साहित्यकार इस भावना का यथार्थ चित्र अपनी रचना द्वारा प्रस्तुत करने में सफल होता है वही युग का महान साहित्यकार होता है। यथार्थवाद न तो इतिहास है कि किसी घटना की सूची तैयार करता चले और न कैमरा है कि जो भी वस्तु उसके सामने से गुजरे उसका यथातथ्य चित्र उतारता चले। उसने मानव की जुगुप्सा तथा विलासी प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करने के लिए अज्ञेय एवं गोपनीय जघन्य घटनाओं को उपस्थित करने का बीड़ा भी नहीं उठा रखा है।

यथार्थवादी साहित्य के कला पक्ष को लेकर प्रायः लोगों में भ्रम रहता है कि यथार्थ चित्रण के क्षेत्र में कला अपना कोई स्थान नहीं रखती। पर सच तो यह है कि कला के अभाव में यथार्थवादी साहित्य की सृष्टि ही नहीं की जा सकती। यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ सभी देशों के साहित्य में विभिन्न कालों में प्राप्त होती है। वस्तुतः यथार्थवाद सुधारक साहित्य का प्रथम अस्त्र है। किसी भी सामाजिक स्थिति के प्रति विद्रोह करते समय साहित्यकार उसका यथार्थवादी चित्र उपस्थित करता है। कोई भी कलाकार युग यथार्थ से निरपेक्ष नही रह सकता। यहाँ तक कि रस वादी और कला वादी भी नहीं। बच्चन एक समय ऐसे जरूर दिखे कि वह युग यथार्थ से अप्रभावित रह सकते हैं परन्तु इस प्रकार दिखना केवल ऊपरी था। अन्दर से वे इस युग यथार्थ से प्रभावित होकर ही उसी के प्रतिक्रिया स्वरूप रचना कर रहे थे। "आरती और अंगारे" की भूमिका में वे लिखते हैं – "आज जो ऐसी बाते कर रहे हैं उन्हीं के बाप-दादों ने जब मधुशाला निकली थी तो कहा था यह मस्ती का राग अलापने का समय नहीं है, निशा निमंत्रण निकला तो कहा था यह प्रेम के तराने उठाने का युग नहीं और उनके बेटों भतीजों ने "प्रणय पत्रिका" निकलने पर कहा यह बीते युग की बात है।" इससे स्पष्ट है कि कुछ लोगों को बच्चन का काव्य युग यथार्थसे सर्वथा अछूता दिखा था परन्तु वास्तव

में ऐसा नहीं था। ऊपर ऊपर से देखने में ऐसा अवश्य लग रहा था कि बच्चन युग यथार्थ और उसके दबावों से बचे-बचे से रह रहे हों, उनमें वह शक्ति कौशल है और मस्ती है कि वह युग यथाथ से साफ कतराकर निकल जा रहे हैं। यथार्थ को पकड़ बच्चन के सबल व्यक्तित्व पर इतनी ढीली है कि वह उसे रोकने में असमर्थ है।

बच्चन का काव्य और यथार्थ के विवेचन में हमें दो पक्षों में उनके व्यक्तित्व की चर्चा करनी होगी। एक तो कवि और उसका व्यक्तित्व और दूसरा यथार्थ और उसका व्यक्तित्व। सृजन जीवन का संघर्ष है। जिसमें इन दोनों पक्षों कवि और यथार्थ तथा उनके व्यक्तित्वों में टक्कर होती है। यथार्थ यदि कटु गरल है तो कवि शिव। सच्चा और समर्थ कवि युग गरल को बिना जाने पहचाने, भोगे और यथार्थ को अभिव्यक्त किये छोड़ेगा नहीं। लेकिन यथार्थ भी ऐसा है कि वह कवि को नीलकण्ठ बनाकर छोड़ता है।

जब बच्चन ने अपने कवि जीवन का प्रारम्भ किया तब देश पराधीन था और स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन चल रहे थे। भारत की परिस्थितियों में इस समय यथार्थ उग्र और उत्कट हो चुका था। आगे जाकर ऐसी घटनाएं हुई जो यथार्थ के तेवर को स्पष्ट करती हैं। एक तरफ प्रगतिशील आन्दोलन की शुरूआत दूसरी ओर गोदान का प्रकाशन। ये दोनों ही बातें स्पष्ट करती हैं कि भारतीय परिस्थितियों में यथार्थ का रंग रूप बदल रहा है। देश और जनता पर इसका प्रभाव पड़ रहा था। तत्कालीन राजनीतिक आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न कुंठा का चित्रण "मधुशाला" "मधुबाला" और "मधुकलश" में हुआ है। इनके गीतों में बार-बार देह की नश्वरता और जीवन की क्षण भंगुरता का उल्लेख शायद कवि की उस मन:स्थिति का परिचायक है जो शायद क्रान्तिकारियों को फाँसी का फंदा चूमते और काले पानी की सजाएं भोगते देखकर बनी होगी। क्रान्ति की इतनी बड़ी लहर जिसमें सारा देश हिचकोले खा रहा था। गोरे शासकों का दमनचक्र से सिमटकर जनता कुंठाग्रस्त थी। शायद इसी घटना ने कवि को नियतिवादी बनाया। लेकिन यह सारी कुंठा कवि को हताश नहीं करती। हाला प्याला के प्रतीकों के सहारे

वह सहज ही सा़ी निराशा को मस्ती में रूपान्तरित कर लेता है और अकुंठ भाव से मस्ती के गीत गाता है।

सन् 1935–36 के बाद मानवीय इतिहास की सबसे भीषण घटना द्वितीय विश्वयुद्ध के रूप में घटी जिसने सारे संसार को झकझोर दिया। 1940 से प्रयोगवाद, नयी कविता आदि ने छायावादी कल्पना और गीत रचना के कुहासे को तोड़ दिया परन्तु इतना भी नहीं कि "सतरंगिनी" जैसी कृति न रची जा सके। सतरंगिनी में जगह–जगह यथार्थ की काली छाया दृष्टव्य है–

"तिमिर के राज का ऐसा कठिन आतंक छाया है
उठा जो शीश सकते थे उन्होंने सिर झुकाया है।"[1]

इन कठिन परिस्थितियों में भी विद्रोह की ज्वाला जगाए निर्माण की आशा लिए बच्चन दृष्टिगत होते हैं। तात्पर्य यह कि यथार्थ अभी इतना निर्भय और त्रासकारी नहीं हुआ था कि बच्चन का उत्साह और संकल्प उसके समक्ष घुटने टेक दे।

किन्तु आजादी मिलने के बाद हमारे विश्वास धीरे–धीरे पंगु होते गये और इस प्रकार यथार्थ हमार लिए अधिक कष्टकर और त्रासदायी हो गया। आजादी के बाद का पहला दशक हमारे स्वप्न भंग का समय है। ऐसी परिस्थितियों में यदि छायावादोत्तर गीत कविता का दम घुटना शुरू हो गया हो तो यह स्वाभाविक है। इस समय तक आते –आते बच्चन पर यथार्थ की पकड़ इतनी कड़ी और मजबूत हो गयी कि उन्हें कहना पड़ा –

"और छाती वज्र करके सत्य तीखा आज यह
स्वीकार मैंने कर लिया है स्वप्न मेरे
ध्वस्त सारे हो गये हैं।"[2]

---

1. बच्चन, सतरंगिनी, बच्चन रचनावली–1, पृ0–334
2. बच्चन, त्रिभंगिमा, बच्चन रचनावली–2, पृ0–420

और –

"तो निगलना ही पड़ेगा आँख की यह
सुर सुतीक्ष्ण यथार्थ दारूण ।"[1]

आजादी के बाद यथार्थ के बदले हुए रूप और उसके प्रभाव को ठीक–ठीक ये पंक्तियाँ व्यंजित करती हैं अब यथार्थ निपट नंगे रूप में बच्चन के सामने आ खड़ा हुआ है–

पुराने आदर्शों पर नया युग हँसता है, जो था कभी मंहगा मूल्यवान
माना जाता, लगता कितना नकली, कितना सस्ता है।"[2]

और जब बच्चन का सृजन ही विद्रोही हो जाए तो–

सृजन आज का विद्रोही है जिस साँचों में ढलकर
वह बाहर आता है उसको तोड़ दिया करता है
सत्य आज का मरण–वरण कर बारंबार जिया करता है।"[3]

आजादी के पूर्व भारतीय जन–जीवन पराधीन था विपन्न था, पर ओज रहित नहीं था। दमन, युद्ध, बेकारी, महामारी और मंहगाई के दुष्परिणामों को झेलते हुए भी उसमें लड़ने वाली जाति का उत्साह था, उम्मीद और आकांक्षा थी। लेकिन आजादी मिलने के बाद धीरे–धीरे उसकी आकांक्षाएं मरने लगी, निराशा और असफलता का अंधकार छाने लगा, उसके जीवन का ओज समाप्त हो गया। बच्चन विवश हो उठे और कह बैठे–

"अंधकार घन अंधकार है पथ दुर्गम है,
खांई खंदक है, पहाड़ है, चोर छिछोर उठाईगीर उचक्के
कितने साज आज दल–बल सक्रिय है सुसंगठित है।"[4]

---

1. बच्चन, त्रिभंगिमा; बच्चन रचनावली–2, पृ0–422
2. बच्चन, दो चट्टाने, बच्चन रचनावली–3, पृ0–62
3. वही, पृ0– 60
4. बच्चन, त्रिभंगिमा, बच्चन रचनावली–2, पृ0–448

एक ओर लम्बे आदर्श और सिद्धान्त दूसरी ओर बेकारी भूख, अशिक्षा के कटु अनुभवों ने जनता के मन के ओज को और संकल्प को समाप्त कर दिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि आजादी के बाद बच्चन की मनोदशा ऐसी हो गयी थी यथार्थ उनके लिए दिनोदिन दारूण और चुभने वाला प्रतीत होने लगा। "दो चट्टाने" तक आते-आते उनकी कविता इतनी यथार्थ मूलक हो गयी कि उस पर यथार्थ के विशिष्ट व्यक्तित्व की निश्चित छाप पड़ जाती है।

अन्ततः यहाँ आकर कवि ने वह क्षमता अपने अन्दर विकसित कर ली कि अपने परिवेश से बेखबर नहीं रह पाता और वह उन सटीक उपमानों को चुनता है जो उसके अपने जीवन के अंग है। कहीं पर क्रूर राजनीति पर चुटीले व्यंग्य भी है जो हमारी सभ्यता के आवरण को हटाकर स्वदर्शन कराने में समर्थ है। कवि ज्यों - ज्यों परिष्कृत होता गया उसने यथार्थ को समझ कर प्रयुक्त करना छोड़ दिया अब आने अनजाने में ही ढला हुआ यथार्थ बच्चन की परिवेश गत ईमानदारी का प्रमाण बन गया है।

<u>आदर्शवाद</u> :

आदर्शवाद हिन्दी में "आइडियालिज्म" के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। किन्तु वास्तव में आइडलिज्म का अर्थ आदर्शवाद मात्र नहीं है। यह शब्द आइडिया से सम्बन्धित है। जिसका मूल अर्थ है विचार । इस कारण आदर्शवाद किसी सीमा तक विचार वाद भी है। सामान्यतया आदर्शवाद और आदर्शवादी शब्दों का उपयोग उनकी दार्शनिक अभिव्यंजना से नितांत भिन्न अर्थ में होता है। सामान्य अर्थ के अनुसार आदर्शवादी वह व्यक्ति है जो उच्च नैतिक आध्यात्मिक और सौंदर्यपरक प्रतिमानों - आदर्शो को स्वीकार करके अपने तथा समाज के जीवन को उनके अनुसार ढालने का प्रयास करे। वह व्यक्ति भी आदर्शवादी माना जाता है जो किसी समाज सम्प्रदाय या वर्ग विशेष की प्रस्तुत दशा से असंतुष्ट होकर उसके लिए किसी नए आदर्श की कल्पना करता है।

साहित्य में आदर्श शब्द का प्रयोग दर्शन अथवा राजनीति की भाँति किसी रूढ़िगत अर्थ में नहीं किया जाता। साहित्य का आदर्शवाद मानव जीवन के आंतरिक पक्ष पर

जोर देता है। जीवन के दो पक्ष हैं – आंतरिक और वाह्य। आंतरिक पक्ष में मानसिक सुख, प्रसन्नता, परितोष आनंद आदि आ जाते हैं। वाह्य पक्ष में ऐश्वर्य वैभव तथा भौतिक उन्नति का स्थान है। आदर्शवादी साहित्यकार का विश्वास है कि मनुष्य जब तक आन्तरिक सुख प्राप्त नहीं करता उसे वास्तविक आनन्द की उपलब्धि नहीं हो सकती। मानव की चेतना तब तक भटकती रहेगी जब तक वह शाश्वत चिरन्तन सत्य अथवा आनन्द प्राप्त नहीं कर लेता। इस प्रकार आदर्शवाद मानव जीवन की आन्तरिक व्याख्या करता है। वह उन मानव मूल्यों को ग्रहण करता है जो कल्याणकारी है, शुभ है, एवं सर्जनात्मक है। आदर्श काव्य में आनन्द और उपदेश का एक सुन्दर समन्वय होता है।

आधुनिक हिन्दी कविता की मूल चिन्ता धारा आदर्शवाद के क्रोड़ में परिचालित हुई है जिसने कि सूक्ष्मतर मूल्यों को आध्यात्मपरक दर्शन की भावभूमि दी। हिन्दी साहित्य का अधिकांश आरम्भिक स्वरूप आदर्शवादी है, क्योंकि वह परम्परा विमुक्त नहीं है। वीर गाथा काल में जो साहित्य सृष्टि हुई थी उसमें यथार्थ का अंश है परन्तु भक्तिकाल का अधिकांश काव्य आदर्शवादी ही कहा जायेगा क्योंकि उसमें आध्यात्मिकता का पुट है। तुलसी का आदर्श मयादा समन्वित आदर्शवाद है। उसमें सहज समर्पण का भाव है। सूरदास का आदर्शवाद अधिक स्वच्छंद प्रकृति का है। कबीर दास यद्यपि यथार्थ से अनुप्राणित है फिर भी उनकी दृष्टि आदर्शवादी ही है। आधुनिक काल में छायावाद की जीवन दृष्टि आदर्शवादी ही है उसमें अध्यात्म की अपेक्षा सौन्दर्य, दर्शन, राष्ट्रीयता आदि मुख्य तत्व प्रबल है। प्रसाद में छायावादी आदर्श भावना का चरमोत्कर्ष है। निराला और प्रेमचन्द में यथार्थवाद आग्रह अधिक है तथापि उनकी जीवन दृष्टि आदर्शवादी ही है। संक्षेप में आदर्शवाद सामाजिक जीवन की मान्यताओं के निर्धारित स्वरूप का समावेश कराके उस पर दूसरों के चलने के लिए मार्ग प्रस्तुत करता है।

प्रत्येक देश की परिस्थितियां अपना आदर्श स्वयं गढ़ लेती है। संसार के सभी प्रमुख देशों का साहित्य इसका प्रमाण है। परन्तु मनुष्य के लिए वही आदर्श ग्राह्य है जिसकी नीव यथार्थ पर टिकी हो। बच्चन जी ने इसी आदर्श को समेटने की चेष्टा की है। वैसे इससे बच पाना किसी भी साहित्यकार के लिए सम्भव नहीं है। कवि

जब तक किसी वस्तु को आदर्श न मान ले तब तक वह समाज को सीख दे ही नहीं सकता –

इसीलिए फिर आज सूरज चाँद
पृथ्वी पवन को आकाश को साखी बनाकर
तुम करो संक्षिप्त पर गम्भीर, दृढ़ भीष्म प्रतिज्ञा
देश जन गण मन समाए राम से।[1]

बच्चन का जीवन शुरू से ही आदर्शो की छत्रछाया में पला बढ़ा है। उनके जीवन का परिवेश तुलसी के रामचरित मानस में सिमटा हुआ है। यदि यह कह दिया जाय कि तुलसी का जो आदर्श था वही बच्चन का आदर्श बन चुका है तो अत्युक्ति न होगी। क्योंकि उनके लिए तुलसी का राम ही एक आदर्श पुरूष है। इसीलिए तो वह जन गण मन के मन में राम के आदर्शो को पूर्णतः समा देना चाहते हैं।

बच्चन का आदर्श सिर्फ राम तक ही सीमित हो ऐसी बात नहीं है। बच्चन का कवि अपने युग के परिवेश को भी देखता है और उससे छिपे हुए आदर्श को अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। यहाँ बच्चन के एक युद्ध चौकी पर डटे देश के हित जवान के आदर्श की अद्वितीयता दृष्टव्य है–

"उसने अपने रक्त की अन्तिम बूँदो तक अपनी नसो के अन्तिम स्पंदन तक
अपनी छाती की अन्तिम धड़कन तक, अपनी चौकी पर डटे रहकर
सारे देश के अपमान सारा जाति की लज्जा का मूल्य चुकाया।"[2]

हमारा देश सदैव आदर्शो पर चला है। यदि कभी भटक भी गया है तो समय रहते संभल भी गया है। उसने अपने स्वाभिमान को कभी चोट नहीं पहुँचने दी है। बच्चन ने भी हमेशा अपने स्वाभिमान की रक्षा की है जो कि चिता निकट तक भी अपने पैरों पर चलकर जाना चाहता है। यह आदर्श ही था जिसने बच्चन को कभी टूटने नहीं दिया हलाँकि उनके जीवन में ऐसे कई प्रसंग आये जब वे टूट

---

1. बच्चन, दो चट्टानें, बच्चन रचनावली–3, पृ0–27
2. बच्चन, दो चट्टाने,: बच्चन रचनावली–3, पृ0–130

सकते थे परन्तु उन्होंने अपने जीवन में हर तूफान से संघर्ष किया, कभी हार नहीं मानी और अपने आदर्शो पर अटल रहे। क्योंकि उन्हें अपने रघुराई पर पूर्ण विश्वास और आस्था है और इसी आदर्शवादी आस्था को लेकर पूर्ण आश्वस्त है–

"आत्म-सम्मान, आत्म रक्षा के लिए करते सतत संघर्ष,
लड़ते आत्म-वानों की लड़ाई नभ-विचुंबित हो भले ही,
हो भले ही धराशायी। जयतु रघुराई, जयतु श्री राम रघुराई ।[1]

आज जब आदर्शो को भुलाया जा रहा है। आदर्श की खिल्ली उड़ाई जा रही है। मानव अपनी प्राचीन संस्कृति एवं एवं उसके आदर्शो को दिन प्रतिदिन भूलता जा रहा है। ऐसे समय बच्चन अपने काव्य के माध्यम से युग में फिर वही प्राचीन आदर्श भक्त हनुमान के माध्यम से स्थापित करना चाहते हैं। उन्हें अपने देश पर पूर्ण विश्वास है कि वह एक न एक दिन अवश्य उठेगा–

मुझको है विश्वास किसी दिन घायल हिन्दुस्तान उठेगा
दबी हुई डुबकी बैठी है कलरवकारी चार दिशाएं,
उठी हुई ठिठकी सी लगती नभ की चिर गतिमान हवाएं
अन्तर के आनन के ऊपर एक मुर्दनी सी छायी है
एक उदासी में डूबे है तृण तरूवर पल्लव लतिकाएं
आँधी के पहले देखा है कभी प्रकृति का निश्चल चेहरा ?
इस निश्चलता के अन्दर से ही भीषण तूफान उठेगा।"[2]

बच्चन तो उन्हीं के साथ है जो कि पर्वतों से टक्कर लेते हैं और जो पथ के बाधाओं को चुनौती दे सकने में समर्थ हैं और जिनके आदर्शो को कोई भी शक्ति जंजीरों से बांध नहीं सकती–

"जो अपने कंधों से पर्वत से बढ़ टक्कर लेते हैं
पथ की बाधाओं को जिनके पाँव चुनौती देते हैं
जिनको बाँध नहीं सकती लोहे की बेड़ी जंजीर
मैं हूँ उनके साथ खड़ी जो सीधी रखते अपनी रीढ़ ।"[3]

---

1. बच्चन, दो चट्टानें,: बच्चन रचनावली–3, पृ0–96

2. बच्चन, धार के इधर–उधर, :बच्चन रचनावली–2, पृ0–149

परिस्थितियाँ चाहे कितनी भी क्यों न बिगड़ती हो किन्तु उनमें विद्रोह की ज्वाला जगाए, निर्माण की आशा जगाए वह उन सभी भूलों को सुधारने की स्थिति में खड़ा है–

"कल सुधारूँगा हुई संसार में जो भूल
कल उठाऊँगा भुजा अन्याय के प्रतिकूल।"[1]

इस प्रकार बच्चन चाहे स्वयं दुखों से जूझ रहे हो, टूट रहे हों पर वह सभी को सतर्क रहने की और आदर्श के स्थापना की सीख देते हैं। आदर्श ने इन स्वरों में वह शक्ति है जो सभी को अपने आपमें सुधार लाने का अमर संदेश देती है। बच्चन इसी देश के निवासी हैं। जहाँ युगों से सुधार के स्वर गूँजते रहे हैं हीं इन स्वरों में एक स्वर और जुड़ जाता है बच्चन का।

व्यक्तिवाद :

प्राचीनकाल से आज तक के रचित काव्य में किसी न किसी रूप में व्यक्तिवादिता मिलती है। कवि इतिहास या शास्त्र से सम्बन्धित कथा का वर्णन करते हुए भी अपने सम्बन्ध में यत्र तत्र कतिपय संकेत करते ही रहे हैं। मुक्तक काव्य के विशिष्ट प्रसंगों में सर्वसाधारण की बात कहते हुए भी वैयक्तिक विवरणों के संकेत प्राप्त हो जाते हैं जिनमें विविध मनोदशाओं का चित्रण होता है। यह सब कुछ कवि की आत्मानुभूति से प्रेरित होता है। सूर तुलसी, कबीर, मीरा आदि के गीति काव्यों में आत्म विवेचन के पद नैतिक आदर्श एवं ईश्वरोन्मुख प्रेम भाव को लिए हुए मिलते हैं। यही वैयक्तिक तत्व छायावादोत्तर काल की कविता में बौद्धिक एवं भौतिक प्रभाव के फलस्वरूप अधिक जागरूक होने लगा। अब आत्म चेतना और आत्म शिवास "स्व" केन्द्रित हो गया जिसके कारण अतिशय आत्मकेन्द्रित कविता का जन्म हुआ। छायावादी कवि ने अपने व्यक्तितत्व को प्रच्छन्न रखते हुए प्रतीकों के माध्यम से स्वानुभूतियों की अभिव्यक्ति की किन्तु अतिशय आत्मपरक कविताओं में ऐहिकता और प्रत्यक्षता को मुखर किया गया। जीवन की विषमताओं, अर्थ एवं कामजन्य कुण्ठाओं तथा मानसिक अव्यवस्था

---

1. बच्चन, सतरंगिनी, बच्चन रचनावली–1, पृ0– 358

ने सामाजिक रीति-नीतियों एवं रूढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह का उद्घोष करने के लिए कवि को प्रेरित किया।

भारतीय आदर्शवाद और भौतिकवादी चिंता धारा के मध्य एक नई चिन्ता धारा विकसित हुई जिसे वैयक्तिक कविता कहते हैं। इसमें कवियों ने निजी सुख-दुख की अभिव्यक्ति करके अपने जीवन संघर्ष का उद्घोष ओजपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत किया। इन कविताओं में न तो आध्यात्मिक या आदर्शवादी परम्परा का मोह है न किसी प्रकार के सामाजिक कर्तव्य का ध्यान, ये तो मन में समय-समय पर उठने वाली तरंगों की सरल अभिव्यक्ति है जो परिस्थिति जन्य हर्ष विषाद की भावनाओं का मुखरित रूप है।

डा0 नगेन्द्र ने व्यक्तिवादी काव्य की चिन्ता धारा का विश्लेषण संक्षेप में इस प्रकार किया है-

"1. इसका आधारभूत दर्शन व्यक्तिवाद है।

2. इसका आधार अद्वैतवाद या विश्वात्मावाद का सूक्ष्म आध्यात्मिक सिद्धान्त नहीं है।

3. इसका आधार मानव के भौतिक अस्तित्व की स्वीकृति है अतएव मानव के ऐहिक संघर्ष के जय-पराजय से ही इसकी उद्भूति हुई है।

4. इसमें संदेहवाद और भाग्यवाद जैसे नकारात्मक जीवन दर्शनों के और मानववाद के अन्तर सूत्र विद्यमान हैं। नकारात्मक जीवन दर्शनों की चुनौती और उपभोग वृत्ति और मानववाद की मानव सहानुभूति तथा मानव मुक्ति के तत्वों से इसके कलेवर का निर्माण हुआ है।

5. इसका विकास अभावात्मकता से भावात्मकता की ओर होता गया है।

6. जीवन के सहज संघर्ष उद्भूत होने के कारण इस जीवन दर्शन का विकास अत्यन्त स्वाभाविक रीति से सिद्धान्तों की रगड़ से हुआ है, अतएव अधिक स्वस्थ और व्यवस्थित न होते हुए भी इसमें एक सहज आकर्षण है।"[1]

---

जब यह धूमिल संसार और जीवन अधिक मूर्त अनुभूत होने लगा और छायावाद का अप्रत्यक्ष एवं सूक्ष्म व्यक्तिवाद प्रत्यक्ष और स्थूल की महत्व स्वीकृति का आग्रह करने लगा तब धर्म, राज्य, समाज, देश की भावना के नीचे दबे हुए व्यक्ति का अहं–जागरूक होकर अपने सुख दुख को अपनी कुंठा को सबसे अधिक महत्व देने लगा और साहित्य में उनकी अभिव्यक्ति की मांग करने लगा। इस मांग को पूर्ण साहस पूर्वक बच्चन ने पूरा किया और हमारी पीढ़ी का तरूण समाज अपने हर्ष–विषाद को इस समवयस्क कवि के गीतों में मुखरित पाकर आत्माभिव्यक्ति से झूम उठा।[1]

बच्चन के प्रारम्भिक जीवन में संघर्षरत युवक की करूण व्यथा हमें "मधुशाला" "मधुबाला" और "मधुकलश" में मिलती है। इससे बच्चन को विस्मरण की मनोवृत्ति से अभिभूत कर और आध्यात्मिक क्लांति से मुक्ति पाने के लिए हाला का आह्वान किया। बच्चन की यह शैली भोगवाद की प्रतीक अवश्य है किन्तु उमर खैयाम की मदिरा और बच्चन की मदिरा में बड़ा अन्तर है। उमर खैयाम जीवन की क्षणभंगुरता से निराश एवं पराजित मन को अपने क्षणवादी सुखवादी दर्शन की मादक उत्तेजना में भुलाए रखना चाहते हैं। परन्तु बच्चन की मदिरा दुख को भुलाने के लिए नहीं वह तो शाश्वत जीवन सौन्दर्य एवं शाश्वत प्राण चेतना शक्ति का सजीव प्रतीक है। इस प्रकार बच्चन की हाला ऐसे भोगवाद का प्रतीक है जिसका मूल आधार आध्यात्मिक विद्रोह है। इसमें संदेह की सक्रिय शक्ति है, विश्वास की जड़ निष्क्रियता नहीं। परिस्थितियों से क्लांत युवक कवि बच्चन ने समाज को यही तीखी खुराक देकर उसमें उत्तेजना पैदा करने का प्रयत्न किया।

बच्चन की कविताओं में सूक्ष्मता, कल्पना की ललित क्रीड़ा और बौद्धिक परिवेश में अपने अनुभूत तत्वों का नियोजन अमूर्त तत्वों के द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया है वे तो जीवन के मनोवेगों में संवेदनशीलता को स्पर्श करते हुए हमारे हृदय के निकट तक दौड़ आते हैं। उनकी व्यक्ति चेतना का सहज धरातल बेदना के गीत, शंका विषाद और निराशा के गरल को अमृत मय तक ले जाता है। इसीलिए उनका व्यक्तिवाद आध्यात्मिक नहीं भौतिक है। उनका नियतिवाद निराशावाद से दूर आशावाद तक ले जाता है और कर्मवाद का संदेश देता है –

"जो बीत गई सो बात गयी, जीवन में एक सितारा था
माना वह बेहद प्यारा था, वह डूब गया तो डूब गया।"[1]

स्वयं बच्चन का विचार है कि "बौद्धिक रचनाएं सृजनात्मक नहीं होतीं, सृजन का तो अर्थ ही है आत्मदान। जिन रचनाओं में आत्मदान का अंश जितना अधिक रहता है वे उतनी ही अधिक रचनात्मक होती है। बुद्धि से लिखी जाने वाली रचनाएं कभी श्रेष्ठ साहित्य के अन्तर्गत वर्गीकृत नहीं की जा सकती।"[2]

सामाजिक और आर्थिक वैषम्य के जिस क्रोड़ में बच्चन का विकास हुआ उसमें स्वाभाविक रूप से विद्रोह का उत्स फूटता हुआ दिखाई देता है। शिक्षित युवक भावी जीवन को जिस ललक से उच्चतम शिखर तक ले जाने को आतुर उत्सुक हुआ उसे परिस्थितियों ने झकझोर दिया। फलस्वरूप उसके मन में वाह्य जीवन सघर्ष की टकराहट से विद्रोह का भाव पैदा हुआ। डा0 नगेन्द्र ने बच्चन की विद्रोही भावना को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया है–

1. व्यक्ति का व्यक्ति के प्रति विद्रोह
2. व्यक्ति का संस्था के प्रति विद्रोह
3. व्यक्ति का नियति के प्रति विद्रोह
4. व्यक्ति मानव का ईश्वर के प्रति विद्रोह

कुछ उदाहरण दृष्टव्य है – व्यक्ति का नियति के प्रति विद्रोह इन शब्दों में व्यक्त हुआ है –

क्षत शीश मगर नत शीश नहीं, बनकर अदृश्य मेरा दुश्मन
करता है मुझ पर वार सघन, लड़ लेने को मेरी हवसें
मेरे उर के बीच रही। क्षत शीश मगर नतशीश नहीं।[3]

---

1 बच्चन– सतरंगिनी – बच्चन रचनावली–1, पृ0–343
2. बच्चन, अभिनव सोपान – (भूमिका), पृ0–19
3. बच्चन: एकान्त संगीत: बच्चन रचनावली–1, पृ0–238

इसी प्रकार व्यक्ति का ईश्वर के प्रति विद्रोह निम्न शब्दों में व्यक्त हुआ है–

प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर, युद्ध क्षेत्र में दिखला भुज बल
रहकर अविजित, अविचल, प्रतिपल, मनुज पराजय के स्मारक है
मठ, मस्जिद, गिरजाघर ।"[1]

जीवन की मौलिक भावनाओं का व्यक्तिगत रूप से प्रबल संवेदन करते हुए उन्हीं के अनुरूप प्रकृति अथवा जीवन के व्यापक सरल सत्यों द्वारा उनका साधारणीकरण करना बच्चन की काव्य की प्रमुख विशेषता है। यही उनके व्यापक प्रभाव का मूल कारण है। जीवन के प्रति उनकी बौद्धिक पतिक्रिया सदैव सीधी और प्रत्यक्ष रही है।

बच्चन की कविता एकांत आत्मगत कविता है और उसका मुख्य विषय है, मध्यवर्गीय जीवन के घात प्रतिघात। भौतिक घात प्रतिघात से उत्तेजित जीवन की मूलधारा बच्चन का प्रेरणा स्रोत है। यही कारण है कि बच्चन की लोकप्रियता व्यक्तिवादी कवियों में सर्वाधिक है और इसीलिए बच्चन अपने समय की आवाज में बहुत ऊँचे रहे हैं। व्यक्तिवादी कविता की जिस भाव भूमि को बच्चन ने छुआ वह अपने समसामयिक अन्य क्रान्तिकारी की अपेक्षा अधिक तलस्पर्शी और रागात्मक है।

संक्षेप में बच्चन का काव्य, जो "हालावाद" के रूप में सामने आया, के मूल में फारसी प्रभाव या सूफी दर्शन न होकर फिट्जेराल्ड का अंग्रेजी अनुवाद रूबाइयत उमर खैयाम था। वास्तव में तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थिति निराशाजनक थी देश कुंठा ग्रस्त था ऐसे में "रूबाइयत उमर खैयाम" ने हालावादी काव्य के विकास को उपयुक्त भूमि प्रदान की। बच्चन भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहे। उन्हें खैयाम का जीवन दर्शन अत्यन्त हृदयस्पर्शी लगा और उन्होंने प्याला, हाला, आदि प्रतीकों को अपना कर सामाजिक, धार्मिक, विषमताओं पर बड़ी तीखी टिप्पणियाँ कीं। छायावाद से भिन्न तेवर, भिन्न अभिव्यक्ति के कारण इसका नामकरण हालावाद किया गया वस्तुतः यह किसी वाद की स्थापना के लिए नहीं लिखा गया। स्वभाव से विद्रोही रहे बच्चन के काव्य में स्वच्छंदतावाद की प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। स्वच्छंदतावाद का मूल मंत्र है

---

1. **बच्चन:** एकान्त **संगीत: बच्चन** रचनावली–1, पृ0– 254

कोई बन्धन न स्वीकार करना। बच्चन अपने जीवन में तो स्वच्छंद रहे ही हैं काव्य में भी उन्होंने सभी बन्धनों को तोड़कर फेंक देने का आग्रह किया है उनका स्पष्ट कहना है कि मन्दिर–मस्जिद रूपी बंधनों को काट फेंको। प्रगतिवाद के गुण यत्र–तत्र उनकी रचनाओं में जीवन की सच्चाइयों के रूप में सामने आये हैं तो जीवन के यथार्थ को प्रत्यक्ष करने के लिए सपाटबयानी की हद तक गये हैं और इस प्रकार के चित्रण में अभिव्यक्ति के जो खतरे होते हैं उससे भी नहीं डरे। अपने आदर्शों पर अटल रहते हुए उन्होंने युग का गरलपान भी किया। यह आदर्श ही था जिसने कभी बच्चन को टूटने नहीं दिया। चूँकि बच्चन स्वयं के जीवानानुभूतियों से प्रभाव ग्रहण कर काव्य रचना की है इसलिए उनके काव्य में वैयक्तिकता सर्वत्र लक्षित होती है।

****

# अध्याय – चतुर्थ

## प्रेम व्यंजना : वैचारिक विवेचन

प्रेम मानव के अन्तर–जगत की व्यापक सत्ता है। मानव जीवन की नाना अवस्थाओं और स्थितियों में उसके नाना रूप अभिव्यक्ति के लिए आकुल रहते हैं। प्रेम के विषय में मानव मन विवश है। बच्चन की प्रेम सम्बन्धी कविता का अनुशीलन एवं मानव जीवन की नाना अवस्थाओं, अनुभूतियों का साक्षात्कार करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रेम का वास्तविक स्वरूप क्या है ? प्रेम से आशय क्या है ? आदि प्रश्नों की जानकारी प्राप्त की जाय। इस अध्याय में प्रेम के व्युत्पत्ति, अर्थ एवं आशय का विश्लेषण किया गया है साथ ही प्रेम का मूल आधार नारी का बच्चन के काव्य में क्या महत्व है। नारी उनके काव्य सृजन को किस प्रकार प्रभावित करती है यह समझने का प्रयास किया है।

### व्युत्पत्ति :

प्रेम शब्द का प्रयोग प्राचीनतम भारतीय साहित्य ऋग्वेद में नहीं पाया जाता। हाँ प्रिय शब्द अवश्य मिलता है। प्रेम शब्द आगे चलकर पुराण इतिहास काल में श्रीमद् भागवत पुराण में एवं नारद भक्ति सूत्र आदि भक्ति प्रधान ग्रन्थों में मिलने लगता है।

प्रेम भाव वाचक संज्ञा शब्द है। यह शब्द संस्कृत में नपुंसक लिंग तथा हिन्दी में दोनों लिंगों में प्रयुक्त होता है। प्रसिद्ध वाचस्पति कोष में इसकी व्युत्पत्ति प्रिय शब्द से की गयी है यथा प्रियस्य भावः इमनिच प्रत्ययः प्रादेशः"।[1] प्रिय 'प्र' प्रकृति तथा भावार्थक 'इमन्' प्रत्यय से प्रेमन् शब्द निष्पन्न हुआ, अतः प्रेमन का अर्थ हुआ प्रियता, प्रिय का भाव या प्रिय होना।

'प्रेमन' शब्द की व्युत्पत्ति 'प्री' (अर्थात् प्रसन्न करना या आनन्दित होना) धातु से 'मनिन् '(मन्) प्रत्यय जोड़कर भी हो सकती है। इस शब्द का लिंग नपुंसक होगा।

प्रेम शब्द की एक और व्युत्पत्ति व्याकरणानुसार हो सकती है। 'प्रीज प्रीतौ' धातु से उणादि सूत्र 'सर्व धातुभ्यः' से मनिन् प्रत्यय करके 'प्रेम' शब्द निष्पन्न

हुआ है।[1]

इस प्रकार व्युत्पत्ति लब्ध प्रेम का अर्थ हुआ- जो प्रीति देता हो, अर्थात् अनन्त तृप्ति प्रदान करता हो।

**शब्दार्थ :**

प्रेम शब्द अत्यन्त व्यापक शब्द है जो इसके विविध अर्थों की व्याप्ति द्वारा विदित होता है। इसके शब्दार्थ से ही इसकी व्यापक परिधि अथवा विशाल भावना का बोध होता है। विभिन्न कोषकारों ने इस शब्द को अनेक सूक्ष्म भावनाओं का वाहक बताया है – वाचस्पत्य कोषकार ने 'सौहार्द स्नेहे हर्षे[2] कहकर इसकी व्यापक भावना का दिग्दर्शन किया है। इसी प्रकार अमर कोषकार ने 'प्रेमा ना प्रियता हार्द प्रेम स्नेहोऽथ दोहदम्[3] कहा है। भारतीय कोषकार आप्टे ने इसे अनेक सूक्ष्म भावनाओं का वाहक बताते हुए कहा है कि – " Love, affection, favour, kindness, kind or tender regard, sport part time, joy, delight, gladness."[4]

पाश्चात्य कोषकारों ने भी प्रेम की यही विशाल भावना दर्शायी है और उसे स्थूल इन्द्रियों तक ही सीमित नहीं रखा है अपितु उसे मन के सूक्ष्म व उदात्त स्तरों तक उठाया है।

"Love affection, kindness, tender regard, favour, predilection fondress."[5] इसी प्रकार आक्सफोर्ड डिक्शनरी में Love शब्द का अर्थ है – " Warm kind feeling fondness, affectionate and tender devotion."[6] "Warm kind feeling between two persons sexual passion or desire."[7]

---

1. रामेश्वर खंडेलवाल– आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ0–87
2. वाचस्पत्य कोष, पृ0–4540
3. अमरकोष, प्रथम काण्डम्
4. आप्टे– संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृ0–380

इस प्रकार कोषकारों ने प्रेम शब्द का अर्थ प्रतिपादित किया है और वे इस बात पर एक मत हैं कि प्रेम में आत्मीयता मैत्री, स्नेह, श्रृद्धा, कोमलता, मृदुता के साथ–साथ वासना का भी स्थान है। कोषकारों के अर्थो का आधार प्रायः व्याकरणात् व्युत्पत्ति व साहित्यगत प्रयोग आदि होते हैं, अतः वे पूर्ण प्रमाणिक होते हैं। इसके अतिरिक्त, कवियों, भक्तों, आलोचकों द्वारा भी अनुभव व अध्ययन के बल पर शब्दों के वास्तविक अर्थो की स्थापना होती है।

**विवेचन :**

प्रेम का विवेचन दो आधारों पर किया जा सकता है–

(1) आत्मा की दृष्टि से –जिसके अनुसार प्रेम शाश्वत (नित्य) आत्मा का धर्म है।

(2) देह व चित्त की दृष्टि से, जिसके अनुसार प्रेम केवल चित्त या प्रकृति का ही धर्म है।

आत्मिक आधार पर की हुई प्रेम की आध्यात्मिक व्याख्या ही पूर्ण और संतोषजनक है। आत्मा के आधार में चित्त व देह के समस्त क्रियाकलाप समाहित हो जाते हैं, जबकि चित्त व देह के आधार पर प्रस्तुत व्याख्या में आत्म तत्व अछूता रह जाता है।

आत्मा निराकार रूप में अपने में सब शक्तियाँ समेटे हुए है। आत्मा का धर्म प्रेम या आनन्द अपने मूल स्थान आत्मा में ही शाश्वत रूप में विद्यमान है, किन्तु उनका प्रकाशन आत्मा के सगुण होने पर चित्त व इन्द्रियों के माध्यम से ही सम्भव है। हमारी आत्मा आलोकवान सूर्य पिण्ड सदृश है। वह प्रकाश व शक्तिपुंज है और समस्त अंतर्बाह्य जीवन को प्रकाश दान करने वाला या आलोकित रखने वाला केन्द्र है। अतः आत्मा धर्म रूप भी है और धर्मी रूप भी है। जब तक आत्मा प्रकाश चित्त व इन्द्रियों के माध्यम से विकीर्ण नहीं करती, तब तक वह अपने निराकार रूप में ही कही जाती है, और ज्यों ही वह प्रकृति की सहायता से वह अपना प्रकाश विकीर्ण करने लग जाती है, उसके सगुण रूप का उन्मीलन हो जाता है। निर्गुण रूप में प्रेम

और आत्मा दोनों ए.क ही बात है; दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं।

इस निर्गुण अवस्था में तो प्रकाश के विकीर्ण होने का प्रश्न ही नहीं उठता। जब प्रेम रूप धर्म का प्रकाशन बाहर चित्त व देह के माध्यम से होने लगता है तभी प्रेम की प्रकाश किरणें फूटने लगती हैं। आत्मा का यह प्रकाश सबसे पहले चित्त रूप दर्पण में प्रतिबिम्बित होगा और वहाँ से उस प्रेम की प्रकाश किरणें बाहर इन्द्रियों व प्रकृति में फैल जायेगी। ऐसी अवस्था में प्रकृति बन्धन का कारण नहीं, प्रत्युत मुक्ति का आनन्द देने वाली हो जायेगी। यहाँ हम चित्त को समस्त अंतःकरण के अर्थ में प्रयुक्त कर रहे हैं जिसमें मन, बुद्धि, अहंकार आदि का समावेश हो जाता है। यह चित्त अपने मूल रूप में एक बहुत विशाल व उज्जवल दर्पण है। यह जितना स्वच्छ होगा, आत्मा का प्रेम प्रकाश उतना ही उज्जवल होकर आगे इन्द्रियों की ओर अपनी किरणें फेंकेगा। यदि चित्त उज्जवल नहीं है तो उज्जवलतम आत्मा का आलोक भी भलीभाँति प्रकाशित नहीं होगा। हमारा चित्त जैसा होगा वैसा ही हम प्रकाश ग्रहण करेंगे।

यदि प्रकाश अपने मूल रूप में आया है तो प्रेम है अन्यथा वह प्रेम से इतर काम आदि कोई मनोविकार होगा। काम और प्रेम में इतना ही अन्तर है कि प्रेम का निवास शुद्ध चित्त में होता है और काम का निवास अशुद्ध चित्त में। चित्त यदि निःस्वार्थ है तो प्रेम है किन्तु यदि देह या इन्द्रियों के साथ उसका सम्पर्क सीमातीत हो गया तो वह हल्का पड़ जाता है। पर यह भी निश्चित है कि वह इन्द्रियों के द्वारा प्रकाशित भी होगा ही, अन्यथा न तो वह काम कहा जायेगा न प्रेम। उपनिषदों में काम सृष्टि के निर्माण में प्रेरक शक्ति के व्यापक और परिष्कृत अर्थ में ही आया है। वह काम आनन्द भावना से सम्बन्धित है, अतः श्रेयस्कर है।

चित्त और देह का घनिष्टतम सम्बन्ध है। देह की समस्त गतिविधि का नियंत्रण चित्त वृत्तियों के ही हाथ हैं। आत्मा और देह के बीच चित्त ग्रन्थि स्वरूप है। वह उन दोनों का योजक भी है और विभाजक भी। चित्त पर उतरा हुआ आत्म प्रकाश आगे जाकर इन्द्रियों के द्वारा व्यक्त होगा। यह तभी होगा जब इन्द्रियाँ चित्तानुरूप

आचरण करेंगी। य.दि चित्त देह के साथ अपना तादात्म्य शिथिल कर चुका हो तो यह प्रकाशन सम्भव न होगा और वह प्रकाश चित्त में ही टिका रहेगा तथा आत्मा में ही लौट जायेगा क्योंकि बिना धारण किये उसकी बहिंगति नहीं। यदि चित्त नहीं रहेगा तो देह भी नहीं रहेगी।

यहाँ तक तो हुआ आत्मा को ही मूल आधार मानकर प्रेम तत्व का विवेचन। अब चित्त व इन्द्रियों के आधार पर प्रेम तत्व पर विचार किया जाये। ऊपर कहा जा चुका है कि आत्मा स्वरूपतः निर्गुण ही है सगुण नहीं। अतः आत्मा की निष्क्रियता को ध्यान में रखते हुए यह तर्क माना जा सकता है कि प्रेम चित्त का गुण है क्योंकि वह चित्त के ही द्वारा देह के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। बहुत से लोग आत्म तत्व जैसी वस्तु में विश्वास करते भी नहीं किन्तु प्रेम में उनकी आस्था दिखाइ देती है इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं महात्मा बुद्ध जो कि आत्मा को अस्वीकार करते हुए भी अनन्त प्रेम एवं करूणा के सागर हैं। तो इस अर्थ में प्रेम चित्त का धर्म हुआ। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि देह से सम्बद्ध होकर ही चित्त अनेक वृत्तियों को उपजाता है और चित्त से सम्बद्ध देह ही उन वृत्तियों के अनुरूप आचरण करता है। तात्पर्य यह कि देह सम्बन्ध के बिना किसी भी वृत्ति का उदय नहीं होगा। अतः प्रेम के पूर्ण विकास के लिए आत्मा व देह सभी की पूरी-पूरी आवश्यकता है। आत्मारूपी प्रकाश, जल, पवन आदि के बिना प्रेम बीज का पल्लवन व विकास नितान्त असम्भव है। इसी अर्थ में इन्द्रियाँ प्रेमाभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम मानी जा सकती है।

इस प्रकार आत्मा, चित्त और देह-तीनों ही प्रेमानुभूति में सहायक हुए हैं। आत्मा ही मुख्य है इसलिए चित्त और देह इनमें से किसी को भी प्रेम का एकमात्र धर्मी नहीं कहा जा सकता है। वस्तुतः प्रेम का मूल स्रोत और आदि उद्गम स्थल तो निःसंग और निर्लेप आत्मा ही है, किन्तु उसकी प्रकृत संचरण भूमि चित्त ही है। प्रेम प्लावित चित्त का आन्दोलन ही सात्विक अथवा कायिक अनुभावों के रूप में अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार चित्त का कार्य दुहरा है। वह आत्मा से प्रेम रस का दोहन कर देह को संचालित करता है, और इस प्रकार प्रेम की पूर्ण अभिव्यक्ति द्वारा ही सात्विक आनन्द प्राप्त करता है। जिसे प्रेमानन्द कहना चाहिए।

ऐसी दशा में आत्मा, चित्त और देह तीनों की भूमिका परस्पर सम्पृक्त होते हुए भी मोटे तौर पर पृथक–पृथक स्पष्ट ही है, अतः प्रेम को कभी चित्त का धर्म बताना और आत्मा का सहायक मात्र कहना, तथा कभी आत्मा को ही प्रेम का शाश्वत धर्मी मानना, विरोध उत्पन्न करने से दिखाइ देते हैं। अतः सामान्य रूप से समन्वयात्मक दृष्टि ही वांछनीय है और पृथक–पृथक विवेचन के लिए आत्मा को प्रेम का मूल स्रोत, चित्त को संचरण भूमि तथा देह को प्रेम प्रकाशन का प्रकृत माध्यम मानना ही उचित है, क्योंकि निस्संदेह व्यवहारिक और तात्विक दोनों ही दृष्टियों से चित्त और देह आत्मा से कम महत्व नहीं है।

अब प्रश्न उठता है कि चित्त में प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध आदि अनेक प्रकार की वृत्तियाँ हैं फिर हम प्रेम को कैसे पहचानें। वास्तव में प्रेम सब वृत्तियों से एक स्वतन्त्र वृत्ति है और उसके कुछ निजी लक्षण या मौलिक गुण हैं। हमारे चित्त में तीन प्रकार की वृत्तियाँ है– इच्छा, ज्ञान और क्रिया, इन तीनों में से प्रेम का सम्बन्ध "इच्छा" वृत्ति केन्द्र से है। परन्तु इच्छा करना मात्र प्रेम नहीं है। वह काम भी हो सकता है और प्रेम भी। जब हम एक विशिष्ट इच्छा करते हैं तभी प्रेम कहलाता है। यह विशिष्ट इच्छा है किसी को चाहना और शुद्ध आनन्द के लिए चाहना। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमें आनन्द मिले और दूसरे को भी सुख मिले यही प्रेम की मूलभूत भावना है।

इस प्रकार प्रेम में चित्त की तीनों वृत्तियों का सुखद संयोग होता है। प्रेम मूलतः इच्छा होता हैं जो ज्ञान का निर्देशन पाकर विशिष्ट या संयत रूप ग्रहण करता है। बिना ज्ञान के इच्छा अंधी है और बिना इच्छा के ज्ञान पंगु और क्रिया के बिना दोनों निष्क्रिय। इच्छा गति देती है, ज्ञान उसको उचित दिशा निर्देश और क्रिया दोनों के समन्वयात्मक स्वरूप–प्रेम–को अभिव्यक्त करती है।

प्रेम की भावना के पूर्ण स्पष्टीकरण व विकास के लिए दो की कल्पना करनी पड़ती है। भक्त–भगवान, माता–पुत्र, प्रेमी–प्रेमिका, मित्र–मित्र आदि, क्योंकि

दो के बिना प्रेम वृत्ति के प्रकाशन की गुंजाइश ही नहीं है। परन्तु प्रेम प्रायः मानवीय सम्बन्धों में ही अपने आपको प्रकट करता है। प्रेम की तीन कोटियाँ हो सकती हैं–

1. छोटे की बड़े के प्रति प्रीतिः अर्थात् श्रृद्धा
2. दो सम वयस्कों की प्रीतिः अर्थात् सख्य या मैत्री जिसमें प्रणय भी है।
3. छोटे से बड़े की प्रीति : वात्सल्य।[1]

उपरोक्त तीनों कोटियों में बीच की कोटि का प्रेम ही (प्रेमी –प्रेमिका का सख्य प्रेम अथवा प्रणय) सबसे अधिक गम्भीर, व्यापक व शक्तिशाली कहा जाता है। क्योंकि प्रथम कोटि में पूज्य भाव तथा तृतीय में वात्सल्य भाव होने से दोनों में संकोच, लज्जा आदि का पूर्ण तादात्म्य की अनुभूति में व्यवधान होता है वहाँ बीच की कोटि में दैहिक, मानसिक व आत्मिक सम्बन्धों का सहज और पूर्ण विकास सम्भव माना जाता है। सम्भवतः इसीलिए काव्य में रसानुभूति के लिए आचार्यों ने इसी प्रकार के प्रेम को श्रृंगार रसोपयुक्त ठहराकर अन्य सब प्रकार के प्रेम को भाव मात्र माना है। अतः आज के सन्दर्भ में प्रेम से जिस अर्थ की प्रतीति होती है वह स्त्री पुरूष के बीच श्रृंगार और वासनात्मक सम्बन्धों से सहचारित है। वयः प्राप्त व संयोगाभिलासी स्त्री पुरूष के रूप गुण जन्य पारस्परिक आकर्षण से उत्पन्न मादन भाव के नैसर्गिक प्रेम को प्रणय कहते हैं। प्रेम केवल दामपत्य रति तक ही अपनी गतिविधि सीमित नहीं रखता वरन् हृदय के समस्त भाव क्षेत्र व उससे सम्बन्धित या प्रेरित सभी जीवन पथो व कार्य व्यापारों को वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। सृष्टि के सब प्रिय या अनुकूल पदार्थों से हमारा मधुर रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। हमारे मन की एक गूढ़ वृत्ति है– रागात्मिका वृत्ति। इस वृत्ति के द्वारा हम अपना नाता बाहरी जगत से जोड़ते हैं। यह नाता जोड़ना और कुछ नहीं अपनी ही आत्मा को व्यापक बनाने का अभ्यास है। यो तो सभी प्रकार के प्रेम सम्बन्धों में परिस्थिति भेद से प्रेम की तीव्रता व स्थायित्व दिखाइ पड़ता है पर प्रेम की यह वृत्ति जितनी स्पष्ट जितनी पूर्ण और

---

1. रामेश्वर लाल खंडेलवालः आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौंदर्य, पृ० – 103

जितनी प्रभावशाली पर.नर आकृष्ट दो युवा प्रेमियों के प्रेम सम्बन्ध में प्रकट होती है उतनी और कहीं नहीं समझी जाती।

प्रेम और काम :

मनोविज्ञान वेत्ताओं ने यह बात स्पष्ट रूप से सामने रख दी है कि लौकिक और अलौकिक सभी प्रकार के प्रेम के मूल में हमारी काम भावना ही सूक्ष्म स्थूल रूप से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में विद्यमान है। स्वयं ऋग्वेद में (नासदीय सूक्त) ने काम ही सृष्टि की मूल प्रेरणा ठहराया गया है-

कामस्तग्र समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ।[1]

उपनिषदों में भी बड़ी गम्भीरता के साथ इस विषय पर मनीषियों ने विचार किया है –

"तदेतान्युथनमोत्येतस्मिरननाक्षरे संस्रज्यते यदा वै मैथुनी
सभागच्छत आयतो वै तावन्योन्यस्य कामम् ।"[2]

बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक चरण में फ्रायड की खोजों ने प्रेम और काम के सहसम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि भोज्य पदार्थों की भूख की भाँति प्रेम भी एक प्रकार की भूख है जिसका कामेषणा से गहरा सम्बन्ध है। रोजमर्रा की भाषा में भूख शब्द का कोई समानार्थी नहीं है परन्तु विज्ञान में इसे "लिबिडो" कहा गया है।[3] उन्होंने यह नवीन स्थापना प्रस्तुत की कि – रत्यात्मक उत्तेजना उत्पन्न करने वाली मूलभूत प्रक्रिया सदैव एक ही होती है। उन्होंने तर्क दिया कि जननेन्द्रियाँ अभी भी अपने पाशविक रूप में हैं अतः प्रेम अपने बुनियादी रूप में आज भी उतना ही पाशविक है जितना पहले था।"[4]

---

1 ऋग्वेद नासदीय सूक्त
2 छांदोग्योपनिषद – 1,1,6
3. फ्रायड: कम्प्लीट साइकोलाजिकल वर्कस – वाल्यूम-7, पृ0-155
4. वही, 215

परवर्ती मनोवैज्ञानिकों ने पाशविकता की इस अतिवादी स्वीकृति का परिहार करते हुए यह स्थापित किया कि कामेषणा और प्रेम प्रकृत पूर्णरूपेण भिन्न होते हुए भी एक दूसरे पर आश्रित और पूरक हैं।

इससे स्पष्ट है कि प्रेम केवल स्थूल भोग या काम ही नहीं है। यह काम का उज्जवल और परिष्कृत रूप है। हाँ इतना निश्चित है कि जिस हृदय में काम विकास उत्पन्न होते हैं उसी हृदय में, विशेष क्षणों में, उदात्त व निर्मल प्रेम की अनुभूति का संचार होता है। पर इस तथ्य को भलीभाँति न समझ जल्दी से निष्कर्ष निकालने वाले मनोवैज्ञानिकों ने कहना शुरू कर दिया कि स्त्री पुरूष की रति और इंश्वर के प्रति रति दोनों एक ही बात है। जबकि भारतीय विचारकों ने अलौकिक रति के भाव प्रेषण के लिए लौकिक रति का सहारा लिया है।

इस प्रकार पाश्चात्य व भारतीय तत्वचिंतकों व मनोवेत्ताओं दोनों की ही दृष्टि में काम और प्रेम का गहरा सम्बन्ध है। प्रेम का मूल है काम जो ब्रह्म की अनादि इच्छा "एकोइं बहुस्याम" का निर्वाह करने के लिए मानव प्राणियों (पशु जगत में भी) में सृष्टि संवर्धन व्यापार की आदिम प्रेरणा के रूप में परम्परा से चला आ रहा है और हमारी भावनाओं और जीवन व्यवहारों के सूक्ष्म स्नायु जाल का पोषक जीवन रस है।"[2]

बच्चन मनोवेत्ताओं की इस धारणा से पूर्ण सहमत हैं कि पुरूष स्त्री का हर आकर्षण यौनाकर्षण है। फ्रायड की विचारधारा से प्रभावित हो वे तृष्णा, प्यास और वासना के गीत गाने लगे। बच्चन निर्द्वन्द्व रूप से प्रणय के लोक में विचरण कर रहे थे–

केवल एक प्रेम पहचानूं उसे हृदय का स्वामी मानूं
सब कहते भगवान प्रेम है– प्रेम हमें भगवान।"[3]

---

1. पं0 सद्गुरूशरण अवस्थीः बुद्धि तरंग, प्रेम नामक लेख, पृ0–
2. बच्चनः प्रारम्भिक रचनाएं, रचना–3, पृ0–470

छायावादी आदर्शवाद और द्विवेदीयुगीन स्थूल नैतिकता के विरुद्ध परवर्ती कवियों के मन में जो प्रतिक्रिया हुई उसकी अभिव्यक्ति प्रकृतिवादी यौन चित्रणों के रूप में होने लगी। बच्चन भी इससे अछूते नहीं रहे । वह अपने मिलन सुख के आनन्द को व्यक्त करने के लिए विवश हो उठे और उसका रसमय वर्णन करने में ही अपने आनन्द को पूर्ण मानने लगे–

तब तक समझूँ कैसे प्यार
अधरों से जब तक न कराये
प्यारी उस मधु रस का पान ?[1]

कवि प्रेम की आत्मिक सौन्दर्य को भूलकर उसकी स्थूल अभिव्यक्ति और तृप्ति को शाश्वत समझकर शारीरिक मिलन को ही प्यार की सच्चाई मानता है–

बाहों में जब तक न सुलाए
प्यारी अंतर्हित हो रात
चाँद गया कब सूरज आया
इनके जड़ क्रम से अज्ञात
सेज चिता की साज संवार ।[2]

भोग मेंरत वासना के नशे में धुत मन विवेक और संयम खोकर शारीरिक संयोग की स्थिति में स्वच्छंदता चाहता है। वह अधरों का निर्द्वन्द्व रूप से पान करना चाहता है–

"है अधर में रस मुझे मदहोश कर दो
किन्तु मेरे प्राण में संतोष भर दो ।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चन भी प्रेम में काम या यौन को महत्व देते हैं। परन्तु उनकी धारणा फ्रायड के मत से सहमत होते हुए भी अपना अलग

---

1 बच्चन, आकुल अंतर, रचना–1, पृ0–284

3. वही ।

3. मिलन यामिनी: बच्चन रचनावली–2, पृ0–37

महत्व रखतो है। वे फ्रायड की सीमा से भी परिचित है। फ्रायड ने मनुष्य मन की सूक्ष्मता जटिलता और विचित्रता के प्रति हमें सचेत किया और उन्हें समझने की एक कुंजी भी दी। परन्तु इससे जीवन को समझा तो जा सकता है, उसे परिचालित नहीं किया जा सकता। मनोविश्लेषण काव्यालोचन में तो सहायक हो सकता है काव्य सृजन में नहीं ।

**बच्चन का काव्य–सृजन और नारी** :

कविवर बच्चन को नारी का सम्पर्क सहयोग एवं साहचर्य कई रूपों में प्राप्त हुआ। नारी का हर रूप उनके काव्य का प्रेरणा स्रोत रहा है। कहीं नारी उनके काव्य के मिलन और वियोग की मन:स्थिति की अभिव्यक्ति कराती है तो कहीं मृगमरीचिका की और कहीं प्रिय प्राण के रूप में आकर प्रेरक एवं सुधारक रूप की।

**मिलन – वियोग** :

परिणीता श्यामा के जीवन काल में कवि जिस आर्थिक विपन्नता की स्थिति से गुजर रहा था उसमें श्यामा की सहयोग जन्य मानसिक स्थिति उतनी चित्रित नहीं हो पायी जितनी क्षुब्ध मन को शान्ति प्रदान करने वाली मधुशाला का आकर्षण। किन्तु श्यामा के निधन के बाद कवि शोक के सागर में डूब गया। निराशा और विषाद के उन क्षणों में कवि ने जिन काव्यों का सृजन किया, उनमें पत्नी वियोग की स्थिति साकार हो उठी है। निशा– निमंत्रण के विभिन्न गीतों में तत्कालीन मानसिक स्थिति के दृश्य देखे जा सकते हैं। अत: श्यामा के वियोग सम्बन्धी कुछ घटनाओं का उल्लेख आवश्यक है।

श्यामा की चिकित्सा बच्चन जी अपनी शक्ति भर कर चुके थे, किन्तु रोग में किसी प्रकार के परिवर्तन की झलक दिखाई नहीं देती थी। भरपूर चिकित्सा का कोई फल न निकला और श्यामा मृत्यु के मुख में समा गयी। मृत्यु चिरकाल से मानव मात्र के लिए एक पहेली रही है–

कर्म का चक्र, मनुज की मृत्यु
रही अनबूझ पहेली एक ।

चिर निद्रा एवं अभंग स्वप्नों में विलीन हुई श्यामा के लिए कवि की ये पंक्तियाँ फूट पड़ी –

साथी, सो न, कर कुछ बात
बात करते सो गया तू
स्वप्न में फिर खो गया तू
रह गया मैं और आधी बात, आधी रात।"[1]

युग जीवन की निराशा को मस्ती में रूपान्तरित कर लेने वाले कवि के जीवन में जब यह दुर्घटना घटी तो वह लगभग उन्माद की स्थिति में आ गये। श्यामा की मृत्यु उनके कवि मानस पर भयानक आघत था। उन्होंने कई महीने तक कोई कविता नहीं लिखी परन्तु समय सबसे बड़ा चिकित्सक है धीरे – धीरे वे निष्क्रियता की परिधि से बाहर आये और एक दिन अनायास उनके अन्तर से कविता की एक पंक्ति फूट पड़ी। यह निशा– निमंत्रण की पहली कविता थी।

अपनी समस्त पीड़ा और वेदना को बच्चन ने अपनी कविता में मुखरित कर दिया। इस दुर्घटना से प्रकृतिस्थ होने पर ये पीड़ाएं उन्हें और अधिक काव्य प्रेरणा देती रहीं। कवि सम्मेलनों का माहौल उनके लिए मरहम का काम करता रहा। कवि को मानसिक संतुलन में लाने का श्रेय उनकी कविता को ही है। उनकी ख्याति हिन्दी संसार में व्याप्त हो चुकी थी। कवि सम्मेलनों में शामिल होने के लिए उनके पास आमंत्रण बुलाहट आदि आने लगे थे। कवि ने सम्मेलनों में हिस्सा लेने का निर्णय लिया जो उनकी तत्कालीन मनोदशा के लिए उपचार साबित हुआ।

चंपा का प्रसंग "मधुशाला" और "मधुबाला" तक की रचनाओं के प्रेरक बने थे। "मधुबाला" की कुछ रचनाएं तो रानी, जो कि कुछ दिनों के लिए कवि के यहाँ आकर रहने लगी थी, की छवि के दर्शन होते हैं–

---

1. बच्चन, निशा निमंत्रण– रचना–1, पृ0–175

"जब इस घर में था तम छा, था भय छाया, था भ्रम छाया
था मातम छाया, गम छाया
ऊषा का दीप लिए सिर पर मैं आई करती उजियाला।"[1]

श्यामा का प्रसंग कवि को जीवन पर्यन्त प्रेरणा देता रहा। श्यामा की बीमारी और उससे सम्बन्धित अनेक प्रसंग कवि की रचनाओं में यत्र तत्र मिल जाते हैं-

मना कर बहुत एक लट मैं तुम्हारी लपेटे हुए पोर पर तर्जनी के
पड़ा हूँ, बहुत खुश, कि इन भौंवरों में मिले फारमूलों मुझे जिन्दगी के
भंवर में पड़ा सा हृदय घूमता है, बदन पर लहर पर लहर चल रही है
न तुम सो रही हो न मैं सो रहा हूँ: मगर यामिनी बीच में ढल रही है।[2]

और

'मृत्यु शैय्या पर पड़े अति रूग्ण की अन्तिम हँसी सी
यत्न करके खिल रहो है एक लघु कलिका निराली।"[3]

श्यामा की रूग्णावस्था कवि के भोक्ता ही नहीं स्रष्टा के लिए भी उद्विग्नपूर्ण थी और ऐसे समय "मधुशाला" और "मधुबाला" को लेकर तरह-तरह की आलोचनाएं कवि को और उद्विग्न बना रही थीं। ऐसे में कवि का निराशावादी हो जाना अस्वाभाविक नहीं है।

श्यामा की मृत्यु के दैवी प्रकोप का भयंकर आघात लगते ही कवि के सारे स्वप्न भंग हो जाते हैं, आस्थाएं डगमगाने लगती हैं और विश्वास -विचलित होने लगता है। कवि का एकाकीपन गीतों में ढलने लगता है-

"मुझे मिलने को कौन विकल
मैं होऊँ किसके हित चंचल।"[4]

---

1. बच्चन: मधुबाला, रचना-1, पृ0-82
2. बच्चन: आरती और अंगारे, रचना-2, पृ0-238
3. बच्चन, मधुकलश, पृ0- 147
4. बच्चन:, निशा-निमंत्रण, पृ0-161

दुनिया की कठोर वास्तविकता के सामने भावात्मकता का कोई अस्तित्व नहीं है। लोक जीवन अपने परम्परागत प्रणाली का ही अवलम्बन कर चलता है। तभी तो इधर पत्नी के देहान्त के बाद कवि के हृदय के घाव भर भी नहीं पाए थे कि दुनिया उसे पुनर्विवाह की सलाह देने लगी –

"वह समझ मुझको न पाती
और मेरा दिल दुखाती
है चिता की राख कर में, माँगती सिन्दूर दुनिया।"[1]

कवि के लिए उस नैराश्यपूर्ण स्थिति का अधिक काल तक रहना एक प्रेरणा का स्रोत हो जाता है। कवि को निरन्तर निराशा ही मिल रही है उसकी पीड़ा बढ़ती जा रही है। सबको झेलते–झेलते कवि में एक प्रतिक्रिया सी होती है। उसका व्यक्तित्व सजग हो जाता है। उसका स्वाभिमान लोकोपहास एवं विधि के व्यंग्य को ठुकराने को प्रस्तुत हो जाता है।

<u>प्रेमिका</u> : (मृग तृष्णा)

प्रेमिका के रूप में आइरिस बच्चन के जीवन में एक नए क्षितिज का सृजन करती है और एक नई अनुभूति दे जाती है। हालांकि आइरिस ने बच्चन के प्रेम को स्वीकर नहीं किया और अपना ही अहित किया। शायद वह जीवन पर्यन्त अविवाहित रह गयी। उसके मन पर पड़ा विछोह का यह दुख एक मर्मांतक पीड़ा उसे दे गया। जिससे उबरने के लिए वह भारत छोड़कर सीलोन चली गयी। बच्चन के शब्दों में– "आइरिस ने प्रथम दृष्टि में मुझे आकर्षित किया। वैसे तो मुझमें कुछ विशेष आकर्षण नहीं था, पर मेरे बालों ने उसे आकर्षित किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।"[2] इस प्रकार कवि ने आइरिस के प्रथम परिचय की चर्चा की है। सर्वप्रथम उमा नाम की एक लड़की

---

1 बच्चन, निशा–निमंत्रण, पृ0–189

2. बच्चन, नीड़ का निर्माण फिर, रचना–7, पृ0–115

ने कवि का परिचय आइरिस से कराया। वह लम्बी इकहरी, गौरवपूर्ण अपने बालों को इस प्रकार झटकती थी कि उसका सौन्दर्य गतिशील हो उठता था। उसके आयताकार चेहरे पर नीली आँखें और भरे होंठो से एक प्रकार की ताजगी, प्रसन्नता एवं भोलेपन की आभा दिखलाई पड़ती थी। निम्न पंक्तियों में कदाचित् आइरिस का चित्र ही कवि के अवचेतन में घुमड़ रहा था –

"तुम्हारे नील झील से नैन
नीर निर्झर से लहरे केश।"[1]

पिता के कठोर नियंत्रण में पली होने के कारण उसकी कोमलता कुछ दबी हुई या संयत जान पड़ती थी। अंततः भावुक होते हुए भी वह भावना में बह नहीं सकती थी। व्यवहारिक दृष्टि से जो काम उसे उचित नहीं जँचता उसे प्रारम्भ करने की बात वह सोच भी नहीं सकती थी।

धीरे–धीरे कवि को आइरिस से मिलने में आनन्द आने लगा। कवि को अनुभव हुआ कि शायद उसके जीवन की अधूरी प्यास पूरी होने को है। प्रत्येक मिलन में कवि का आकर्षण बढ़ता जाता था। वे तो उसे प्यार तक करने की स्थिति में पहुँच गये थे, किन्तु आइरिस की ओर से कोई सदनुकूल उत्तर नहीं मिल रहा था।

प्रेम की स्थिति में पहुँच जाने के बावजूद कवि को आइरिस और अपना अंतर खलता था। वे उसे सद्यः प्रस्फुरित कुसुमवत मानते थे और स्वयं को मुरझाये फूल के समान। तथापित कवि उससे मिलना जुलना बनाए रखते हैं। कवि आइरिस से प्यार के बदले करूणा की आशा करते थे किन्तु एक नवयौवना प्यार के सिवा दे भी क्या सकती थी। उन्होंने एक तरह से उसे संकेत करते हुए निम्न पंक्तियाँ भी लिखी–

"मुझसे प्यार न करो, डरो
जौमैथा, अब रहा कहाँ हूँ
प्रेत बना निज घूम रहा हूँ
बाहर से ही देख न आँखों से विश्वास करो।"[2]

---

उस समय तक कवि यह नहीं समझ पाया था कि आइरिस उन्हें अपनी करूणा से सिक्त क्यों नहीं कर सकी। परन्तु बाद में कवि को बोध हो जाता है कि करूणा तो परिपक्व मन ही दे सकता है प्यार के लिए परिपक्वता आवश्यक नहीं। आइरिस की इस नैसर्गिक अक्षमता को कवि उसकी निष्ठुरता एवं संकोच-शीलता मानने की भूल कर बैठा।

आइरिस में इस प्रवृत्ति का विकास नहीं हो पाया था कि वह अपने भावों को उन्मुक्त अभिव्यक्ति दे सके। इसका एकमात्र कारण था उसका कठोर नियंत्रण में पालन। धीरे-धीरे कवि को यह अहसास होने लगा कि वह आज तक उनके पास औपचारिक शिष्टता का ही निर्वाह करती रही है। तथापि कवि का उसके साथ पत्राचार चलता रहा उन्होंने अपने पत्रों में अपनी भावनाओं, जो कि वे आमने-सामने खुलकर नहीं कह सकते थे, को उड़ेल दिया परन्तु आइरिस के पत्रों में संकोच और संयम का अतिक्रमण कभी नहीं किया गया। कवि की यह धारणा थी कि अपनी संकोचशीलता के कारण वह खुलकर नहीं लिख सकती, किन्तु उसके प्रति आइरिस की सुकुमार भावना अक्षुण्ण है।

अन्ततः कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वह उनके लिए मृग तृष्णा मात्र है। उनके किसी आह्वान का उसके हृदय से कोई उत्तर नहीं मिला-

> और जब उनकी प्रतिध्वनि ही तुम्हारे
> बोल से आती नहीं है,
> तो मुझे यह जान लेना चाहिए था
> हो रही गलती कहीं है,
> घाटियाँ आवाज पर आवाज देतीं
> और गलियाँ मौन रहतीं
> चल अभागे मन, कहीं अब और मैं तुझको रमाऊँ ।[1]

कवि को अपने मित्र से आइरिस की सारी धारणाओं का पता चल गया। आइरिस उसी के प्रति प्रेम व्यक्त कर सकती थी जिससे वह विवाह होने में कोई बखेड़ा न हो।

---

1. बच्चन : आरती और अंगारे, रचना-2, पृ0-249

बच्चन के साथ विवाह में धार्मिक प्रतिबन्ध व्यवधान रूप में उपस्थित था। इतना जानकर कवि अपने धर्म का त्याग कर ईसाई धर्म स्वीकार करने को भी तैयार हो गये कि यदि मेरा नाम क्रिश्चियन होना ही हमारे और आइरिस के बीच विवाह में बाधक हे तो यह बाधा भी मैं हटा दूँगा। वे अपना अस्तित्व खोकर भी अपना अपनत्व खोजकर भी आइरिस को अपनाने पर तुल गये थे –

"तू जिस लेने चला था, भूलकर अस्तित्व अपना
तू जिसे लेने चला था बेचकर अपनत्व अपना ।"[1]

कवि ने अपने पिता से तो विवाह की स्वीकृति ले ली परन्तु जब आइरिस से उसका निर्णय जानना चाहा तो आइरिस का नकारात्मक उत्तर था। आइरिस की इस इंकार ने कवि के हृदय में जो वेदना का संचार किया था उसके सम्बन्ध में वे चाहे–अनचाहे, जाने–अनजाने अभिव्यक्त करते रहे। आइरिस सम्बन्धी प्रमोदय की स्थिति में कवि ने जो रचनाएं की उनका वर्णन वे स्वयं करती हैं। इस प्रकार कवि सही नारी की तलाश में दर–दर भटकता रहा।

परिणीता :

अन्ततः बच्चन की सही नारी की तलाश पूरी हुई और उन्हें तेजी जैसी जीवन संगिनी मिली। स्वयं कवि के शब्दों में "नारी मेरी सत्रह वर्ष की अवस्था से ही मेर जीवन में आने लगी थीं, पर यह तो चौंतीस वर्ष की उम्र में ही सम्भव हुआ कि जो नारी मेरे सामने प्रकट हुइ उसे मैं एक साथ "देवि! माँ! सहचरि! प्राण" कह सका। चम्पा को मैंने देवी तो नहीं पर परी अवश्य समझा था। उसे वृक्ष परी कह भी चुका हूँ और माँ का रूप मैंने उसके जीवन के अंतिम दिन देखा। श्यामा में छिपी देवी को मैंने मृत्यु शैय्या पर ही पहचाना।"[2]

कवि के लिए सबसे बड़ी प्रसन्नता की बात थी कि तेजी ने उन्हें कवि के नाते नहीं बल्कि व्यक्ति के नाते महत्व दिया। वह उनके कवि रूप से आकर्षित हो

---

उनके पास नहीं आईं बल्कि उनके पुरूषत्व एवं व्यक्तित्व पर आकृष्ट होकर उनके पास आइं । जीवन की परिस्थितियों से जूझते हुए कवि को उपेक्षा और तिरस्कार का सामना करना पड़ा था उस हार्दिक व्यथा एवं अनुभूतियों की संगिनी की उन्हें अपेक्षा थी। जिस करूणा को पाने के लिए वे आइरिस रूपी मृग तृष्णा में भटक गये थे वह तेजी से उन्हें प्राप्त हुई। कवि के शब्दों में – "वे जिस अप्रत्याशित, अयाचित, अनाहूत, अचानक मेरे जीवन में उत्तर पड़ी थीं उससे मैं चकित, अभिभूत, स्तब्ध था।"[1] तेजी के साथ सम्बन्ध होते ही उनके जीवन से अंधकार एवं मृत्यु के स्थान पर प्रकाश एवं जीवन की आभा उद्‌दीप्त हो उठी –

तुम किसी बुझती चिता की
जो लुकाठी खींच लाती
हो, उसी से ब्याह मंडप,
के तले दीपक जलाती,

मृत्यु फिर–फिर विजय की
यदि कहीं दृढ़ आन तुम हो
कौन तुम हो ?"[2]

नारी को समझ पाना बड़ा मुश्किल है। पुरूष के लिए नारी एक रहस्य ही है। तेजी में बड़ी तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा था। कवि ने उन्हें प्रेयसी रूप में जाना ही था कि वह पत्नी हो गयी और पत्नी होते देर नहीं लगी कि उनमें मातृत्व का बीजारोपण हो गया। नारी इन परिवर्तनों को तो आसानी से झेल जाती है परन्तु पुरूष उतना लचीला नहीं होता। प्रेम से पति और पति से पिता इस परिवर्तन को वह जल्दी स्वीकार नहीं कर पाता। बच्चन के साथ भी कुछ ऐसा हुआ कहाँ तो वे पिता बनने वाले थे और अभी वे प्रेमी रूप पर ही अटके थे। विवाह के कई वर्षों बाद तक जो प्रेम की कविताएं वे लिखते रहे शायद उसके पीछे यही रहस्य था।

---

1. बच्चन, 'नीड़ का निर्माण फिर" रचना–7, पृ0–429
2. बच्चन, सतरंगिनी– रचना–1, पृ0–354

तेजी का कवि के जीवन में आगमन कवि को अंधकार से प्रकाश की ओर खींचकर लाने में सहायक हुआ अब कवि की दृष्टि अंधकार से प्रकाश की ओर थी और कवि पुनः अपने जीवन के राग रंग के साथ काव्य के नए चरण में प्रवेश करता है। पुरूष के जीवन में जब कोई गलत नारी आती है तो उसका जीवन विश्रृंखलित हो जाता है। उस विश्रृंखलता को कोई सही नारी अर्थात् परिणीता ही दूर कर सकती है। बच्चन के जीवन में ऐसी ही परिणीता का आगमन हो चुका था जो उनके जीवन को सुव्यवस्थित और क्रमबद्ध बनाती।

## नारी और प्रेम सौन्दर्य की पृष्ठभूमि में बच्चन :

आज के काव्य में पुरानी आस्तिकता नष्ट नहीं हुई बल्कि आस्तिकता का आधार बदल गया है। उसका पहला स्वरूप प्रेम में परिवर्तित हुआ। प्रेम को एक विचारधारा के लोग अत्यन्त पलायनवादी वस्तु समझते हैं, जबकि दूसरे प्रकार के विचारक उसे ही मनुष्य का शाश्वत् सत्य समझते हैं। संक्षेप में एक वर्ग प्रेम में व्यक्तिवाद देखता है दूसरा वर्ग प्रेम में ही आत्म विकास और तृप्ति देखता है। प्रेम का अस्तित्व अनेक रूपों में है। स्त्री पुरूष का प्रेम ही इस समाज में प्रेम कहलाता है क्योंकि अन्य आकर्षणों के लिए भक्ति, वात्सल्य इत्यादि नाम प्रयुक्त किये जाते हैं। नारी और पुरूष के प्रेम की उत्कट तीव्रता यौवन में ही होती है। इसका मूल कारण प्रजनन का प्राकृतिक नियम है। मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति ने नारी पुरूष सम्बन्ध को प्रजनन की अनगढ़ता से उठाकर उदात्त से उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित किया। प्रेम यौवन की अभिव्यक्ति है। प्रेम कभी भी व्यक्तिपरकता में समाप्त नहीं हो जाता। क्योंकि प्रेम का परिणाम इस संसार में सृष्टि का विकास है। जहाँ विकास के स्थान पर रहस्यात्मक तन्मयता में सांसारिक जीवन की इति की जाती है, वहाँ प्रेम वास्तव में किसी प्रकार अपना स्वरूप परिवर्तित कर लेता है। वह भक्ति के स्वरूप में बदल जाता है। अन्ततः हम उसे शुद्ध प्रेम के अन्तर्गत नहीं रख सकते किन्तु इसलिए छोड़ा भी नहीं जा सकता। क्योंकि शुद्ध प्रेम अपने सामाजिक स्वरूपों में अभिव्यक्ति पाता है और वह उसके ही साधन का रूप बन जाता है। जब कभी समाज में अधिक बन्धन होते हैं तब ऐसे हीअनेक प्रतीकों का सहारा लेकर वह प्रकट होता है।

नारी हमेशा से पुरूष के लिए एक रहस्य बनी हुई है, सम्भवतः वह सदैव रहस्य बनी भी रहेगी। हमारे सभ्यता ने काफी अंश तक हमारे सम्मिलन को दूर किया है और हमारी यौन विकृतियों को रूढ़ियों ने बराबर उभारने का प्रयास किया है। कवि अपनी वासना को समाज के सामने स्वीकार करता है–

पाप की ही गैल पर चलते हुए ये पाँव मेरे
हँस रहे हैं उन पगों पर जो बंधे है आज घर में
है कुपथ पर पाँव मेर आज दुनिया की नजर में।"[1]

वह विद्रोही है बन्धन स्वीकार नहीं करता। दुनिया की नजर में उसके पाँव बुरे रास्ते पर है किन्तु उसका आदर्श मधुशाला को ढूंढ़ना है। उसकी वेदना को क्या संसार मदिरा समझकर यूँ ही भुला पायेगा। उसे एक न दिन मानना ही पड़ेगा कि–

"राग के पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन
हैं लिखे मधुगीत मैने ही खड़े जीवन समर में।"[2]

विश्वास है कि उसके समस्त राग के पीछे एक पीड़ित हृदय विराजमान है। मधु विद्रोह की मिठास भी है और जीवन की कल्पना की मिठास भी। इसका न कोई विभाजन है न इसकी अनुभूति में कहीं रूकावट है। बच्चन की अभिव्यक्ति जितनी स्पष्ट होती हैं वह अन्यत्र दुर्लभ ही कहीं जा सकती है। बच्चन शब्दों के पारखी है वह सरल से सरल शब्द चुनते हैं। हृदय के प्रत्येक मोड़ों को जैसे वह पहचानते हों जिनसे भीतर घुसा जा सकता है। बच्चन की वासना कभी भी व्यक्ति की वासना नहीं रही यद्यपि बच्चन ने सदैव व्यक्तिपरक अभिव्यक्ति की है। उनका व्यक्ति सदैव प्रतिनिधि बनकर साहित्य में आया है और इसीलिए बच्चन अन्य लोगों की तुलना में अधिक जन ग्राह्य है।

प्रियतम देववाद का विरोध करते हुए स्पष्ट स्वीकार किया कि उसने प्रेम किया है। जहाँ जिस समाज में अपनी पत्नी से भी सबके सामने बातें करना वर्जित था वहाँ यह स्वीकारोक्ति एकदम नई वस्तु थी। उसने सीधे प्रियतमा से बातें करनी

---

1. बच्चन– मधुकलशः रचना–1, पृ0–135

प्रारम्भ कर दी । कवि की भावना सहज की ओर उन्मुख है।

समाज बन्धन बाँधता है, जाति के, धन के, वर्ग के परन्तु कवि उनमें से एक को भी स्वीकार नहीं करता। उसका सारा प्रेम जो व्यापक रूप से बिखरा है मूलतः एक प्रेयसी के प्रति ही है। उस प्रेयसी के लिए हृदय में कसक उठती है और आँखे बारम्बार छलछला आती हैं। प्रेमी का हृदय तो इतनी व्यापकता रखता है कि सबसे समान व्यवहार करे क्योंकि प्रेमी का हृदय दुख सहते-सहते इतना परिपक्व हो जाता है उसे सबका दुख अपना ही दुख लगने लगता है।

नयन से नयन मिले, हृदय से हृदय मिला। दृष्टि के मिलते ही बिजली सी कौंध गयी। एकाकीपन का हिमालय हृदय उस दृष्टि के आघात से कम्पित हो उठा मानों सदियों की नींद टूट गयी। हिमालय तो वह था ही रस की गंगा बहते क्या देर लगती किन्तु फिर कवि का हृदय मंदिर बन गया।

अन्त में कवि अपनी विवशता प्रकट करते हुए युग की वास्तविकता को पहचान लेता है और कहता है मेरी तो सारी बात मन की मन में ही रह गयी। पुरूष की वासना निर्बाध नहीं है वह तो बन्धनों से आबद्ध है तभी उसका निराकरण करने की भावना अपना प्रतिकार मांगती है।

कवि मानता है कि नारी युगों-युगों से पुरूष जीवन को उर्बर बनाती रही है। वह नारी से कहता है तू इस जीवन का आश्रय है। असल में तेरी शीतल छाया में ही विद्रोही यौवन धधका है। परन्तु उसकी नजरों में नारी स्वयं कभी विद्रोहिणी नहीं हो सकी। अब वह युग-युग से पुरूष की दासी है। उसने अपने आपको छला है क्योंकि त्याग की प्रंवचना में उसने अपने भय को आश्रय दिया है और अपनी महानता कहकर अपनी कायरता छिपाया है। क्यों नहीं वह विद्रोह करती। नर पशु ने इस पर शासन किया इसे सतीत्व का जामा पहना कर छला है। किन्तु भावी नारी के प्रति कवि उदासीन नहीं है उसे जीवन को प्रेरित करने वाली महाशक्ति कहता है। भले ही आज नारी अवरूद्ध हो वह कल अपने को अवश्य पहचान लेगी। वास्तव में पुरूष और नारी एक ही के दो प्रतिरूप हैं, उनका निलय एक ही है।

कवि ·ाहता है कि नारी उसके स्नेह का उत्तर अत्यन्त मुखरता से दे। बच्चन में इतनी अधीरता है कि वह तो सीधी बात कहता है कि मेरा स्वत्व मुझे दो। वह अपहरण की प्रवृत्ति में तो नहीं गया किन्तु वह निश्चय ही उसकी स्वीकृति चाह रहा है–

"प्राण कह दो आज तुम मेरे लिये हो
मैं जगत के ताप से डरता नहीं अब
मैं समय के शाप से डरता नहीं अब
आज कुंतल छांह मुझ पर तुम किये हो
रात मेरी, रात का श्रृंगार मेरा
आज आधे विश्व से अभिसार मेरा
तुम मुझे अधिकार अधरों पर दिये हो।"[1]

बच्चन की कविता अपने साथ एक ज्वार लायी थी। एक ओर छायावादी स्वर, जनता को देने योग्य देकर चुप हो गये थे, दूसरी ओर राजनीति में निराशा छाई हुई थी। सांस्कृतिक संवेदनात्मक चेतना का प्रवाह बच्चन ने ही बहाया। कुछ लोगों के मत में बच्चन ने निराशा का प्रचार किया परन्तु यह आंशिक सत्य है। बच्चन के स्वर में निराशा थी जरूर परन्तु यह निराशा बच्चन को निराश नहीं करती अपितु उन्हें संघर्ष करने और अंधकार से प्रकाश की ओर लाने में सहायक थी। उनके स्वर में जागरण था।

संध्या उनका प्रिय प्रतीक रहा है क्योंकि साँझ स्वप्निल है। साँझ थकन है, साँझ में निराशा का अंधकार है, साँझ में वेदना है, आशा का दीपक है–

प्राण संध्या झुक गयी गिरि, ग्राम, तरू पर
उठ रहा है क्षितिज के ऊपर सिन्दूरी चाँद
मेरा प्यार पहली बार लो तुम
औ धरा की पीन पलकों पर विनिद्रित
एक सपने सा मिलन का क्षण हमारा।"[2]

---

1. बच्चन: मिलन यामिनी : रचना–2, पृ0–34
2. बच्चन : मिलन यामिनी, रचना–2, पृ0–55

आन द का उद्रेक गीत की वेदना में जाकर अपनी तृप्ति ढूढ़ता है। यह कौन गा रहा है कि पीड़ा जागती जा रही है –

कौन गाता है कि सोई
पीर जागी आ रही है।[1]

वेदना में जाने कितने हृदय एक सी अनुभूति से भर जाते हैं। प्रेम की अधिक व्यक्त अनुभूति में हमें नारी की कोमलता मिलती है। बच्चन इस अनुभूति को जगाने में सबसे सफल रहे हैं और यही उनका महत्व है।

निष्कर्षत स्त्री पुरूष के रूप गुण जन्य पारस्परिक आकर्षण से उत्पन्न मादन भाव को प्रेम कहते हैं। प्रेम और काम का सम्बन्ध बहुत गहरा है। लौकिक या अलौकिक सभी प्रकार के प्रेम सम्बन्धों में हमारी काम भावना स्थूल या सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहती है। मनोवैज्ञानिकों ने प्रेम को एक ऐसी भूख बताया जिसका कामेषणा से गहरा सम्बन्ध है । बच्चन मनोवैज्ञानिकों के इस मत से सहमत है कि पुरूषऔर नारी का हर आकर्षण यौनाकर्षण हैं। इस प्रकार वे प्रेम में काम को महत्व देते हैं। परन्तु प्रेम केवल स्थूल भोग या काम ही नहीं है वरन् प्रेम काम का उज्जवलतम और परिष्कृत रूप है।

नारी सदैव से पुरूष के लिए एक रहस्य बनी हुई है और सदैव रहस्य रहेगी। नारी कई रूपों में बच्चन के जीवन में आई और उनके काव्य को प्रेरणा प्रदान की। नारी का हर रूप बच्चन के काव्य सृजन का प्रेरणा स्रोत रहा है। कभी नारी उनके जीवन में वियोग की स्थिति पैदा करती है तो कभी मृगतृष्णा का और कभी उनके

---

1. बच्चन: मिलन यामिनी, रचना0–2, पृ0–55

जीवन में प्रिय प्राण और सुधारक बन जाती है। चम्पा का प्ररंग मधुशाला और मधुबाला तक की रचनाओं का प्रेरणा स्रोत रहा तो श्यामा का प्रसंग जीवन पर्यन्त कवि का प्रेरणा देता रहा। प्रेमिका के रूप में आइरिस एक नए क्षितिज का निर्माण करती है और एक नई अनुभूति दे जाती है। परिणीता सतरंगिनी के रूप में तेजी के आगमन से कवि की सही नारी की तलाश पूरी हुई और उसका जीवन और काव्य इन्द्र धनुषी आभा से रंग गया।

****

## पंचम अध्याय

## प्रेमाभिव्यंजना का स्वरूप

जीवन में अनुभूत प्रेम, काव्य की भी मूलभूत प्रेरणा का अखण्ड स्रोत है। साहित्य शास्त्र में इस प्रेम पर सबसे अधिक विचार हुआ है जो कि श्रृंगार रस के शास्त्रीय निरूपण में प्राप्त है। श्रृंगार रस के मुख्यत: दो भेद है –

1. संयोग श्रृंगार
2. विप्रलम्भ या वियोग श्रृंगार

यद्यपि जीवन व्यवहार में संयोग ही आनन्द का पूर्ण अनुभव कराता है किन्तु काव्य में विप्रलम्भ श्रृंगार का भी बहुत महत्व है। इसका कारण यह है कि वियोग में प्रेमियों को जिन जीवन स्थितियों का अनुभव होता है वे उनके हृदय को स्निग्ध और मृदु बनाकर अधिक व्यापक व उदार बनाती है।

संयोग प्रेम का मधुरतम पक्ष है यह ऐसा पक्ष है जहाँ देह को अर्थ मिलता है एक दृष्टि से यह प्रेम का पार्थिव या शारीरिक पक्ष है। इसी से प्रेम सार्थक होता है मिलन के इसी धरातल से प्रेम सूक्ष्मता की ओर अग्रसर होता है। बिना संयोग या मिलन के प्रेम पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता। दूसरी ओर विरह प्रेम की परीक्षा या कसौटी है विरह में वासना की गंध उड़ जाती है। मांसल आसक्ति से मुक्ति मिल जाती है। विरह में प्रेम शारीरिक अपेक्षाओं से मुक्त हो जाता है और उच्चतर भाव भूमि पर अवस्थित हो जाता है।

बच्चन के काव्य में प्रेम व्यंजना के स्वरूप को समझने के लिए प्रेम के इन्हीं दो रूपों को आधार बनाया गया है।

**संयोग :**

कविवर बच्चन जी की प्रेम भावना में संयोग या मिलन पक्ष का महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चन ने प्रेम के इस पक्ष का निरूपण बड़ी सूक्ष्मता से किया है। उनकी प्रेम भावना आस्था जन्य है जो श्रृद्धा, विश्वास और निष्ठा के साथ निरन्तर सुदृढ़ता और पवित्रता की ओर अग्रसर होती है। मिलन सुख की मदिरा पीते हुए कवि प्रेम

की उस अवस्था में पहुँच जाता है जहाँ प्रिय ही उसके लिए सर्वस्व है। उसका सुख दुःख प्रिय में ही केन्द्रित हो जाता है। उसकी सुधि मात्र से वह उल्लसित हो हर्ष से झूमने लगता है। मिलन के इसी धरातल पर उसका प्रेम सूक्ष्मता की ओर अग्रसर होता है।

बच्चन के काव्य में प्रेम के संयोग पक्ष का विवेचन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है –

1. रूपाकर्षण
2. आस्था
3. हर्ष – उल्लास
4. मस्ती
5 मादकता (खुमारी)
6 स्वप्नशीलता
7. आशा
8. आतुरता आग्रह
9. अमित तृष्णा

**रूपाकर्षण** :

बच्चन की प्रेम भावना में रूप में सौंदर्य का विशेष महत्व रहा हैं। उन्होंने अपनी प्रेयसी के भाव भीने सौंदर्य का मनोरम चित्रण किया है। उस प्रेयसी के रूप का आकर्षण बड़ा ही दिव्य एवं अलौकिक है। कहीं – कहीं कवि ने नख–शिख वर्णन भी किया है। परन्तु स्थूल चित्रण की अपेक्षा कवि ने आंतरिक सौंदर्य उद्घाटन में अधिक रुचि दिखलाई हे। अपने प्रेमी के गुण स्वभाव प्रकृति का सौंदर्य, रूप का सामूहेक एवं सूक्ष्म प्रभाव आदि के चित्रण में कवि – कल्पना का अत्यन्त रम्य रूप मिलता है। कवि का रूप निरूपण बड़ा शालीन और सभ्य कोटि का हे।

बच्चन जी ने "मधुबाला" कविता में मधुबाला का रंग भीना चित्रण किया है। उसके रूप लावण्य तारूण्य, अंग प्रथा, देह कांति, अंग प्रत्यंग से छलक रहा रूप इन सबका मोहक चित्रण मधुबाला के रूप सौंदर्य के अन्तर्गत किया है। मधुबाला रूपी प्रेयसी का रूप सौन्दर्य अनुपम है। उस पर असंख्य मधु घट न्योछावर किये जा सकते हैं। उसके अंग – अंग से मस्ती यौवन और आनन्द छलकता है। उसकी मधुसिक्त चितवन विश्व को उन्मत्त बना देती है। सम्पूर्ण सृष्टि मधुबाला के इस अनिंद्य सौन्दर्य पर मुग्ध है। उसका रूप सौंदर्य अनुपम है।

प्रिय का अंग अंग मस्ती और आनन्द से छलक रहा है। उसके नूपुरों की ध्वनि से विश्व की पीड़ा विलीन हो जाती है –

मधुघट ले जब करती नर्तन
मेरे नूपुर की छूम छनन
में लय होता जग का क्रन्दन
झूमा करता मानव जीवन।"[1]

प्रिय का रूपाकर्षण इतना तीव्र है कि उसकी सुनहरी आभा से दिगम्बर सुवासित होने लगते हैं –

सोने की मधुशाला चमकी
मानिक द्युति से मदिरा दमकी
मधुगंध दिशाओं में गमकी ।"[2]

उस प्रिय के सुकोमल करों का स्पर्श जादुई है जो जड़वत मानव को चिर जीवन प्रदान करने की सामर्थ्य रखता है –

---

1. बच्चन: मधुबाला – बच्चन रचनावली–1, पृ0–81
2. वही, पृ0–82

ये मदिरा के मृत मूक घड़े
थे मूर्ति सदृश, मधुपात्र खड़े
थे जड़वत प्याले भूमि पड़े
जादू के हाथों से छूकर
मैंने इनमें जीवन डाला।"[1]

उसके स्पर्श मात्र से दुख दूर हो जाते हे वह पीड़ितों की संजीवनी हं। उसके हाथों के स्पर्श से हृदय के बड़े –बड़े दुख दूर हो जाते हैं –

मधु मरहम का लेपन कर मैं
अच्छा करती उर का छाला।"[2]

प्रियतम का रूप सौंदर्य असीम मनमोहक है, जादुई है। उसके रूप को देखकर लगता है जैसी उर्वशी या इन्द्राणी हो –

तू मन मोहनी रंभा सी
तू रूपवती रानी सी
तू मोहमयी उर्वशी सदृश
तू मानमयी इन्द्राणी सी[3]

उसके यौवन के कांतियुक्त रूप पर कामदेव भी मुग्ध हो गया है और उसने जैसे सृष्टि पर ध्वजारोहण कर लिया है –

विगत बाल्य वसुंधरा के
उच्च तुंग उरोज उभरे
तरू उगे हरिताभ पट पर
काम के ध्वज मत्त फहरे।[4]

---

1. बच्चन: मधुबाला– बच्चन रचनावली–1, पृ0–82
2. वही, पृ0–81
3. सतरंगिनी– बच्चन रचनावली–1, पृ0–334
4. मधुकलश : बच्चन रचनावली–1, पृ0–127

प्रिया की मधुसिंचित चितवन और मधुसिक्त स्वर सारे विश्व को उन्मत्त बना देने की क्षमता रखते हैं –

मैं इस आंगन की आकर्षण
मधु से सिंचित मेरी चितवन
मेरी वाणी में मधु के कण
मदमन्त बनाया करती मैं।"[1]

सम्पूर्ण प्रकृति पर इस अद्‌भुत और मदमस्त कर देने वाली सुन्दरी के रूपाकर्षण का प्रभाव है। प्रकृति भी उसके सौंदर्य से अभिभूत है –

लवलेश लास लेकर मेरा
झरना झूमा करता गिरि पर
सर हिल्लोलित होता वह रह
सरि बढ़ती लहरा – लहरा कर ।"[2]

उसके सौंदर्य का ही प्रभाव है कि उसके सुकोमल चरणों का स्पर्श पाकर ऊसर भी उर्बर हो जाता है और मरूस्थल भी मधुबन वन कर लहराने लगते हैं– उसके रूपाकर्षण और सौंदर्यपान को आकुल प्यासा भ्रमर दल आतुरता से उमड़ा चला आता हे और उनकी इस उन्मादिनी सी अवस्था देख चेतन तो क्या जड़ भी पागल हो उठता है –

उन मृदु चरणों का चुम्बन कर
ऊसर भी हो उठता उर्वर
तृण कलि कुसुमों से जाता भर
मरूथल मधुबन बन लहराते । [3]

---

1 मधुबाला : बच्चन रचनावली–1, पृ0–81

2. वही, पृ0–98

3. वही, पृ0–109

"मधुबाला के रूप सौन्दर्य पर जहाँ अखिल सृष्टि विमुग्ध है, वही अपने अंग प्रत्यंग से छलक रही रेशमी विभा देख, मधुकलश की असीम मदिरा बिखेरती गर्व से कह उठती है –

मैं हूँ इस नगरी की रानी
इसकी देवी इसकी प्रतिमा
इससे मेरा सम्बन्ध अटल
इससे मेरा सम्बन्ध अमर ।"[1]

सृष्टि इस अनिंद्य सुन्दरी पर मुग्ध है उसकी सुवासित साँस से जगत में बसन्त छलक उठता है –

अवतीर्ण रूप में भी तो है
मेरा इतना सुरभित शरीर
दो साँस बहा देती मेरी
जग पतझड़ में मधु ऋतु समीर ।[2]

सृष्टि उसके मृदु हास अनुरंजित अधरों पर मोहक हँसी देख उसी के रंग में रंग जाती है –

हास में तैरे नहाई यह जन्हाई ।[3]

प्रथम मिलन के वह अविस्मरणीय क्षण जब प्रिय के इस अनुपम सौंदर्य में तन–मन की सुधि खो बैठा था –

---

1. मधु कलश : बच्चन रचनावली– 1, पृ0– 126
2. मधुबाला: बच्चन रचनावली–1, पृ0–98
3. मिलन यामिनी – बच्चन रचनावली–2, पृ0–31

सुधि में संचित वह साँझ कि जब
रतनारी प्यारी सारी में, तुम प्राण, मिली नत, लाज भरी
मधु ऋतु मुकुलित गुलमुहर तले ।[1]

उस प्रिय के सौन्दर्य की स्मृति मात्र से पुनः पुनः कवि का मन मुग्ध हो उठता है –

तुम्हारे नील झील से नैन
नील निर्झर से लहरे केश ।[2]

कवि उस प्रिय के रूपाकर्षण से पिपासित है। अपने प्रिय को अधिकाधिक पाने हेतु वह प्रण सा कर बैठता है कि किसी भी प्रकार उसे अपने से विमुख न होने दूँगा। वह सदैव उस आकर्षण में बँधा रहना चाहता है –

तुमको छोड़ कहीं जाने को
हृदय आज स्वच्छंद नहीं ।[3]

वास्तव में रूप और सौन्दर्य का परस्पर अभिन्न सम्बन्ध होता है। रूप वही आकर्षित करता है जो सौन्दर्य युक्त हो और सौन्दर्य वही चिर सुन्दर होता है जो गुणयुक्त हो। कवि की प्रेयसी वास्तव में इसी रूप सौन्दर्य की सामाग्री है। जहाँ उसका रूप भ्रमरों को लुभाता है वहाँ उसके सौंदर्य पर भी वह मंत्र मुग्ध है। उसके एक आलिंगन में सौ – सौ हिम चोटियों की शीतलता और सौ– सौ ज्वालामुखियों की गर्माहट कवि अनुभव करता है–

---

1. मिलन यामिनी– बच्चन रचनावली–2, पृ0–63
2. प्रणय पत्रिका– बच्चन रचनावली–2, पृ0–115
3. वही, पृ0–128

शत हिम शिखरों की शीतलता
शत ज्वालामुखियों की दहकन
दोनों आभासित होती हैं
मुझको तेरे आलिंगन में ।"[1]

वह नख से शिख तक सौंदर्यमयी है – कहीं उसकी रसीली चितवन मन बाँध लेती है तो कहीं सुकोमल मधुर वाणी, कहीं उसके नील झील से नैनों में मन डूबा जाता है तो कहीं निर्झर से लहराते केशों में उलझ जाता है। उसके नैनों के दर्पण में ही जगत का सुख–दुख प्रतिबिम्बित हो उठता है –

इस पुतली के अंन्दर चित्रित
जग के अतीत की करूण व्यथा
जग के यौवन का संघर्षण
जग के जीवन की दुस:ह व्यथा ।[2]

उसके चेहरे पर दोनों आँखे ऐसी लग रही हों मानों स्वर्ग नरक के पथ पर रखे हुए दो दीपक हों –

तेरे आनन का एक नयन
दिनमनि सा दिपता उस पथ पर
जो स्वर्ग लोक को जाता है

× × ×

तेरे आनन का एक नेत्र
दीपक सा उस पग पर जगता
जो नरक लोक को जाता है।"[3]

---

1. सतरंगिनी– बच्चन रचनावली –1, पृ0–336
2. वही, पृ0–336
3. वही, पृ0–336

उसके भ्रू संचालन पर जग का विनाश निर्माण संभव है उसकी भृकुटी के झुकने मात्र से ही करूणा की वृष्टि होने लगती है किन्तु वही भृकुटी जब तन जाती है तो मानों स्वप्नों की दुनिया में अंगारे बरस पड़े हों।

सहसा यह तेरी भृकुटि झुकी
नभ से करूणा की वृष्टि हुई

× × ×

सहसा वह तेरी भृकुटि तनी
नभ से अंगारे बरस पड़े ।[1]

उस प्रिय के तन का आकार अति कमनीय है, मनमोहक और आकर्षित करने वाला है। उसके तलवे ओस से नहाए फूलों की मन भावन सुगन्ध से सुवासित हो रहे हैं –

तुम्हारे तन का रेखाकार
वही कमनीय कलामय हाथ

× × ×

करों में लहरों का लचकाव
कर तलो में फूलों का वास।[2]

अन्त में हम निःसंकोच कह सकते हैं कि बच्चन ने प्रेम के मिलन पक्ष के अन्तर्गत प्रेयसी के रूप सौन्दर्य का मनोरम निरूपण किया है। उस प्रेयसी का रूप सौन्दर्य अपरिमित, असीम मद भरा, सौंदर्य युक्त है। उसकी देह गरिमा का रूप का आकर्षण बड़ा ही दिव्य है। कहीं – कहीं कवि ने उसके नख शिख सौन्दर्य का चित्रण भी किया है। परन्तु रूप के स्थूल चित्रण की अपेक्षा कवि ने उसके आंतरिक सौंदर्य उद्घाटन में अधिक रूचि दिखाई है। अपने प्रेमी के गुण स्वभाव, आदि के चित्रण में कवि कल्पना का अत्यन्त रम्य रूप मिलता है। समग्रतः कवि का रूप निरूपण बड़ी ही शालीन और संभ्रान्त कोटि का है।

---

1. सतरंगिनी: बच्चन रचनावली–1, पृ0–336
2. बच्चन: प्रणय पत्रिका : बच्चन रचनावली–2, पृ0–115

<u>आस्था</u> :

प्रेम में आस्था का विशेष महत्व होता है। आस्था ही ऐसी भावभूमि है जहाँ प्रेम का अंकुर फूटता है। आस्था प्रेम को जीवन दर्शन का रूप दे देती है। प्रिय के प्रति अगाध श्रद्धा अखण्ड विश्वास, अटूट निष्ठा यह सब आस्था के अन्तर्गत आते हैं। इतना ही नहीं प्रिय में सूक्ष्म सत्य अथवा सत्-चित् आनन्द की परिकल्पना कर ली जाती हैं। बच्चन के प्रेम भावना में आस्था के इसी रूप के दर्शन होते हैं। वह मधु में प्रिय की परिकल्पना करता है और मधु को ही विश्व की परम शक्ति मानता है। इसलिए वह मदिरा पान से पूर्व मदिरा का नैवेद्य चढ़ाना चाहता है-

पहले भोग लगा लूं तेरा
फिर प्रसाद जग पायेगा।[1]

बच्चन की यह मदिरा जीवन की दुखदायिनी चेतना को विस्मृति के गर्त में गिराने वाली, प्रबल देव दुर्लभ, काल, निर्मम कर्म और निर्दय नियति के क्रूर और कठोर, कुटिल आघातों से रक्षा करने वाली असाधारण महौषधि हैं-[2] ऐसा सोमरस पाकर जीवन निश्चित ही नवोल्लास और नूतन स्फूर्ति से भर उठेगा। किन्तु यह मदिरा मिलेगी कहाँ इसका उत्तर कवि स्वयं देता है।

अलग- अलग पथ बतलाते सब
पर मैं यह बतलाता हूँ
राह पकड़ तू एक चला चल
पा जायेगा मधुशाला ।[3]

---

जैसी तत्वान्वेषी अपने निष्कंप चरण, अचंचल ध्यान और अटल निर्णय से सीधे एक पथ को पकड़कर अपने लक्ष्य पर पहूंच जाता है उसी प्रकार कवि का विश्वास है । परन्तु इस मदिरा का अधिकारी हर कोई नहीं है केवल वही इसे प्राप्त कर सकता है जिन्हें पीड़ा में आनन्द मिलता हो। जो दुखों और विषमताओं को हँसकर झेल सके ।

पीड़ा में आनन्द जिसे हो
आए मेरी मधुशाला ।[1]

जीवन के अन्तिम क्षण तक जैसे कवि ने आस्थावादी रहने का दृढ़ संकल्प ले लिया है और मृत्यु से भी भय नहीं खाता –

ज्ञात हुआ यम आने को है ले अपनी काली हाला
पंडित अपनी पोथी भूला साथ भूल गया माला
और पुजारी पूजा भूला ज्ञान सभी ज्ञानी भूला
किन्तु न भूला मरकर के भी पीने वाला मधुशाला।"[2]

कवि को विश्वास है कि उसकी हाला सारे विश्व को उसके विषमय जीवन से मुक्ति दिला सकती है। अपनी इसी आस्था के कारण ही वह समस्त दुखों को सह सका है –

मेरी मादकता से ही तो
मानव सब सुख दुख सका झेल।"[3]

---

1. मधुशाला : बच्चन रचनावली –1, पृ0–47
2. वही, पृ0–57
3. मधुबाला: बच्चन रचनावली–1, पृ0–98

अपनी इसी आस्था के बल पर वह हर बाधा से लड़ने का संकल्प ले लेता है और उससे पार होना चाहता है –

किन्तु होता सत्य यदि यह भी
सभी जलयान डूबे
पार जाने की प्रतिज्ञा
आज बरबस ठानता मैं
डूबता मैं किन्तु उतराता
सदा व्यक्तित्व मेरा ।[1]

उसे दृढ़ – विश्वास है कि वह कभी पराजित नहीं होगा। हार मानकर बैठ जाना उसने नहीं जाना। उसका ध्येय तो पथिको की भाँति चलते चले जाना है। कवि तो चिता तक भी अपने पैरों पर चलकर जाना चाहता है–

चिता निकट भी पहुँच सकूँ मैं
अपने पैरों पैरों चलकर ।[2]

अपनी इसी आस्था के बल पर कवि दुनिया को आजादी का संदेश देता फिर रहा है। कवि ने स्वयं को मंदिर – मस्जिद के द्वन्द्व से मुक्त कर लिया है और जगत को मस्ती का संदेश दे रहा है –

क्रोधी मोमिन हमसे झगड़ा
पंडित ने मंत्रों से जकड़ा
पर हम थे कब रूकने वाले
जो पथ पकड़ा, वह पथ पकड़ा
पथ भ्रष्ट जगत को मस्ती की
अब राह बताने हम आए।"[3]

---

1. मधुकलशः बच्चन रचनावली–1, उपृ0–143
2. निशा निमंत्रण : बच्चन रचनावली–1, पृ0–
3. मधुबाला : बच्चन रचनावली–1, पृ0–87

प्रेमी अपने मदिरालय को तीर्थ बनाना चाहता है और प्रियतम के चिरजीवी होने की कामना करता है। उसकी आस्था इतनी प्रबल है कि उसे कोई डिगा नहीं सका –

मुझको न सके ले धन कुबेर दिखलाकर अपना ठाट–बाट
मुझको न सके ले नृपति मोल दे माल खजाना राज–पाट ।[1]

युगों से चले आ रहे रूढ़िग्रस्त पथ को छोड़ पाखण्डों की उपेक्षा कर कवि जगत और जीवन का नया अर्थ प्राप्त करने को आतुर है। इस प्रयास में उसे सफलता नहीं मिल पाती किन्तु उसकी आस्था में कमी नहीं आती – वह फिर भी कर्म रत है –

गहनांधकार में पाँव धार
युग नयन फाड़, युग कर प्रसार
उठ – उठ गिर – गिर कर, बार – बार
मैं खोज रहा हूँ अपना पथ ।"[2]

कभी – कभी प्रतिकूल परिस्थितियों में मिलती असफलताओं से कवि खिन्न हो जाता है निराशा घेरने लगती है परन्तु अपनी दृढ़ आस्था के संबल से ही वह निराशा से बाहर निकल आता है। उसे पूर्ण विश्वास है कि सफलता मिल के रहेगी। यदि सफलता नहीं भी मिलती है तब भी निरन्तर कर्मशील बने रहना ही आस्थावना के लक्षण हैं –

न मंजिले हिली कभी
न मुश्किले मिली कभी
मगर कदम थमे नहीं
करार कौल जो ठना ।"[3]

---

1. मधुशाला : बच्चन रचनावली–1, पृ0–96
2. आकुल अंतर – बच्चन रचनावली–271
3. सतरंगिनी – बच्चन रचनावली–1, पृ0–346

कवि इसी आस्थाजन्य विश्वास के कारण ही बार–बार निराश मनःस्थिति से बाहर निकलता है और पुनः नीड़ का निर्माण करता है । दुखों की उपेक्षाओं की, कटुताओं की भयानक रात्रि से घिरा मन आशा के सबेरे को देखता है –

रात के उत्पात भय से
भीत जन – जन भीत कण–कण
किन्तु प्राची से उषा की
मोहनी मुस्कान फिर – फिर ।[1]

प्रिय में उसकी अटूट आस्था और निष्कम्प विश्वास है वह हर जगह प्रिय को देखता है और प्रकृति में उसके प्रभाव का अनुभव करता है –

उन मृदु चरणों का चुम्बन कर
ऊसर भी हो जाता उर्वर
तृण कलि– कुसुमों से जाता भर
मरूथल मधुबन बन लहराते । [2]

तभी तो कवि की प्रिय के प्रति आस्था और प्रबल हो उठती है और वह इस क्षण भंगुर जीवन के चिन्ताओं और भय शोक को भुला सकने की सामर्थ्य रखता है। भले ही जीवन में हर कदम पर चुनौती मिली हो, भले ही पथ अनिश्चित हो –

है ज्ञात हमें नश्वर जीवन
नश्वर इस जगती का क्षण – क्षण
है किन्तु अमरता की आशा
करती रहती उर में क्रंदन
नश्वरता और अमरता का
अब द्वन्द्व मिटाने हम आए।[3]

---

1. सतरंगिनीः बच्चन रचनावली–1, पृ0–349
2. वही, मधुबालाः बच्चन रचनावली–1, पृ0–109
3. वही, पृ0–88

कवि को इस बात की परवाह नहीं कि दुनिया इस पर व्यंग्य कर रही है या हँस रही है। वह तो अपने प्रेम पथ पर निर्बाध गति से बढ़ा जा रहा है क्योंकि दो नयन उसकी प्रतीक्षा में खड़े हैं –

मृत्यु पथ पर भी बढ़ूँगा
मोद से यह गुनगुनाता
अंत यौवन अंत जीवन
का मरम क्या
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं ।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चन के प्रेम के मिलन पक्ष में आस्था का विशेष महत्व है। आस्था ही मिलन सुख की पृष्ठभूमि है। आस्था द्वारा ही हृदय में प्रेम का अंकुर फूटता है और वह पल्लवित होते हुए मिलन सुख के चरम बिन्दु तक पहुँचने में सक्षम होता है।

**<u>हर्ष – उल्लास</u>** :

प्रिय के निकट होने का सुख प्रेमी को पूर्ण बना देता है। प्रिय यदि पास में हैं तो दुनिया का कोई भी दुख उसे विचलित नहीं कर सकता। प्रिय के प्रति दृढ़ आस्था निश्चय ही मिलन सुख को उल्लास की चरम सीमा तक पहुँचा देती है। उस समय प्रेमी इतना प्रसन्न और उल्लसित होता है कि उसे मान अपमान विचलित नहीं कर पाते। वह अपना परिचय स्वयं देता है –

"उल्लास चपल, उन्माद तरल, प्रतिपल पागल मेरा परिचय।[2]

---

1. सतरंगिनी: बच्चन रचनावली–1, पृ0–365
2. बच्चन: मधुबाला: वच्चन रचनावली–1, पृ0– 97

प्रिय का मिलन एक प्रेमी के लिए सर्वाधिक सुखदायी होता है वह उस मिलन क्षण में इतना उल्लसित है कि हर्ष से गा उठता है –

है आज भरा जीवन मुझमें
है आज भरी मेरी गागर ।[1]

प्रिय पास है तो वह अपने को पूर्ण समझने लगता है अभी तक वह अपूर्ण था एकाकी था। उसका हर्ष उसका उल्लास देखकर प्रकृति भी जैसे गा उठती है सृष्टि के कण – कण में प्रेमी युगल के मिलन व्यापार की कहानी छिपी हुई है ।

कितनी बार गगन क नीचे
प्रणय मिलन व्यापार हुआ है
कितनी बार धरा पर प्रेयसि
प्रियतम का अभिसार हुआ है [2]

प्रियतम की सुधि मात्र से वह रोमांचित हो उठता है और सम्पूर्ण सृष्टि को अपने साथ नाचने का आग्रह कर उठता है –

गगन में सावन धन छाए
न क्यों सुधि साजन आए
मयूरी आँगन – आँगन नाच
मूयरी
नाच मगन मन नाच ।"[3]

---

1. बच्चन : मधुकलश – बच्चन रचनावली–1, पृ0–125
2. बच्चन : आकुल अन्तर: बच्चन रचनावली–1, पृ0–283
3. बच्चन : सतरंगिनी, रचनावली–1, पृ0–337

सम्पूर्ण सृष्टि इतनी खूबसूरत कैसे हो गयी कवि इसका रहस्य नहीं जान पाता। सम्पूर्ण प्रकृति में इतना उल्लास इतनी मस्ती – क्या वही सम्पूर्ण सृष्टि को आत्मानन्द में गाते देख रहा है –

राशियों में रंग पहन ली आज
किसने लाल सारी
फूल कलियों से प्रकृति ने माँग
है किसकी सँवारी
कर रहा है कौन फिर श्रृंगार ?"[1]
वीणा बोलती है

सुख की एक साँस के लिए कवि अमरत्व तक को निछावर करने को तैयार है।

सुख की एक सांस पर होता है
अमरत्व निछावर
तुम छू दो मेरा प्राण अमर हो जाए।"[2]

और उन दो नयनों के अभिसार के लिए वह दुर्जेय दुर्गम घाटियों को व्यग्रता से लाँघता आ रहा है। उसे विश्व की अवहेलना सह्य है पर कोई बन्धन उसे स्वीकार नहीं है क्योंकि दो नयन उसकी प्रतीक्षा में खड़े हैं –

पंथ क्या, पथ की थकन क्या
स्वेद कण क्या
दो नयन मेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं ।[3]

---

1. बच्चन : सतरंगिनी – बच्चन रचनावली–1, पृ0–353
2. वही, पृ0–356
3. वही, पृ0–364

अभि.ार के समय प्रिय सामने है किन्तु उसे अनदेखा करे, यह उपेक्षा प्रेमी कहाँ सह सकता है। उसका प्रिय उसके सामने है । वह मस्ती में डूब कर गा उठता है –

सो न सकूँगा और न तुझको
सोने दूँगा हे मन वीने ।[1]

कवि अपना अंतरंग उल्लास व्यक्त करना चाहता है। उसके मनांगन पर चाहत की चाँदनी फैली है।

"चाँदनी फैली गगन में चाह मन में"[2]

कवि के मिलन सुख के स्वप्न में ही मद होश है। उसे प्रिय आगमन की आशा है। इसी से वह उद्वेलित है –

यह कली का ह्रास आता है किधर से
यह कुसुम का श्वास आता है किधर से
हर लता तरू में प्रणय की रागिनी है
आज कितनी वासनामय यामिनी है।[3]

प्रिय उसे नैकट्य प्रदान कर रहा है। इस समय उसे जगत के क्रोध का कोई भय नहीं है उसे तो बस प्रिय का साथ ही पर्याप्त है अब तो वह इतना भाव–विभोर है जैसे सम्पूर्ण विश्व ही उसकी बाँहों में समा गया हो –

---

1. बच्चन: प्रणय पत्रिका: बच्चन रचनावली–1, पृ0–97
2. बच्चन: मिलन यामिनी– बच्चन रचनावली–2, पृ0–23
3. वही, पृ0–30

रात मेरी रात का श्रृंगार मेरा
आज आधे विश्व से अभिसार मेरा
तुम मुझे अधिकार अधरों पर दिये हो।[1]

प्रिय से दूरी उसे एक क्षण भी सहन नहीं है वह इतना उल्लसित है कि एक पल भी खोना नहीं चाहता –

पास आओ, चन्द्रमा के होठ चूमूँ
कुन्तलों के बादलों के साथ घूमूँ[2]

कवि सोचता है मैं ऐसा कौन सा काम कर दूं जिससे प्रिय के हृदय में को आनन्द पहुँचे । वह स्वयं हर्षित है और अपने प्रिय को इस आनन्द के रस में डुबो देना चाहता है । उसका एक ही ध्येय रह जाता है प्रिय को प्रसन्न रखना–

एक यही अरमान गीत बन, प्रिय, तुमको अर्पित हो जाऊँ।[3]

परन्तु उसे सन्तुष्टि नहीं है। इस सुख को पाने के लिए बहुत कुछ सहना पड़ता है – जगत की उपेक्षा, व्यंग्य, बिरहाग्नि आदि क्या क्या नहीं सहे हैं। प्रिय ने इन सभी को सहा है तब कहीं यह मिलन की रात्रि आई है जिसमें वह युग–युग की कल्पनाओं को एक पल में पा जाना चहाता है –

है अगनित अरमान, मिलन की
ले दे के दो घड़िया
झूल रही पलकों पर कितने
सुख सपनों की लड़ियाँ ।[4]

---

1. बच्चन : मिलन यामिनी– बच्चन रचनावली–2, पृ0–34
2. वही, पृ0–28
3 बच्चन: प्रणय पत्रिका– बच्चन रचनावली–2, पृ0–97
4 वही, पृ0–60

मस्ती:

बच्चन की मधुशाला वस्तुतः मस्ती की पीठिका है। मस्ती के बिना क्या यौवन । यौवन के प्रत्येक उल्लास के पीछे मस्ती मदिरा की शै प्रधान होती है। मिलन के सुख के उल्लास से झूमता हुआ कवि मस्त हो प्रिय को अपने ही हाथों भोग लगाने की जिद करता है। कवि की मधुशाला वह जगह है जहाँ हृदय की दग्धता शान्त हो जाती है। यहाँ मदिरा की नहीं बल्कि मस्ती की भेंट मिलती है –

भेंट जहाँ मस्ती की मिलती
मेरी तो वह मधुशाला।[1]

प्रेमी मिलन सुख से इस तरह अभिभूत है कि वह प्रियतम की सुधिमात्र से ही रोमांचित हो उठता है –

पीकर मदिरा मस्त हुआ तो
प्यार किया क्या मदिरा से
मैं तो पागल हो उठता हूँ
सुन लेता यदि मधुशाला ।"[2]

प्रेम के इस स्तर पर पहुँचने के बाद जबकि प्रियतम का नाम सुनने मात्र से प्रेमी पागल हो उठता हो तो उसके लिए हर दिन हर पल मस्ती का हो उठता है –

दुनिया वालो किन्तु किसी दिन
आ मदिरालय में देखो
दिन को होली रात दिवाली
रोज मनाती मधुशाला ।[3]

---

1. बच्चन: मधुशाला : बच्चन रचनावली–1, पृ0–62
2. वही, पृ0–60, पद–106
3. वही, पृ0–48, पद–26

इस मस्ती में प्रेम के उच्च धरातल पर पहुँच प्रेमी में अपने प्रिय में ही रमें रहने की उत्कट लालसा रहती है –

मैं तुझको इक छलका करता
मस्त मुझे पी तू होता
एक दूसरे को हम दोनों
आज परस्पर मधुशाला ।[1]

सुख अकेले भोगने की चीज नहीं है। सुखी व्यक्ति अकेला नहीं रहना चाहता वह अपना सुख सबके बीच बांटना चाहता है। प्रेमी व्यक्ति भी अपनी प्रेम भरी मस्ती को सार संसार में बाँटना चाहता है। वह समाज को मस्ती की राह पर ले जाना चाहता है –

पथ भ्रष्ट जगत को मस्ती की
अब राह बताने हम आए।[2]

प्रेमी अपनी मस्ती में इतना निमग्न है कि उसे मान अपमान का ध्यान नहीं रह जाता। वह सुख दुख दोनों में सम भाव स्थापित कर लेता है और उन्हीं सुख दुख रूपी लहरों पर निर्द्वन्द्व होकर बहता चला जाता है –

मैं जला हृदय में अग्नि दहा करता हूँ
सुख दुख दोनों में मस्त रहा करता हूँ
जग भाव सागर तरने को नाव बनाए
मैं भव मौजों पर मस्त बहा करता हूँ।"[3]

---

1. बच्चन: मधुशाला : बच्चन रचनावली–1, पृ0–51
2. बच्चन: मधुबाला: बच्चनउ रचनावली–1, पृ0– 87
3. वही, पृ0–112

प्रेमी अपने प्रिय के अतिरिक्त कुछ भी देखना सुनना नहीं चाहता, जीवन के अन्तिम समय में भी वह प्रिय का ही सामीप्य चाहता है। वास्तव में यह प्रेम की उत्कट अवस्था कही जा सकती है जहाँ चारों ओर प्रिय ही प्रिय दिखलाई पड़ता हो। प्रेमी सारे संसार को इसी मार्ग पर चलाना चाहता है। वह सारे संसार को मस्ती का संदेश देता फिरता है –

जिसको सुनकर जग झूम, झुके, लहराये
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूं ।[1]

कवि अपना परिचय इस प्रकार देता है –

"मिट्टी का तन मस्ती का मन, क्षण भर जीवन मेरा परिचय।[2]

अपनी इस मस्ती में प्रेमी संसार के सुख – दुख चिन्ता शोक सबसे परे हो जाता हैं –

अब चिन्ताओं का भार कहाँ
अब क्रूर कठिन संसार कहाँ
अब कुसमय का अधिकार कहाँ
भय शोक भुलाने वाला हूँ ।[3]

**मादकता (खुमारी) :**

प्रेमी अपने प्रिय के मिलने से इतना अभिभूत है कि उसे प्रेम का नशा छा गया है। वह निरन्तर प्रेमी का स्मरण करता रहता है। इस प्रकार मादकता के कारण संसार में विक्षिप्त कहलाता है –

---

1. बच्चन: मधुबाला: बच्चन रचनावली–1, पृ0–111
2. बच्चन: मधुबाला– बच्चन रचनावली–1, पृ0–95
3. बच्चन : वही, पृ0–85

लिए मादकता का संदेश फिरा मैं कब से जग के बीच
कहीं पर कहलाया विक्षिप्त, कहीं पर कहलाया मैं नीच।"[1]

परन्तु इस प्रकार तिरस्कृत होने पर भी प्रेमी अपनी मादकता कम नहीं होने देना चाहता। उसे संसार का कोई भय नहीं है–

वह मादकता ही क्या जिसमें बाकी रह जाए जग का भय ।[2]

प्रेमी को अपने प्रेम पर इतना विश्वास है कि वह इसी के सहारे दुनिया के तमाम सुख दुखों को समत्व रूप से झेल सका है। मनुष्य को यह भलीभाँति ज्ञात है कि यह जगत नश्वर है किन्तु मानव फिर भी अमर होना चाहता है। प्रेमी अपनी मादकता से जगत में नश्वरता और अमरता का द्वन्द्व मिटा देना चाहता है–

है ज्ञात हमें नश्वर जीवन
नश्वर इस जगती का क्षण–क्षण
है, किन्तु अमरता की आशा
करती रहती उर में क्रंदन
नश्वरता और अमरता का
अब द्वन्द्व मिटाने हम आए ।[3]

प्रेमी जीवन में प्रेम रूपी मधु पान कर और उसकी मादकता का सम्मान करन की बात भी करता है –

---

1. बच्चन: मधुबाला– बच्चन रचनावली , पृ0–102
2. वही, पृ0–102
3. वही, पृ0–88

कल जीवन में मधुपान करो
जग के रोदन को गान करो
मादकता का सम्मान करो
यह पाठ पढ़ाने वाला हूँ।[1]

प्रेमी अपनी इसी मादकता में डूबा रहना चाहता है उसे सर्वत्र प्रिय के ही दर्शन होते हैं। वह जो भी खाता पीता है उसे सब हाला ही लगती है। सभी सूरतों में उसे साक़ी की ही सूरत दिखाई देती है –

अधरों पर हो कोई रस जिह्वा पर लगती हाला
भोजन हो कोई हाथों में लगता रखा है प्याला
हर सूरत साकी की सूरत में परिवर्तित हो जाती
आंखों के आगे कुछ भी हो आँखों में है मधुशाला।[2]

उसकी मादकता इस हद तक पहुँच चुकी है कि चारों ओर उसे प्रिय ही दिखाई पड़ता है। चाहे वह जिधर आँखे फेरे उसे सामने प्रिय की सूरत ही नजर आती है –

किसी ओर मैं आँखे फेरूँ दिखलाई देती हाला
किसी ओर मैं आँखें फेरूँ दिखलाई देता प्याला।[3]

प्रेमी कल की चिन्ता छोड़ आज में रहता है। उसे लगता है कि क्यों वह भविष्य की चिन्ता में अपना वर्तमान नष्ट करे। उसे भविष्य पर विश्वास नहीं। उसे जो अवसर मिला है उसका भरपूर उपयोग करना चाहता है ।

---

1. बच्चन: मधुबाला–बच्चन रचनावली–1, पृ0–86
2. वही, मधुशाला– बच्चन रचनावली–1 पृ0–53
3. वही, पृ0–50

कल ? कल पर विश्वास किया कब करता है पीने वाला ।
आज मिला अवसर तब फिर क्यों मैं न छकूँ जी भर हाला ।[1]

और फिर यहाँ मधुपान करने कौन आता है। प्रेमी तो केवल प्रिय को देखकर ही मदहोश हो जाता है –

मधु कौन यहाँ पीने आता
है किसका प्यालों से नाता
जग देख मुझे मदमाता है।[2]

इतना ही नहीं प्रिय तो यहाँ तक कहता है कि पीने की बात तो दूर मैं ता उसका नाम सुनकर पागल हो उठता हूँ ।

स्वप्नशीलता :

प्रेम में एक स्थिति ऐसी भी आती है जब मन स्वप्नों में ही डूबे रहने की कामना करता है । बच्चन भी अनेक स्थलों पर अपने प्रिय के स्वप्नों में डूबे नजर आते हैं। उनकी मधुबाला (प्रेयसी) को भी यह ज्ञात है कि यहाँ मधु पीने कोई नहीं आता बल्कि लोग उसके स्वप्नों में डूबे रहना चाहते हैं –

यह स्वप्न विनिर्मित मधुशाला
यह स्वप्न रचित मधु का प्याला
स्वप्निल तृष्णा स्वप्निल हाला
स्वप्नों की दुनिया में भूला
फिरता मानव भोला भाला।[3]

---

1. बच्चनः मधुशालाः बच्चन रचनावली–1, पृ0–64
2. बच्चन मधुबाला– बच्चन रचनावली–1, पृ0–83
3. बच्चन : मधुबाला - बच्चन रचनावली–1, पृ0–84

प्रेमी [.]य की स्मृति में इस तरह डूबा है कि वह उसका नाम सुन कर ही मतवाला हो उ[.]ता है। वह प्रिय के स्वप्नों में ही डूबा रहना चाहता है उसे प्रिय के मिलन से अधिक सुखद उसके मिलने का अरमान लगता है –

प्यार नहीं पा जाने में है, पाने के अरमानों में
पा जाता तब हाय न इतनी प्यारी लगती मधुशाला।[1]

क्योंकि प्रेमी जानता है कि वास्तविक जीवन में मिलन उतना आनंद दायक नहीं होगा। वास्तविक जीवन में तो मिलन के साथ यथार्थ का कड़वा सच भी होगा। उस मिलन में खोने का भय हमेशा बना रहेगा।

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य भी हे कि जब तक कोई वस्तु अप्राप्त रहती है उसके प्रति आकर्षण तीव्र रहता है परन्तु जैसी ही वह वस्तु प्राप्त हो जाती है उसका आकर्षण घट जाता है –

खोने का भय हाय लगा है पाने के सुख के पीछे
मिलने का आनन्द न देती मिलकर के भी मधुशाला।[2]

इसलिए वह कल्पना में ही मिलन के सुख को प्राप्त करना चाहता है क्योंकि यह कल्पना उसकी अपनी है इस कल्पित प्रिय के मिलन से उसे कोई भय नहीं न तो खोने का है और न ही उसका आकर्षण घट जाने का। उसे तो यही सोचकर आनन्द आता है कि जब प्रिय की प्रतीक्षा इतनी मधुर इतनी मदमस्त कर देने वाली है तो यदि वह सामने आ जाए तो क्या होगा इसकी कल्पना से ही वह झूम उठता है –

---

1. बच्चन: मधुशाला : बच्चन रचनावली–1, पृ0–56

2. वही, पृ0 – 56

बैठ कल्पना करता हूँ, पग
चाप तुम्हारी मग से आती
रग – रग से चेतनता खुलकर
आँसू के कण सी भर जाती ।

× × ×

"अपनी बाँहों में भरकर प्रिय कंठ लगाते तो क्या होता ।"[1]

इसलिए प्रेमी प्रेम में विस्मृति को ही सुखदायी मानने लगता है। क्योंकि इस विस्मृति से वह प्रिय का सतत् सानिध्य प्राप्त कर सकता है। यह विस्मृति रूपी मुक्ति ही कवि का मोक्ष हैं उसे पल भर का चैतन्य असह्य हैं –

अब ध्येय विसुधि विस्मृति
है मुक्ति यही सुखदायी
पल भर की चेतनता भी
अब सह्य नहीं ओ भोली ।[2]

प्रेमी अपने प्रिय के स्वप्नों में इस तरह डूब गया है कि उसे प्रिय के अतिरिक्त और कुछ न तो दिखाई दे रहा है न सुनाई दे रहा है –

किसी ओर मैं आँखे फेरूँ दिखलाई देती हाला
किसी ओर देखूँ दिखलाई पड़ती मुझको मधुशाला ।[3]

वह प्रिय का स्मरण करके ही मतवाला है। प्रिय के मिलन के सुख से रोमांचित है। वह अपने प्रिय के स्वप्नों में डूबा उसे बस देखते ही रहना चाहता है उसे इस बात की कोई शिकायत नहीं कि उसकी प्रियतमा उसको चाहती भी है या नहीं –

---

1. बच्चनः प्रणय पत्रिका– बच्चन रचनावली–2, पृ0–125
2. वही, मधुबाला– बच्चन रचनावली–1, पृ0–108
3. बच्चनः मधुशाला : बच्चन रचनावली–1, पृ0–58

साकी ‌‌‍‍‌मेरी ओर न देखो मुझको तनिक मलाल नहीं
इतना ही क्या क्रम है आँखों से देख रहा हूँ मधुशाला ।[1]

आशा :

प्रिय के नैकट्य और मिलन सुख से पुलकित हृदय उत्सुकता और कौतूहल से युगों-युगों तक संजोए स्वप्न को चिरस्थायी बनाने की आशा करने लगता है। बच्चन के प्रेम में हमें इसी प्रकार की आशा के चिन्ह मिलते हैं ।

कवि सम्पूर्ण विश्व को प्रसन्न और उल्लसित देखने की चिर आकांक्षा रखता है। कभी तो उसके स्वप्नों का समय आएगा –

फिरेंगे पशु जोड़े ले संग
संग अज-शावक, बाल कुरंग
फड़कते हैं जिनके प्रत्यंग।[2]

वह अनुभव करता है कि जीवन के प्रत्येक सुख दुख में उसके प्रिय का हाथ है। प्रेम की भावभूमि में वह सृष्टि के हर उल्लास और पीड़ा को विस्मृत कर लेता है। किन्तु प्रिय ने उसे विस्मृत किया हो अथवा तिरस्कृत किया हो, ऐसा उसे कभी आभास नहीं हुआ, अपितु उसकी तो हर शिरा-शिरा, प्रिय-मिलन की आशा में प्रतीक्षारत है –

मधु सरस जगत का मुझको
आनन्द न देता उतना
जितना तेरे काँटो से
पग – पग पर पद बिंधवाना [3]

---

1. बच्चन: मधुशाला : बच्चन रचनावली-1, पृ0-63
2. बच्चन: प्रारम्भिक रचनाएं, बच्चन रचनावली-3, पृ0-461
3 वही।

प्रिय पीड़ा भी उसके लिए आनंददायी है क्योंकि उसे आशा है कि प्रिय से मिलन के सुख के समक्ष ये पीड़ा कोई मायने नही रखती । उसे यह तथ्य भलीभाँति ज्ञात हो गया है कि पीड़ा आनन्द की पृष्ठभूमि है। दुख में ही सुख के अंकुर छिपे हैं। विनाश में ही निर्माण के स्वर निहित हैं। इसीलिए वह पीड़ा को हँसते हुए प्रिय मिलन के आनंद अमृत के प्रति कामना रत है।

उसके लिए हर दिन होली और रात दिवाली है –

दिन की होली रात दिवाली
रोज मनाती मधुशाला ।[1]

किन्तु कभी कभी उसे अपनी आशाओं पर संदेह भी होने लगता है। प्रिय मिलन उसे मृग मरीचिका सम जान पड़ता है परन्तु उसका हृदय निराश नहीं होता उसे लगता है यह ठिठोली मात्र है –

कभी उजाला आशा करके
प्याला फिर चमका जाती
आँख मिचौनी खेल रही है
मुझसे मेरी मधुशाला ।[2]

आशा ही सब सुखों की जननी है। निराश मानव यदि आशा का अवलम्बन लेकर सुख की कल्पना में ही आनन्द ले लेता है तो इसमें कोई बुराई भी नहीं है –

---

1. बच्चन : मधुशाला– बच्चन रचनावली–1, पृ0–48

2 वही, पृ0– 58

जो बसे है वे उजड़ते हैं
है प्रकृति के जड़ नियम से
पर किसी उजड़े हुए को
फिर बसाना कब मना है
है अंधेरी रात पर दीया जलाना कब मना है।[1]

आशा के सतरंगे स्वप्न मन सदा ही देखा करता है। भले ही वह सुख में हो या दुख में। ये आशा के स्वप्न ही तो है जो उसे दुख के पलों में भी आनन्द की डोर थमा देते हैं –

सफल न एक चाह भी
सुनी न एक आह भी
मगर नयन भुला सके
कभी न स्वप्न देखना ।[2]

कवि को इस अज्ञात आशा के प्रति आश्चर्य भी होने लगता है जो उसे विरह की काली रात में मिलन सुख का संदेश देने लगता है और वह पूंछ बैठता है–

बोल आशा के विंहगम
किस जगह पर तू छिपा था
जो गगन पर चढ़ उठाता
गर्व से निज तान फिर – फिर [3]

यह आशा ही है जो उसे अपने उजड़े हुए नीड़ के निर्माण की प्रेरणा देता है और प्रेमी अपने जीवन के सारे दुखों को भूलकर पुनः नीड़ के निर्माण में जुट

---

1. बच्चनः सतरंगिनी, बच्चन रचनावली–1, पृ0–340
2. वही, पृ0– 347
3. वही, पृ0– 349

जाता है। इस निर्माण में प्रिय ने ही उसे बल देकर पुनर्जीवित सा कर दिया है। प्रिय के ही कारण उसने पुनः मृत्यु पर विजय पाई है। वह उसे ऐसा आह्वान मान लेता है जिसकी उपेक्षा दुष्कर ही नहीं असम्भव भी है। सृष्टि में यह आशा नाश को चुनौती देने लगती है।

नाश को देती चुनौती
यदि नहीं निर्माण तुम हो
कौन तुम हो ? [1]

**आतुरता –आग्रह :**

मिलन में आतुरता, आग्रह का अद्‌भुत नशा छाया रहता है। कभी प्रिय मिलन में आकुलता, आतुरता का भाव जग जाता है तो कभी आग्रह का। कभी उन्मादिनी सी अवस्था आ जाती है तो कभी अमिट तृष्णा बलवती होकर मुखरित हो उठती है। बच्चन की प्रणय भावना इन सभी पुलिनों से टकराती उत्तरोत्तर पूर्णता की ओर अग्रसर होती दिखाई देती है –

गुंजित करती मदिरालय को
लाचार यही मैं करने को
अपने से ही फूटा पड़ता
मुझमें लय ताल बँधी मधु स्वर ।[2]

कहीं पर कवि अपने प्रिय से आग्रह करने लगता है कि तू बात करते–करते मुझे विस्मृतावस्था में डूबा जान चुप क्यों हो गया –

---

1. बच्चन: सतरंगिनी– बच्चन रचनावली–1, पृ0–354
2. बच्चन: मधुकलश – बच्चन रचनावली–1, पृ0–126

बात करते सो गया तू
स्वप्न में फिर खो गया तू
रह गया मैं और आधी रात, आधी बात
साथी सो न कर कुछ बात ।[1]

कभी वह व्याकुल हो प्रिय मिलन की आतुरता से प्रतीक्षा करता उन्मादित सा गा उठता है –

कितनी बार गगन के नीचे
प्रणय मिलन व्यापार हुआ है।

कितनी बार धरा पर प्रेयसि
प्रियतम का अभिसार हुआ है।[2]

कहीं वह स्वयं की इस अवस्था पर जैसे लज्जा का अनुभव करने लगता है। वह अपने मन पर प्रतिबन्ध लगाने को कहता है –

इतने मत उन्मत्त बनो ।[3]

प्रिय की स्मृति मधु भरी है, उल्लास दायिनी है। उसका मन नाचने को आतुर है। वह प्रिय की सारी सहानुभूति, सम्पूर्ण स्नेह पा जाने को आतुर है। अगर प्रिय न ही उसे न समझा तो और कौन समझ पायेगा –

मेरे उर की पीर पुरातन
तम न हरोगे कौन हरेगा ।[4]

---

1. बच्चन : निशा निमंत्रण – बच्चन रचनावली–1, पृ0–175
2. बच्चनः आकुल अन्तरः बच्चन रचनावली–1, पृ0–283
3. वही, पृ0–283
4. बच्चनः प्रणय पत्रिका – बच्चन रचनावली–2, पृ0–125

प्रेमी .हता है कि उसका प्रिय सिर्फ उसी का होकर रहे किसी और का उस पर अधिकार न हो। यही आश्वासन वह प्रिय से भी पाना चाहता है--

"प्राण कह दो आज तुम मेरे लिए हो।"[1]

वह अपने प्रिय से प्यार पाने की आशा करता है, उसे लगता है कि संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं होगा जिसे प्यार की कमी न खली हो इसीलिए वह प्रिय से सहानुभूति चाहता है प्रेम चाहता है –

"कहाँ मनुष्य है जिसे
कमी खली न प्यार की।

"इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे दुलार दो ।"[2]

वह अपने प्रिय को सर्वस्व देने का आग्रह करता है। प्रेमी आतुरता से प्रिय से मिलन की कामना कर रहा है। वह आग्रह करता है –

अब तुम्हे डर लाज किससे लग रही है
आँख केवल प्यार की अब जग रही है
मनाना ना जानता हूँ मान कर लो।[3]

कवि पुनः प्रिय को आमंत्रण देता है कि वह उसके प्यार को स्वीकार करे। उसका मन प्रेम से भरा हुआ है वह अपने प्राणों की बीन बजाने को आतुर है। कवि अपनी प्रिया को डर लाज, संकोच छोड़कर स्वच्छन्द प्रेम का आमंत्रण दे रहा है –

---

1. बच्चन: मिलन यामिनी –बच्चन रचनावली–2, पृ0–34
2. बच्चन: सतरंगिनी– बच्चन रचनावली–1, पृ0–354
3. बच्चन: मिलन यामिनी–बच्चन रचनावली–2, पृ0–31

"इस तरह मिलना हुआ सम्भव कहीं है
शील मुझसे छूटने वाला नहीं है,
तू नहीं संकोच तजना चाहती है
प्राण की यह बीन बजना चाहती है।"[1]

इस मिलन की बेला में सारी प्रकृति भी रंगी हुई है। आज की रात भी वासनामयी है। प्रिय को हर लता तरू में प्रणय की रागिनी सुनाई पड़ रही है। वह प्रियतम से आग्रह कर उठता है –

"पास आओ चन्द्रमा के होंठ चूमूँ
कुन्तलों के बादलों के साथ घूमूँ।[2]

**अमिट तृष्णा :**

मिलन के क्षण कब बीत जाते हैं पता ही नहीं लगता। प्रेमी को लगता है कि जैसे अभी- अभी तो उसका प्रियतम आया है और उसके जाने का समय हो गया है। मिलन के सुख से प्रेमी की तृष्णा शान्त नहीं हो सकती बल्कि और बढ़ जाती है। कितनी ही बार उसने प्रिय मिलन का सुख प्राप्त किया है परन्तु फिर भी उसे तृप्ति नहीं होती। वह युगों से इसी सुख के पीछे भाग रहा है–

बस अब पाया। कह कह
कब से दौड़ रहा इसके पीछे
किन्तु रही है दूर क्षितिज सी
मुझसे मेरी मधुशाला।[3]

---

1. बच्चन: मिलन यामिनी– बच्चन रचनावली–2, पृ0–30
2. वही, पृ0–28
3. बच्चन: मधुशाला– बच्चन रचनावली–1, पृ0–58

प्रेमी को लगता है कि उसे उसके प्रिय ने क्षण भर के लिए ही क्यों प्यार किया। उसके दिल में सैकड़ों अरमान हैं जिन्हें वह पूरा करना चाहता है इतने कम समय में वह कैसे कर पायेगा –

हैं अगनित अरमान मिलन की
ले दे के दो घड़ियाँ
झूल रही पलकों पे कितने
सुख सपनों की लड़ियाँ ।[1]

प्रेमी अपने प्रिय से आग्रह करता है कि वह उसके हृदय में अपने प्यार से संतोष भर दे। उसे संतुष्ट कर दे उसकी तृष्णा बुझती नहीं उसे बुझा दे –

है अधर में रस मुझे मदहोश कर दो
किन्तु मेरे प्राण में संतोष भर दो ।"[2]

प्रिय जानता है कि प्रेम का पथ बड़ा ही विषम है यहाँ हर व्यक्ति तृप्ति के लिए आता है परन्तु और अधिक अतृप्त हो कर जाता है। यहाँ तृप्ति एक छलावा है एक मृग तृष्णा है–

हर एक तृप्ति का दास यहाँ
पर एक बात है खास जहाँ
पीने से बढ़ती प्यास यहाँ ।[3]

प्रिय मिलन सुख में डूबा ही रहना चाहता है। परन्तु मिलन सुख भी असीम नहीं है। जैसे ही उसे पता चलता है कि उसके प्रेमी के जाने का समय हो गया है तो वह कह उठता है –

---

1. बच्चन: मिलन यामिनी: बच्चन रचनावली–2, पृ0–60
2. वही, पृ0– 37
3. बच्चन : मधुबाला : बच्चन रचनावली–1, पृ0–83

प्रिय शे ! बहुत है रात अभी मत जाओ
अधर पुरों में बन्द अभी तक थी अधरों की वाणी
हाँ ना से मुखरित हो पायी किसकी प्रणय कहानी
सिर्फ भूमिका थी जो कुछ संकोच भरे पल बोले
प्रिय शेष बहुत है बात अभी मत जाओ।[1]

प्रेमी भी कहाँ तृप्त हुआ हे परन्तु मिलन के क्षण सर्वदा तो नहीं रहते और इस प्रेम से कभी तृप्ति नहीं मिल सकती यह तृष्णा अमिट है –

"प्यार से प्रिय जी नहीं भरता किसी का।"[2]

प्रिय के इस अद्भुत खेल पर कवि विमुग्ध है। विस्मित और ठसा सा वह इस प्रणय खेल को देख रहा है ।

**वियोग :**

विरह प्रेम की परीक्षा है । जो प्रेम को निखार कर मणिकांचन सा बना देने वाली ज्वाला है। इसीलिए इसे प्रेम का यज्ञकुण्ड माना जाता है जो संयोग प्रेम की सम्पूर्ण भौतिकता, पार्थिवता को भस्म कर उसे शुद्ध रूप प्रदान करता है। आँसुओं से वासना का उबाल शान्त हो जाता है। माँसल आसक्ति से मुक्ति मिल जाती है और प्रेम शारीरिक सापेक्षताओं से मुक्त होकर एक शुद्ध चिन्मय अनुभूति के रूप में सर्वथा अशरीरी बनने लगता है। शरीर निरपेक्ष प्रेम, साधना की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसके लिए साधना के अनेक सोपानों को पार करना होता है। विरह का विषपान कर ही व्यक्ति प्रेम के इस रूप को प्राप्त करता है। उसे विरह वेदना के दहकते हुए लौह स्तम्भों को गले लगाना पड़ता है तब कहीं उसे यह अमरत्व प्राप्त होता है।

---

1. बच्चन: मिलन यामिनी: बच्चन रचनावली–2, पृ0–61
1. वही, पृ0–38

बच्चन के काव्य में विरह का स्वरूप विश्लेषण निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है –

1. व्यथा वेदना
2. निराशा – नि:श्वास
3. पीड़ा – टीस
4. क्रन्दन – आक्रोश
5. विवशता – असमर्थता
6. जड़ता – प्रलाप

**व्यथा वेदना :**

प्रणय के अन्तर्गत जब प्रिय के न मिलने का विश्वास हो जाता है तब अन्तर्मन का अवसाद, वेदना अथवा रूदन के माध्यम से उफन–उफन बाहर आने लगता है। प्रिय के प्रति साधक का अगाध विश्वास आहत सा होकर जैसे रो उठता है। कहाँ तो प्रिय ही उसका सर्वस्व था और कहाँ उसकी ऐसी निर्मम उपेक्षा आखिर सहे भी तो कैसे और कब तक ? प्रिय मिलन का कोई आधार, कोई आशा मात्र भी हो तो दुख नहीं किन्तु जब प्रिय सदा सदा के लिए नाता तोड़ ले तो हृदय की दशा अति दयनीय हो जाना सहज ही है। ऐसे में रूदन के अतिरिक्त उसका कोई साथी नहीं रह जाता ।

बच्चन की विरह वेदना का कुछ ऐसा ही स्वरूप हमें उनकी काव्य यात्रा के अन्तर्गत दृष्टिगत होता है। पत्नी श्यामा की मृत्यु के उपरान्त छाई अवसादों की काली रात में वह वेदना के गीत गाने लगता है –

मुझसे मिलने को कौन विकल
मैं होऊँ किसके हित चंचल
यह प्रश्न शिथिल करता पग को, भरता उर में विह्वलता है
दिन जल्दी जल्दी ढलता है।[1]

प्रिय का धोखा दे जाना अविश्वसनीय लगता है पर जो सत्य सामने है उसे झुठलाना भी सम्भव नहीं । कितने अरमान संजाए थे उसने सब पलक झपकते ही टूट गये। प्रिय ने बड़ी निर्ममता से उससे नाता तोड़कर उसे अकेला भटकने के लिए छोड़ दिया। वह समझ नहीं पा रहा कि वह करे तो क्या करे, जाए तो किधर जाए –

अंतरिक्ष में आकुल आतुर
कभी इधर उड़, कभी उधर उड़
पंथ नीड़ का खोज रहा है, पिछड़ा पंछी एक अकेला।[1]

जब हृदय प्रेम की पीड़ा से व्याकुल हो, वेदना से अन्तस विकल हो तब बड़े से बड़ा सुख भी दुख में परिणत हुआ लगता है। बसन्त के समय में भी उसे पतझड़ का गीत ही सुन पड़ता है। वह इतना व्यथित है कि उसे अपने गम के अंधेरे में चाँद तारों का प्रकाश भी नहीं दिखाई देता। वह गगन के जगम गाते दीप को संबोधन करके कहता है –

ओ गगन के जगमगाते दीप
दीप जीवन के दुलारे
खे गये जो स्वप्न सारे
ला सकोगे क्या उन्हें फिर खोज हृदय समीप ?[2]

इस सृष्टि में उसका सब कुछ लुट गया। उसके सपने भी खो गये, अब उसके लिए यहाँ का आकर्षण ही क्या रहा । चारों ओर उल्लास मय वातावरण है परन्तु केवल वही अपना विदग्ध हृदय लिए छटपटा रहा है ऐसे में वह स्वयं को किसी अभिशाप से कम नहीं समझ रहा –

---

1. बच्चन: निशा बच्चन : बच्चन रचनावली–1, पृ0–163
2. बच्चन : एकान्त संगीत ,बच्चन रचनावली–1, पृ0–240

नंगी डालों पर नीड़ सघन
नीड़ों में है कुछ कम्पन
मत देख नजर लग जायेगी,
यह चिड़ियों के सुखधाम सखे।[1]

ऐसी स्थिति में प्रेमी को संसार से विरक्ति हो उठती है। स्वयं से भी वह विरक्त हो गया है। अब यह जगत उसके लिए आकर्षण हीन है। प्रिय अपना बन नहीं सका, सपने टूट गये, गीत अकुला उठे, अब जी कैसे लगे–

जहाँ प्यार बरसा था तुझ पर
वहाँ दया की भिक्षा लेकर
जीने की लज्जा को कैसे सहता, मानी मन तेरा[2]

प्रिय से बिछुड़ कर कवि की जीवित रहने की, हँसने और सुख भोगने की तनिक भी अभिलाषा नहीं। उसे बार–बार अपना निर्माण अखरने लगता है– जगती की चक्की पर चक्कर खाते–खाते उसे आज का दिन देखना पड़ रहा है ।

इस चक्की पर खाते चक्कर,
मेरा तन मन जीवन जर्जर
हे कुम्भकार मेरी मिट्टी को और न अब हैरान करो।[3]

कोई प्यार से उसके जीवन का सारा विष सम्पूर्ण दुख अपने मधुर स्वर से हर लेता तभी उसके दिल को चैन मिले।

---

1. बच्चन: निशा निमंत्रण, बच्चन रचनावली–1, पृ0–165
2. वही, पृ0–195
3. बच्चन : एकांत संगीत – बच्चन रचनावली–1, पृ0–215

आँखों में भर कर प्यार अमर
आशीष हथेली में भरकर
कोई मेरा सिर गोदी में रख सहलाता मैं सो जाता।[1]

प्रेमी कण-कण से अपने प्रश्नों के उत्तर पाना चाहता है किन्तु सम्पूर्ण प्रकृति जैसे उसकी व्यथा में जड़ हो गयी हो- प्रिय का विरह सबके लिए असहनीय हो उठा है- उसे लगता है। तभी तो उसके प्रश्नों का कोई भी उत्तर नहीं दे रहा है-

जब गगन में रात आती
दीप मालाएं जलाती
अस्त जो मेरा सितारा हुआ था, फिर जगमगाया ?
पूंछता पाता न उत्तर ।[2]

प्रेमी को अतीत की स्मृतियाँ और भी अधिक विचलित कर देती हैं। वह अपनी सम्पूर्ण विकलता को भूल सुख की नींद में सोना चाहता है किन्तु यह सुखद स्मृतियों उसे चैन नहीं लेने देतीं ।

जागता मैं आँख फाड़े
हाय सुधियों के सहारे
जबकि दुनियाँ स्वप्न के जादू भवन में खो गयी है।[3]

अपनी इस विवशता और असहायता पर उसके आँख भर आते हैं। एक तो वह दुखी है कि प्रिय ने उसे तिरस्कृत कर दिया, दूसरे जगत उस पर व्यंग्य कर रहा है उसे दुख में देख उस पर मुस्कराता है जो कि जले पर नमक छिड़कने जैसा लगता है और तो और वह प्रिय जिसे उसने अपना सर्वस्व समर्पित कर रखा था, वही उस पर व्यंग्य बाण बरसाता है। यह देखकर वह अपने आँसू रोक नहीं पाता-

---

1. बच्चन: एकांत संगीत- बच्चन रचनावली-1, पृ0-216
2. वही, पृ0-230
3. बच्चन : निशा निमंत्रण- बच्चन रचनावली-1, पृ0-180

मेरे पूजन आराधन को
मेरे सम्पूर्ण समर्पण को
मेरी कमजोरी कहकर
मेरा पूजित पाषाण हँसा
तब रोक न पाया मैं आँसू।[1]

विरही को लगता है कि उसने अपना सभी उल्लास, सभी विश्वास और सभी सुख खो दिया है। उसका कोई संगी नहीं, कोई साथी नहीं। वह हर तरफ से अकेला है। प्रिय ही जब उसका नहीं हो सका तो और किसी से क्या आस की जा सकती है –

संघर्ष में टूटा हुआ
दुर्भाग्य से लूटा हुआ
परिवार से छूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं।[2]

अपने जीवन के बारे में सोचकर वह पछताता है कि उसने अपना जीवन व्यर्थ ही गँवा दिया । वह जीवन में कोई सुख न भोग सका उसका जीवन जीने की तैयारी में ही बीत गया। अब उसका जीवन एक उसर भूमि की तरह हो गया है जहाँ कोई फूल नहीं खिल सकेगा।

जीवन बीत गया सब मेरा
जीने की तैयारी में
क्या है मेरी बारी में ।[3]

कवि वेदना से इतना व्यथित है कि जगत में संवेदना शब्द से उसे चिढ़ हो गयी है। उसे ऐसा महसूस होता है कि संवेदना दिखाकर कोई उपहास कर रहा है।

---

1. बच्चन: एकान्त संगीत–रचनावली–1, पृ0–230
2. वही, पृ0–257
3. बच्चन: आकुल अंतर– रचनावली–1, पृ0–272

यह सब उसे औपचारिकताएं लगती हैं। कोई हृदय से उसके प्रति सहानुभूति नहीं प्रकट करता –

कौन है जो दूसरे को
दुख अपना दे सकेगा
कौन है जो दूसरे से
दुख उसका ले सकेगा।[1]

कवि स्वयं का सबसे अभागा व्यक्ति समझ रहा है। संसार से वह निराश हो इससे दूर चला जाना चाहता है। उसे अपने दोष बहुत अधिक जान पड़ते हैं– उसे लगता है कि उससे ज्यादा दीन–हीन इस समय और कोई नहीं –

लग रहा जैसे फिर सबकी
प्रीति झूठी प्यार झूठा
और मुझसा दीन मुझसा
हीन कोई भी नहीं है।[2]

परस्पर मिलना और बिछुड़ना चिर अनादि सत्य है। हर्ष कितना ही सुखदायक हो एक न एक दिन तो अपना रंग बदलता ही है। यह अटल प्रकृति का नियम है ।

पंख चाँदी के मिले हों, या कि सोने
के मिले हों, एक दिन झड़ते अचानक
और सभी को देखनी पड़ती किसी दिन
जड़ प्रकृति की एक सच्चाई भयानक ।[3]

---

1. बच्चन: आकुल अंतर– बच्चन रचनावली–1, पृ0–289
2. बच्चन: प्रणय पत्रिका– बच्चन रचनावली–1, पृ0–96
3. वही, पृ0–122

अब उसके पास ऐश्वर्य की प्रत्येक वस्तु है परन्तु मन की शान्ति अथवा उल्लास नहीं। इस असीम ऐश्वर्य में भी उसका मन उदास है। प्रिय की भाव भरी स्मृति मात्र ही उसे विचलित कर देती है। मन विह्वल हो उठता है उसे लगता है कि प्रिय ने इतनी सुख सुविधा देकर जो अपना मुँह फेर लिया है यह उसके लिए किसी वनवास से कम नहीं है –

तन के सौ सुख, सौ सुविधा में
मेरा मन वन वास दिया सा।[1]

**निराशा – निःश्वास** :

जब हृदय वेदना विदग्ध हो, मन व्यथित हो तो बरबस ही मन निराश हो उठता है। अतीत की स्मृति और वर्तमान का दुख इस निराशा को और बढ़ा देता है। बच्चन का विरही कवि भी इससे मुक्त नहीं है। उसने कभी अपने दुख को रो–रो कर गाया है कहीं अपने दुख को ढोया है। परन्तु उसके अवसाद का अंत नहीं हुआ। वह सुख से जीने का अभिलाषी था परन्तु प्रणय से मिली वेदना ने उसके सपनों को चकनाचूर कर दिया और उसे निराशा के गहन अंधकार में ढकेल दिया।

जग के विस्तृत अंधकार में
जीवन के शत – शत विचार में
हमें छोड़कर चली गयी, लो, दिन की मौन संगिनी छाया
साथी अंत दिवस का आया।[2]

अपनी इस निराशा से उबरने के लिए मधुशाला की शरण लेता है ताकि मदिरा की मस्ती में अपनी गम भूल सके –

---

1. बच्चन: प्रणय पत्रिका– बच्चन रचनावली–2, पृ0–128
2. बच्चन: निशा निमंत्रण – बच्चन रचनावली–1, पृ0–161

वह हाला जो शांत कर सके
मेर अंतर की ज्वाला
जिसमें बिम्बित प्रतिबिम्बित
प्रतिपल वह मेरा प्याला।1[1]

वह संसार की अद्भुत रीति पर विचार करता है तो पाता है कि यहाँ मनुष्य जब सुख में हाता है तो उसके सब साथी बन जाते हैं किन्तु दुख में पड़ने पर कोई साथ नहीं देता। उसने जो प्रिय सुख पाया था, उसके लिए कितना त्याग किया, कितना दुख सहा यह किसी ने न जाना ।

कितने मन के महल ढहे
तब खड़ी हुई यह मधुशाला ।[2]

जब कवि को यह पता चलता है कि जिस सुख के लिए उसने कुछ भी न उठा रखा था वह क्षणिक था तो उसका हृदय वेदना और निराशा से भर उठता है ।

कितनी जल्दी रंग बदलती हैं अपना चंचल हाला
कितनी जल्दी घिसने लगता हाथों में आकर प्याला
कितनी जल्दी साकी का आकर्षण घटने लगता है
प्रात नहीं थी वैसी जैसी रात लगी थी मधुशाला ।[3]

अपनी उन्मादिनी अवस्था पर अब उसे पश्चाताप होता है। जाने वह कैसे क्षण थे जब उसने असम्भव को साम्भव बनाने के प्रण किये थे– सृष्टि का सब दुख

---

1. बच्चनः मधुशाला : बच्चन रचनावली–1, पृ0–62
2. वही, पृ0–64
3. वही, पृ0–61

अपने ऊपर ले लेने की इच्छा की थी- पर जब दुख मिला तो ऐसा कि उसका तन गलने लगा -

> "बोल किस आवेश में तू जगत से यह माँग बैठा
> पुण्य जब जग के उदय हो, तब उदय हो पाप मेरे ।[1]

जगत के प्रति भी उसके मन में खीज है। उसने तो कभी औलिया आचार्य न बनना चाहा था जो उसे इतना अधिक कष्ट दिया गया। यदि उसने अपना रास्ता ही बदल लिया है तो भी जगत वक्र दृष्टि से उसे देखता है और व्यंग्य करता है। जबकि उसने अपने ही हृदय का रक्त बहा है तब भी जगत उस पर संदेह करता है -

> देख भीगे होंठ मेरे
> और कुछ संदेह मत कर
> रक्त मेरे ही हृदय का
> है लगा मेरे हृदय में ।[2]

प्रिय ने उसे जो धोखा दिया है, उसकी इस निर्ममता के प्रति प्रकृति की कवि से सहानुभूति हो गयो है कवि को ऐसा लगता है जैसे सारी प्रकृति भी उसके दुख से दुखी हो गयी है -

> विश्व की सम्पूर्ण पीड़ा
> सम्मिलित हो रो रही हे
> शुष्क पृथ्वी आँसुओं से
> पाँव अपने धो रही है।[3]

---

1. बच्चन: मधु कलश: बच्चन रचनावली-1, पृ0-134
2. वही, पृ0-136
3. वही, पृ0-141

प्रिय ऐसे गये कि उसका सारा नीड़ ही उजड़ गया। स्वप्न खण्ड–खण्ड हो बिखर गये। जीवन में सुख उल्लास था उसके ऊपर अकस्मात ही विषाद की लम्बी भयावह रात छा गयी। उसके जीवन के बसन्त में अचानक अनचाहे ही पतझड़ आ गया –

नीलम से पल्लव टूट गये
मरकत से साथी छूट गये
अटके फिर भी दो पीत पात
जीवन डाली को थाम सखे [1]

अपने सारी ओर उल्लास का वातावरण देखकर कवि निराश हो जाता है। पक्षियों की चहचहाहट उसके हृदय में हूक बनकर लगती है। पीड़ा में तड़प कर वह अपने प्रिय से जैसे याचना सी करने लगता है कि मेरी उपेक्षा न करो –

बोलते उडुगन परस्पर
तरू दलों में मंद मरमर
बात करती सरि लहरियाँ, फूल से जल स्नात
साथी सो न कर कुछ बात ।[2]

उसकी वेदना को कौन समझ सकता है। पपीहे सा उसका मन पी–पी पुकारता है किन्तु उसका प्रिय न जाने कहाँ खो गया। प्रिय वेदना से पीड़ित विरही की स्थिति बावरे सी हो गयी है। वह पिय पिय करता हर एक से उसके विषय में पूंछता फिरता है, परन्तु उसके प्रश्नों का कोई भी उत्तर नहीं मिलता है।

जब चला जाता उजाला
लौटती जब विहंग माला
प्रातः को मेरा विहग जो उड़ गया था लौट आया
पूछता पाता न उत्तर।[3]

---

1. बच्चन: निशा निमंत्रण– बच्चन रचनावली–1, पृ0–165
2. वही, पृ0–175
3. बच्चन: एकान्त संगीत – बच्चन रचनावली–1, पृ0–230

अब तो उसके जीवन में विषाद ही विषाद है, निराशा ही निराशा है। उसकी वेदना को कौन समझ सकता है। वह विरह संतप्त हो अपनी व्यथा दुहराता है –

यह न पानी से बुझेगी
यह न पत्थर से दबेगी
यह न शोलों से डरेगी, यह वियोगी की लगन है।[1]

वेदना की इस गहन रात्रि में वह अपना स्नेह पूर्ण हृदय किसे भेंट करे। अपने पौरूष का पराक्रम किसे दिखाए ? वह पाषाण हृदय निर्मोही प्रिय अब कहाँ रहे जो उसके उल्लास के आधार थे। जीवन अब निराशा के अतिरिक्त कुछ नहीं रह गया –

किस पर अपना प्यार चढाऊँ
यौवन के उद्‌गार चढाऊँ
मेरी पूजा को सह लेने वाले वे पाषाण कहाँ हैं।[2]

वेदना की इस चरम स्थिति में पहुँचकर उसकी आस्था काँप उठती है, विश्वास डगमगा जाता है। उसे लगता है अब वे स्वप्निल दिन लौट के नहीं आने वाले। वैसा उल्लास, हर्ष, वैसी मस्ती का रंग भीना आलम वह अब नहीं देख पायेगा –

बीते दिन कब आने वाले।[3]

प्रणय पथ में चोट खाया वह आहत सा सोचता है कि यह भूमि जहाँ मदिरा है, मधुपात्र है, मधुबाला है, हाला है परन्तु कोई भी ऐसा नहीं जो उसके हृदय की

---

1. बच्चन: निशा निमंत्रण – बच्चन रचनावली–1, पृ0–177
2. वही, पृ0–188
3. वही, पृ0–188

प्यास हर ले। यह गगन जो पक्षियों की बातें भी समझ लेता है क्या मेरे हृदय के उच्छवास को भी समझ पाता है ? शायद नहीं –

सुनता समझता है गगन
वन के विहंगों के बचन
ऐसा समझ जो पा सके मेर हृदय उच्छवास को
कोई नहीं कोई नहीं ।[1]

प्रिय मिलन सुख में वह इतना अभिभूत रहा कि उसे समय का ख्याल नहीं रहा। प्रिय के जाने के पश्चात अपनी मस्ती पर उसका मन झल्ला उठता है क्यों न वह समय रहते संभल गया। क्यों वह भूल गया कि यह मिलन सुख सदैव नहीं रहता। अब वह पछता रहा है –

बीता अवसर क्या आयेगा
मन जीवन भर पछतायेगा
मरना तो होगा मुझको, जब मरना था तब मर न सका।[2]

अब वह अपने जीवन से निराश हो चुका है। उसके जीवन में वेदना ही वेदना है निराशा ही निराशा है। सपने टूट चुके हैं – और उसे लगता है कि अब वह जगत उसका नहीं रहा। जहाँ कभी प्यार बरसा करता था वहाँ अब दया का पात्र बनकर वह कैसे जी पायेगा।

जहाँ प्यार बरसा था तुझ पर
वहाँ दया की भिक्षा लेकर
जीने की लज्जा का कैसे सहता है, मानी, मन तेरा,
मधुप नहीं, अब मधुबन तेरा ।[3]

---

1. बच्चन: एकान्त संगीत – बच्चन रचनावली–1, पृ0–221
2. वही, पृ0–224
3. बच्चन: निशा निमंत्रण– बच्चन रचनावली–1, पृ0–195

अब उसके जीवन में आशा की कोई किरण नहीं बची है। अपने स्वप्नों के रंग महल में अब क्या शेष बचा है जो उसमें आशा जगाए । उसका हृदय टूट चुका है। उसके स्वप्न बिखर गये हें –

जीवन में शेष विषाद रहा
कुछ टूटे सपनों की बस्ती
मिटने वाली यह भी हस्ती
अवसाद वसा जिस खण्डहर में, क्या उसमें ही उन्माद रहा।[1]

इस बढ़ती निराशा को दूर करने के लिए उसने अनेक प्रयत्न किये परन्तु उसे तनिक भी सफलता नहीं मिली। उसका विषाद गहन तर होता गया, निराशा बढ़ती गयी –

"सुखी किरण दिन की जो खोई
मिली न सपनों में भी कोई ।

अब वह किसी को भी दोष देना व्यर्थ समझता है। व्यर्थ ही सुख के पीछे भटकता रहा, उसके भाग्य में दुख ही था वह व्यर्थ में सुख की मृग मरीचिका में भटक रहा था –

किस्मत में था अवघट मरघट
ढूँढ़ रहा था मधुशाला ।[3]

पीड़ा– टीस :

जब हृदय प्रिय वेदना से व्यथित हो, आशा की हल्की सी किरण भी न दिखाई देती हो तो साधक के सारे विश्वास धरे के धरे रह जाते हैं। पीड़ा से हृदय रह–रह कर आकुल हो उठता है। अतीत के स्वप्निल सुख याद आते हैं तो

---

1. बच्चन: एकान्त संगीत– बच्चन रचनावली, पृ0–248

2 बच्चन: निशा निमंत्रण– बच्चन रचनावली–1, पृ0–196

3. वही, मधुशाला– बच्चन रचनावली–1, पृ0–59

बरबस ही ठण्डी साँसे निकल जाती हैं। अपनी उपेक्षा हृदय में टीस उत्पन्न करती है। प्रिय को पाकर भी अपना न बना पाने की पीड़ा उसे कचोटती रहती है।

साँझ ढले लौटते पक्षियों की बच्चों के प्रति आकुलता देख उसका मन दु:सह पीड़ा से भर उठता है –

मुझसे मिलने को कौन विकल
मैं होऊँ किसके हित चंचल ।[1]

उसके हृदय के उथल पुथल को कोई नहीं समझ सकता जितनी उसकी पीड़ा सही हो वही उसे अनुभव कर सकता है। कभी तो यह पीड़ा उसे प्रिय भी लगती थी– तब वह प्रिय मिलन के सपनों का उन्माद नयनों से दूर न कर सका था। उसे अनन्त सुख मिल रहा था पर वह उसकी उपेक्षा कर दी–

मिलता था बेमोल मुझे सुख
पर मैंने उससे फेरा मुख
मैं खरीद बैठा पीड़ा को, यौवन के चिर संचित धन से।[2]

अतीत की स्मृति से हृदय में टीस सी उत्पन्न होती हैं। अब वे अतीत के सुख साधन कहाँ हैं अब तो केवल पीड़ा ही शेष है और सब सुख प्रदान करने वाले साधन नष्ट हो गये हैं –

टूट गयी मरकत की प्याली
लुप्त हुई मदिरा की लाली
मेरा व्याकुल मन बहलाने वाले अब सामान कहाँ हैं ?[3]

---

1. बच्चन: निशा निमंत्रण– बच्चन रचनावली –1, पृ0–161
2. वही, पृ0–187
3. वही, पृ0–188

उसे लगता है कि वह समय, जब वह प्रिय मिलन की की स्मृति से आह्लादित हो उठता था, मिलन –अभिलाषा ही उसके मन को गुदगुदा जाती थी, अब कभी न लौटेगा। यह बात सोच–सोच कर उसका मन पीड़ा से भर उठता है। वह सोचता है इससे अच्छा तो था कि वह सुख न मिलता क्योंकि वह सुख न मिलता तो इतना दुख भी नहीं सहना पड़ता। अब वह मधुमय घड़ियाँ लौटकर नहीं आने वाली –

मेरी वाणी का मधुमय स्वर
विश्व सुनेगा कान लगाकर
दूर गये पर मेरे उर की धड़कन को सुन पाने वाले।[1]

अब वह किस कर में अपने अन्तर्मन की वीणा रख दे – कोई भी तो उसके योग्य नहीं। वह विरहाग्नि में तड़प रहा है और प्रिय इतना निर्मोही है कि उसे देखने तक की फुर्सत नहीं। वह स्वयं उसे विस्मृत कर देना चाहता है। उसे खेद है कि जिस रूप में प्रिय ने उसे ढालना चाहा था वह नहीं ढल सका। कितनी ही बार उसका परीक्षण हुआ है। घबरा कर अन्त में उसने ढलने से इन्कार कर दिया तो प्रिय मुख फेर कर चला गया –

तुमने न बना मुझको पाया
युग–युग बीते मैं घबराया।[2]

जीवन का सारा दुख ही उसे अब जैसे लील जाना चाहता है। प्रिय की उपेक्षा उसके हृदय में टीस उत्पन्न करती है। उसे न दिन को चैन है न रात को –

---

1. बच्चन: निशा निमंत्रण – बच्चन रचनावली–1, पृ0–188
2. बच्चन : एकान्त संगीत – बच्चन रचनावली–1, पृ0–215

मेरे ज ्न का खारा जल
मेर जीवन का हालाहल
कोई ापने स्वर में मधुमय कर बरसाता मैं सो जाता ।[1]

प्रकृति में पुनः बसन्त के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे हैं। हर ओर उल्लास का वातावरण है। मस्ती का आलम हर ओर देखने को मिलता है। पर सारा वातावरण कवि को और अधिक दूषित कर देता है। उसकी वेदना बढ़ जाती है। वह निराशा में डूबने लगता है। उसका विश्वास खण्डित हो चुका है अब वह प्रकृति के इस उल्लासमय वातावरण का अनुभव कैसे करे –

मधु ऋतु समीरण चल रहा
वन ले नये पल्लव खड़ा
ऐसा फिरा जो ला सके मेरे गये विश्वास को
कोई नहीं, कोई नहीं ।[2]

वह अपने जीवन में कुछ कर न सका इसका उसे दुख है। सीमित उल्लास के क्षण अब उसके लिए स्मृतियाँ बन गयी हैं जो उसकी पीड़ा को और बढ़ा देती हैं। अब तो जीवन भर रोना ही है। इस अपमान भरी जिन्दगी से तो मर जाना ही बेहतर है परन्तु जब मरना था तब वह मर भी तो नहीं सका –

बीता अवसर क्या आएगा
मन जीवन भर पछताएगा
मरना तो होगा ही मुझको जब मरना था तब मर न सका ।[3]

---

1. बच्चन: एकान्त संगीत – बच्चन रचनावली–1, पृ0–216
2. बच्चन: पृ0–221
3. वही, पृ0–233

अब तो उसका सारा जीवन जैसे दुखों का ही बसेरा हो गया है। जिस प्रियतम के साथ उसने मिलन की सुदृढ़ घड़ियों का अनुभव किया था आज वह प्रियतम उसे छोड़कर जा चुका है। अब उसे कौन सहारा देगा –

रह न गए जो हाथ बँटाते
साथ खेवाकर पार लगाते
कुछ न सही तो साहस देते होकर खड़े किनारे
अब तो दुख के दिवस हमारे ।[1]

अब कौन है जिसके लिए वह जगत के जुल्मों को सहे । अब तो उसका हृदय पीड़ा से इतना भर उठा है कि उसकी अवस्था पागलों जैसी हो गयी है। जीवन कहाँ जा रहा है इसकी उसको कोई चिन्ता नहीं रही –

किस ओर मैं ? किस ओर मैं ?
है एक ओर असित निशा
है एक ओर अरूण दिशा
पर आज स्वप्नों में फँसा भी नहीं मैं जानता।
किस ओर मैं ? किस ओर मैं ?[2]

कवि सममझ नहीं पाता कि वह अपने हृदय का दुख किसे सुनाए। उसके टूटे मन में जैसे गगन की शून्यता समा गयी हो। हृदय से ज्वाला निकलती है, नयन भर–भर आते हैं, अंतस् से उच्छ्वास निकलते हैं। उसका जैसे अब मनुष्य मात्र से विश्वास उठ गया हो ।

वह किसे दोषी बनाए
और किसको दुख सुनाए
जबकि मिट्टी साथ मिट्टी के करे अन्याय।[3]

---

1. बच्चन: एकान्त संगीत – बच्चन रचनावली–1, पृ0–222
2. वही, पृ0–226
3. वही, पृ0–234

<u>क्रंदन – आक्रोश</u> :

प्रणय में कभी – कभी विरही मन चीत्कार कर उठता है। लोगों द्वारा उसकी भावनाओं को ठेस पहुँचाए जाने के कारण उसके हृदय में आक्रोश है। जगत ने सदैव उसे गलत निगाहों से देखा। यहाँ तो उसकी छोटी सी छोटी अभिलाषा भी पूर्ण नहीं हो सकी। यदि विवश हो उसने कटुता भुलाने के लिए मदिरा की ओर हाथ बढ़ाया तब भी जगत को उसकी जवानी अखरती रही शायद इसीलिए कि उसने कुछ कभी छिपाया नहीं, हमेशा वास्तविक रूप में जगत के सामने रहा–

मैं छिपाना जानता तो
जग मुझे साधु समझता
छल रहित व्यवहार मेरा
शत्रु मेरा बन गया है ।[1]

जब तन मन पवित्र लिए हुए समता के पथ पर चलना चाहा था तब संसार के लिए वह पथ ही कुपथ हो गया। कवि को पिटे हुए रास्ते से चिढ़ थी तो जग को उससे। वह जगत से अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कहता है –

देख भीगे होंठ मेरे और कुछ संदेह मत कर
रक्त मेरे ही हृदय का है लगा मेरे अधर में।

और पुनः –

राग के पीछे छिपा चीत्कार कह देगा किसी दिन
हैं लिखे मधुगीत मैंने हो खड़े जीवन समर में।[2]

जगत का सामना तो कवि कर सकता है परन्तु अपनों के ही द्वारा आहत हुआ व्यक्ति अपने हृदय को क्या सांत्वना दे सकता है और उसका हृदय रो उठता है –

---

1. बच्चन: मधुकलश: बच्चन रचनावली–1, पृ0–129
2. वही, पृ0–136

मैं तुझे देता रहा हूँ
प्यार का उपहार
मूर्ख मैं तुझको बनाती थी, निपट नादान
आज आहत मान, आहत प्राण ।[1]

वह सोचता था कि मुझे अपनों से तो कुछ सहारा मिलेगा भले ही जगत उसका विरोधी हो। वह जगत के हर अपमान और तिरस्कार को सह सकने की सामर्थ्य रखता है परन्तु अपनों द्वारा अपमानित किये जाने से वह अपने आँसू नहीं रोक सका –

जिसमें अपने प्राणों को भर
कर देना चाहा अजर– अमर
जब विस्मृति के पीछे छिपकर मुझ पर मेरा वह गान हँसा।
तब रोक न पाया मैं आँसू।[2]

कवि आखिर संतोष करे भी तो कैसे उसकी सम्पूर्ण आशाओं पर तुषारापात हो चुका है। ऐसे समय में सहारा देने वाला प्रियतम भी चला गया। अब तो जो भी जीवन में आते हैं वे कवि की दुर्बलता का लाभ उठाने वाले लोग हैं इस समय उसे आवश्यकता थी किसी ऐसे हम दर्द की जो उसकी कमजोरियों को सहलाता –

मन में था जीवन में आते
वे, मेरी दुर्बलता दुलराते
मिले मुझे दुर्बलताओं से लाभ उठाने वाले
कैसे आँसू नयन संभाले ।[3]

---

1. बच्चन: आकुल अन्तर: बच्चन रचनावली–1, पृ0–268
2. बच्चन: एकान्त संगीत– बच्चन रचनावली–1, पृ0–230
3. बच्चन : आकुल –अंतर : बच्चन रचनावली–1, पृ0–268

और ाा और जिसे कवि ने तन मन धन से अपना समझा जिसे अपना आराध्य मानकर उसकी पूजा की उसके प्रति पूर्ण समर्पण किया। उसी ने उसका अपमान किया। उस पर व्यंग्य कसे –

मेरे पूजन आराधन को
मेरे सम्पूर्ण समर्पण को
जब मेरी कमजोरी कहकर मेरा पूजित पाषाण हँसा
तब रोक न पाया मैं आँसू।[1]

जीवन की इस विडम्बना पर कवि का मन चीत्कार कर उठता है। जगत की निर्ममता से उसके मन में आक्रोश है। जगत द्वारा तिरस्कार और उपहास से उसका हृदय क्रंदन कर उठता है। परन्तु इतने पर भी वह शिव जी की भाँति जगत के दुखों को पीकर बदले में जग को अपनी कविता रूपी मधुर जल का पान कराता है। जगत के दुख सागर के समान हैं जिनका पानी खारा हे और बादल उस पानी को पीकर मधुर जल की वर्षा करता है। इसी भाँति कवि भी जगत के तिरस्कार और अपमान को सहकर बदले में प्रेम की कविता का पान कराता है और इसी बात को लेकर कवि में आत्म सन्तुष्टि है और वह अपने रोने को व्यर्थ बताता है। वह कहता है कि इन आँसुओं को यों ही व्यर्थ न नष्ट कर। इसमें मानव जीवन का क्रंदन हे। इस रोने को तू ऐसा सार्थक बना कि इससे कुछ भला हो सके –

रो तू अक्षर अक्षर में ही
रो ते गीतों के स्वर में ही
शान्त किसी दुखिया का मन हो जिनको सूनेपन में गाकर ।[2]

---

1. बच्चनः एकान्त संगीत : बच्चन रचनावली–1, पृ0–230
2. बच्चन : निशा निमंत्रणः बच्चन रचनावली–1, पृ0–182

विवशता – अस ता :

विरह में अपनी विवशता और असमर्थता पर खीज और झल्लाहट उत्पन्न होती है कि यदि उसमें कुछ सामर्थ्य होती तो उसे यूँ निस्सहाय विरहाग्नि में जलना न पड़ता। जग में उसकी तृष्णा मिट नहीं सकी। उसकी विवशता ही थी कि जब उसकी वासना तीव्रतम थी तो उसे संयमी बनना पड़ा। वह नियति के सामने स्वयं को असमर्थ पाता है –

> प्राण प्राणों से सके मिल किस तरह दीवार है तन
> काल है घड़िया न गिनता बेड़ियों का शब्द झन–झन
> वेद लोकाचार प्रहरी ताकते हर चाल मेरी [1]
> बद्ध इस वातावरण में क्या करें अभिलाष यौवन ।

यहाँ तो उसकी अल्पतम इच्छा भी नहीं पूर्ण हो पा रही है। सारा विश्व उसको एक कारागार के समान प्रतीत हो रहा है। वह अपनी विवशता पर रो देता है–

> गिर गिर टूटे घट प्याले
> बुझ दीप गए सब क्षण में
> सब चले सिर किये नीचे
> ले अरमानों की झोली।[2]

उसके सारे अरमान टूट चुके हैं। उसका रोम–रोम दुख से व्यथित है परन्तु नियति के आगे लाचार है। नियति के आगे उसका कोई जोर नहीं। जब उसे प्यास थी तब उसे अंगारे खाने पड़े –

---

1. बच्चन: मधुकलश: बच्चन रचनावली–1, पृ0–128
2. बच्चन मधुबाला: बच्चन रचनावली–1, पृ0–108

वासना जब तीव्रतम थी बन गया था संयमी मैं
है रही मेरी क्षुधा ही सर्वदा आहार मेरा ।[1]

इस दुख की घड़ी में उसे अपने जीवन की डोर टूटती नजर आ रही है परन्तु उसे कहीं से काई सान्त्वना नहीं मिल रही है। संसार उसके प्रति कितना क्रूर हो रहा है जो उससे पिछली बातें भूलकर नयी दुनिया बसाने की बात करता है। कवि को इस बात का दुख है कि वह अपने जीवन में कुछ कर नहीं सका। उसे अपनी असमर्थता पर बड़ा दुख है। परन्तु उसे कोई ऐसा साथी भी नहीं मिला जिससे वह अपने मन की बात खुलकर कह सके, हृदय में ज्वाला लिए, भरे नयनों से देखता वह मात्र ठंडी साँसे भरकर रह जाता है–

हृदय की ज्वाला जलाती
अश्रु की धारा बहाती ।[2]

नियति ने उसे कितना विवश कर दिया है। आज वह अकेलेपन का शिकार है । उसके संगी साथी सब उससे दूर हो गये है। संघर्षो से वह टूट चुका है। अपनी इस असमर्थता को वह नियति का खेल मानकर चुपचाप स्वीकार कर लेता है –

लिखी भाग्य में जितनी बस
उतनी ही पायेगा हाला
लिखा भाग्य में जैसा बस
वैसा ही पायेगा प्याला
लाख पटक तू हाथ पाँव, पर
इससे कब तुम कुछ होने का
लिखी भाग्य में जो तेरे बस
वही मिलेगी मधुशाला ।[3]

---

1. बच्चन: मधुकलश– बचचन रचनावली–1, पृ0–129
2. बच्चन: एकान्त संगीत– बच्चन रचनावली–1, पृ0–139
3. बच्चन: मधुशाला– बच्चन रचनावली–1, पृ0–55

<u>जड़ता</u>:

जड़ता विरह की चरमावस्था है। प्रेमी इस स्थिति में सुख दुख से निर्लिप्त सा हो जाता है। वह न हर्ष से पुलकित होता है और न दुख में दर्द से तड़पता है। विरह में प्रेमी की स्थिति ऐसी हो जाती है कि न उसके हाथ डोलते हैं न उसके कण्ठ से स्वर निकलता है। उसकी आँखे पथराई हुई सी लगती हैं और वह एक टक शून्य में ताकता रहता है। यह विरह की चरम स्थिति है इससे आगे की स्थिति तो मृत्यु ही है।

बच्चन स्वयं विरह की स्थिति को भोग चुके हैं। अपनी पत्नी श्यामा की मृत्यु के पश्चात वे जड़ता की स्थिति में आ गये। कई महीनों तक कवि ने कोई रचना नहीं की परन्तु धीरे-धीरे समय के साथ जैसे-जैसे उनका घाव कुछ कम हुआ वे निष्क्रियता की परिधि से बाहर आए। उनके काव्य में जड़ता की स्थिति का चित्रण बड़ी कुशलता से किया गया है। यह जड़ता उनकी स्वयं की भोगी हुई जो थी। वह न हर्ष से पुलकित होता है न दुख से क्षुब्ध, कवि स्वयं कहता है क्या यही जीवन है ?

मैं पुलक उठता न सुख से
दुख से तो क्षुब्ध होता
इस तरह निर्लिप्त होना लक्ष्य तो मेरा नहीं था।[1]

कवि को लगता है क्या इसी जीवन के लिए उसने इतने बड़े-बड़े अरमान पाले थे। जब मन ही साथ न दे और वह सुख-दुख से निर्लिप्त हो जाए तो जीवन में सुख और दुख का महत्व ही क्या रह जाता है? उसे कोई संवेदना उद्वेलित नहीं करती। ऐसे में उसे याद आता है कि पहले वह किस तरह अपने प्रिय की प्रतीक्षा में उतावला रहता था जब तक प्रिय आ नहीं जाता था उसका मन व्याकुल रहता था परन्तु आज स्थिति यह है कि वह शव जैसा पड़ा है–

---

1. बच्चन: आकुल अन्तर: बच्चन रचनावली-1, पृ0-227

आज पड़ा हूँ मैं बनकर शव
जीवन में जड़ता का अनुभव
किसी प्रतीखा की सुधि से ये पागल आँख पथराई ।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चन के काव्य में जड़ता के एकाध उदाहरण मिल जाते हैं। जड़ता का अनुभव ही किया जा सकता है उसे काव्य में ढालना सहज नहीं है यह बच्चन के ही वश की बात है कि उन्होंने इस स्थिति को भी काव्य में ढाल दिया।

निष्कर्षतः बच्चन ने प्रेम भावना के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का बड़ा ही मार्मिक और सूक्ष्म चित्रण किया है। संयोग पक्ष के अन्तर्गत बच्चन का रूप वर्णन बहुत ही शालीन और संभ्रान्त कोटि का है। कवि ने स्थूल सौन्दर्य चित्रण की अपेक्षा प्रेमिका के आन्तरिक सौन्दर्य चित्रण में अधिक रूचि दिखाई है। उनकी प्रेम भावना में उल्लास, हर्ष और मस्ती का स्वर है। आशा के रंग भीने इन्द्रधनुष हैं। स्वप्नशीलता का स्वर्गिक कुहासा है। प्रेयसी के प्रति आस्था है तो मिलन की विह्वलता, आतुरता भी है। यही उत्कंष्ठा अमिट तृष्णा का रूप धारण कर लेती है।

मिलन यदि प्रणय का त्योहर है तो विरह प्रेम को निखार कर मणिकांचन सा बना देने वाली ज्वाला। प्रेम के इस पक्ष को निरूपित करते समय बच्चन की लेखनी में विरही मन की सम्पूर्ण व्यथा, रोदन ओर व्याकुलता शब्दों के माध्यम से साकार हो उठी है। बच्चन के काव्य में पीड़ा के प्रवाह में दारूण व्यथा और रोदन है, आँसू निःश्वास की लहरियाँ है और विवशता- असमर्थता का करुण नाद है। पीड़ा के इस रूप ने बच्चन के काव्य को मधुर और कलात्मक बना दिया है।

---

1. बच्चन: निशा निमंत्रण: रचनावली-1, पृ0-169

***

## अध्याय– षष्टम

## प्रेम काव्य का शिल्प विधान

काव्य में शिल्प और कथ्य अन्योन्याश्रित हैं। सदैव विषय के अनुरूप ही कला विधान गुम्फित होता है। कथ्य कवि के मन में उठने वाली भाव तरंग है तो शिल्प उस भाव को व्यक्त करने का माध्यम। दोनों में पार्थक्य का बहुत कम अवकाश रहता है परन्तु : आलोचनात्मक दृष्टि रखते हुए दोनों का सूक्ष्म से सूक्ष्म बिन्दुओं तक विभाजन आवश्यक हो जाता है। कथन और कथ्य के अन्तर को विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है। पाश्चात्य विचारकों ने भी अभिव्यक्ति और अनुभूति के अभेदत्व को स्वीकार किया है।

काव्य में शिल्प को कथ्यात्मा का शरीर कहा गया है। दोनों के सक्रिय सहयोग से काव्य का जन्म होता है। कथ्य और शिल्प को सुन्दर समन्वय ही संयत और आकर्षक काव्य का मूल प्रेरक और सर्जक होता है। भारतीय काव्य शास्त्र में भी शिल्प पक्ष को प्रधानता देने वाले वक्रोक्ति, ध्वनि एवं अलंकार आदि सम्प्रदाय हैं। किन्तु सही अर्थों में हम किसी पूर्ण कृति में यह नहीं देखते कि उसमें सामग्री और रूप दोनों मिल गये हैं या नहीं। हम तो वह सुन्दर रूप देखते हैं जो सामग्री के साथ मिल गया है। अर्थात् दोनों पक्षों का समन्वय आवश्यक है। शिल्प समन्वय में अधिक सहयोगी एवं उपयोगी होता है। क्योंकि वही भाव के अनुसार आकार ग्रहण करतो है। और तभी इच्छित भाव अपनी पूर्ण महत्ता प्राप्त कर सकता है। इसीलिए प्राचीन आचार्यो ने शिल्प पर अधिक ध्यान दिया है।

अब शिल्प के विस्तृत परिचय के लिए उसका सांगोपांग विश्लेषण आवश्यक है। प्रत्येक अंग को अलग से देखते हुए बच्चन जी के काव्य में शिल्प के उस रूप को देखना और विवेचना करना सरल रहेगा। इस प्रकार कला या शिल्प के मुख्य रूप से निम्न विभाजन किये जा सकते हैं –

1. भाषा
2. प्रतीक

3. बिम्ब
4. छन्द
5. उपमान

<u>भाषा</u> :

काव्य की प्रेषणीयता सशक्त भाषा के माध्यम से ही सम्भव है। कवि प्रतिभा की एक माँग यह भी है कि भाव के अनुसार ही कवि भाषा प्रस्तुत कर सके। मानसिक स्थिति भी कवि की भाषा की स्पष्टता एवं अस्पष्टता की जिम्मेदार होती है। अस्पष्ट भावों की अभिव्यक्ति में प्रायः क्लिष्ट भाषा का प्रयोग हो जाता है।

सामान्यतः भाषा उन सभी माध्यमों का बोध कराती है जिससे भावाभिव्यंजना का काम लिया जाता है। अत यह स्वतः सिद्ध है कि रचना पर सर्वप्रथम प्रभाव उसकी भाषा का पड़ता है। यह भाषा की महत्ता का ही प्रभाव है कि वह पाठक के अन्तर को छू लेने में समर्थ है, क्योंकि यही वह माध्यम है जिसके द्वारा भाव पाठक तक पहुँचता है। अर्थात् भाषा की पहुँच ही भावाभिव्यक्ति का मार्ग निष्कंटक कर देती है। निःसंकोच कहा जा सकता है कि भाषा की ही अंतरनिहित क्षमता पाठक को आकर्षित और निर्देशित करती है। पाठक पर कृति के बारे में पड़ने वाला प्रभाव दो रूपों में दिखाइ देता है –

(1) भाषा विचारों भावों और इच्छाओं का संप्रेषण करती है।
(2) यह संप्रेषण एक स्वतः स्फूर्त प्रतीक विधान से होता है।

तात्पर्य यह कि भाषा हमारे मन में उत्पन्न निराकार विचारों को साकार करने का सशक्त माध्यम है। शब्द और अर्थ का मिलन ही भाषा है। भारतीय काव्य शास्त्र में साहित्य को परिभाषित करने में शब्द और अर्थ की महत्ता प्रारम्भ से ही स्वीकार की जाती है। "काव्य भाषा के सम्बन्ध में कुन्तक ने न्यूनातिरिक्त सौन्दर्याभिमुख

शब्दार्थ की मनोहारिणी उपस्थिति को आवश्यक बताया है।"[1] भाषा सम्बन्धी ये विशेषण काव्य भाषा और जन भाषा के अन्तर को स्पष्ट करते हैं।

माइकल राबर्ट्स के विचार से "भाषा की संभावनाओं की तलाश का नाम ही कविता है।"[2] इस कथन से भाषा का अन्यतम और अन्तिम महत्व स्थापित होता है और उसकी शक्ति का आयाम असीमितता से भी जुड़ता है। वैसे प्रत्येक कवि का अपना कहने का अलग ढंग होता है यही उसका शिल्प है। बच्चन जी की कविता पढ़कर उनका पाठक एकदम से बता सकता है कि यह बच्चन जी की कविता है।

स्वाभाविक विशिष्टता प्रत्येक अच्छे कवि में आ जाती है। भाषा के प्रति बच्चन जी का अपना अलग दृष्टिकोण है, उनके विचार से भाषा परिवर्तन है। प्रत्येक युग का मानस अपनी चेतना के अनुरूप उसका निर्माण करता है। निर्माण की यह प्रक्रिया जितनी सघन और संश्लिष्ट होगी प्रभाव की मात्रा उतनी ही गहन और उत्तेजक होगी। भाषा कोई पत्थर की मूर्ति नहीं है, वह तो धातु की उस प्रतिमा के समान है जो संवेदनशील कवियों के हाथों में पड़कर युग के मानस मात्र में गलती ढलती और निर्मित होती रहती है–

> भाषा मूति नहीं पत्थर की–
> मेरे कहने में कुछ गलती
> अष्टधातु की वह प्रतिमा है
> जो हर युग में गलती–ढलती।[3]

---

1. डा0 नगेन्द्र (सं0)– हिन्दी वक्रोक्ति जीवित, पृ0–60
2. माइकल राबर्ट्स– द फेवरिट बुक आफ माडर्न वर्क्स (भूमिका) पृ0–10
3. बच्चन : आरती और अंगारे, रचनावली–2, पृ0–196

साथ ही। कवि ने उस विश्वास पर भी बल दिया है कि कविता अक्षरों, शब्दों, वाक्य विन्यासों, छंदों आदि में सबसे कम रहती है अर्थात् ये चीजें केवल उसका पता भर हैं उसकी आत्मा तो कहीं और बसती है –

अक्षरों में, शब्दों में,
सतरों में, छंदों में
बन्दों में, जिल्दों में
कविता सबसे कम रहती है
ये उसके पते भर है
वह खुद नही।[1]

क्योकि कविता तो–

कविता जगती के प्रांगण में
जीवन की किलकारी।[2]

इस किलकारी को खोजने के लिए पहले पता जानना होगा तभी उस तक पहुँचना सम्भव है। वैसे तो भाषा या शैली या फिर कथ्य मात्र, अकेले पूर्ण कविता हो भी कैसे सकते है। इन सबमें समन्वय आवश्यक है। अतः हमें विचार करना है उस कौशल या कला रूप कविता के भाषा तत्व पर ।

**शब्द प्रयोग :**

खड़ी बोली के कवियों में बच्चन शब्द सम्पदा के सर्वाधिक धनी है। उनकी भाषा में न तो तत्सम शब्दों के प्रति मोह दिखलाई पड़ता है और न उर्दू, अंग्रेजी अथवा जनभाषा के प्रति अरूचि। अभिव्यक्ति की ऊष्मा के अनुसार शब्द योजना बच्चन के काव्य की विशेषता है। जीवन प्रकाश जोशी के अनुसार– "बच्चन की काव्य भाषा का सर्वाधिक महत्व उसकी शब्द –समाहार शक्ति में निहित है।"[3] वैसे भी यह

---

1. बच्चनः त्रिभंगिमा, रचनावली–2, पृ0–412
2. बच्चनः आरती और अंगारे, रचना–2, पृ0–200
3. जीवन प्रकाश जोशीः बच्चन, व्यक्तित्व और कवित्व, पृ0–149

सर्वमान्य है कि भाषा का निर्माण शब्द द्वारा होता है और शब्द विहीन भाषा की महत्ता अथवा कल्पना रचनात्मक कभी नहीं हो सकती। शब्दों के सुव्यवस्थित और उचित प्रयोग द्वारा भाषा में ऐसी अद्भुत शक्ति प्रविष्ट हो जाती है जिससे मानव के अंतर जगत् के अनन्त अर्थ–आशयों की सफल अभिव्यक्ति होती है।

शब्द और अर्थ का जन्मजात् निकट सम्बन्ध है। वास्तव में इन दोनों को मिलाकर ही भाषा की एक महत्वपूर्ण इकाई का निर्माण होता है। शब्द की गूँज अर्थ की विराट परिक्रमा करने पर भी विलीन नहीं होती, इसे सिद्ध करना प्रत्येक कवि के वश की बात नहीं होती। "महान कवियों का सम्पूर्ण कवित्व–शिल्प और उनका विषय–व्यक्तितव उनकी भाषा में ही समाया होता है। उनकी भाषा का शब्द–शब्द नूतन सृजन की संभावनाओं की तलाश होती है।"[1]

बच्चन चाहे जितनी बार दुहरायें कि "मैं कथ्य को स्वयं कथन में अवतरित होने देता हूँ।"[2] या कि "शब्दों अथवा अभिव्यंजना के नये प्रयोगों के लिए कुछ लिखना मुझे अस्वाभाविक लगता है।"[3] फिर भी उनकी भाषा उनके सुलझे भावों की सफल वाहक सिद्ध हुई है। यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगी कि बच्चन की लोकप्रियता के पीछे उनकी शब्द योजना (भाषा) का ही सधा हुआ हाथ है। बच्चन के शब्दों में एक ध्वनि विस्फोट होता है, एक सुमधुर नाद निहित है, एक अनुपम सौन्दर्य और आकर्षण है। अभिव्यक्ति की ऊष्मा के अनुसार शब्द योजना बच्चन के काव्य की प्रमुख विशेषता है।

बच्चन की शब्द सम्पदा में जहाँ तत्सम शब्द धड़ल्ले से मिलते हैं वहीं उर्दू अंग्रेजी तथा जनभाषा के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। ऐसे शब्द स्थिति और वातावरण

---

1. जीवन प्रकाश जोशी: बच्चन– व्यक्तित्व एवं कवित्व, पृ0–145
2. बच्चन: बुद्ध और नाचघर (भूमिका), रचना–2, पृ0–270
3. बच्चन: मेरी रचना प्रक्रिया– सा0 हिन्दुस्तान (पत्रिका) नवम्बर, 1960 पृ0–16

की सजीवता में योग ही देते हैं। यदि ऐसा न होता तो संभव है कि भाषा के बनाव संवार में भावानुरूप वातावरण उपस्थित नहीं होता। पर इन शब्दों का जहाँ प्रयोग हुआ है वहाँ वे मिसफिट नहीं लगते ।

यहाँ बच्चन जी की शब्द सम्पदा को व्यवस्थित किया गया है। सर्वप्रथम तत्सम शब्दों को लिया गया है तत्पश्चात जनभाषा के शब्दों को अन्त में विदेशी शब्दों को –

**तत्सम शब्द :**

**प्रथम चरण :**

1. **मधुशाला:** मृदु, सुमधुर, पथ किंकर्तव्यविमूढ़, अविरत, पावन, ज्योत्सना अवगुंठन, बसुधा, पिपासा, सौरभ, पथिक, प्रणय, यौवन, विषम आदि।

2. **मधुबाला:** सुषमा, अंचल, क्रंदन, वातायन, तृष्णा, तंद्रिल महिमा आसव प्रवीण नूतन, परवशता, नश्र, अंतर्ज्वाला इत्यादि ।

3. **मधुकलश:** संसृति, रजनी, कलरव, उद्गार, प्रहरी, आहार, पतनोत्थान, आशीष, विस्तीण, विस्मरण, दायित्व, उपहास आदि।

**द्वितीय चरण :**

1. **निशा निमंत्रण:** आश्रय, अस्ताचल, कपोत, दीप्ति, विहंगम, आभा, अभिलाषा, प्रबल, नीर, श्वान, अनादि, अर्पित, प्रवाहित, गरल, तरल, विद्वान, सघः, प्राची, उत्थान, व्यथित, जर्जर विदृग आदि।

2. **एकांत–संगीत:** विह्वलता, लज्जा, मुक्ता, कंचन, आवाह्न, पल्लव, दिनकर, व्यर्थ, अभिराम, अभिसार, आकांक्षा, परिधान, शपथ, दुर्दम, प्रभात् ।

3 **आकुल–अंतर:** ऋतुपति, उद्गार, आहत, पाषाण, अश्रु, क्षीण, मद्यप, स्रष्टा, दीक्षा, दुष्कर, निर्लिप्त, आराध्य, विक्षोभ, रश्मि।

**तृतीय चरण :**

1. **सतरंगिनी :** अरूण शिखा, जिह्वा, हृदय, ग्रीष्म, हर्ष, प्रलोभन, ध्वनित, तिमिर

2 **मिलन यामिनी**: दिवस, करूण, कल्प, दृग, तमोमय, शर, नवल, कुन्तल शैल निखिल, परिष्कार, प्रत्याशा, प्रबुद्ध, प्रफुल्ल, श्रृंगार, उद्भ्रान्त ।

3. **हलाहल** : विष, पाश, विद्युत, आह्लाद, निशा, सृष्टि, अक्षय, प्रतीक्षा, प्रणय, अमरत्व, शीत, ज्ञात, क्षुब्ध, अभिशाप ।

4. **प्रणय पत्रिका**: कपोल, शोषित, द्युतिहीन, विधि, व्योम व्यापी, रोमांच, अनुराग, झंकृत, उपहार, अवनि, लक्ष्य, क्षितिज, सरसिज जलाधि तुषार चरण, पीड़ा, श्रृंग, वरदान ।

<u>चतुर्थ चरण</u> :

1. **बंगाल का काल** : दीनता, अवतार, दीर्घाकार, तुष्टि, कालत्रस्त, वसुन्धरा, ग्रीवा, तरूवर, निरूपाय, निष्प्राण, सुहासिनी, किरीट, विप्लव, विभव ।

2. **खादी के फूल** : निर्वाण, आह्लाद, अभ्युत्थान, भविष्यत्, हृदय–स्पंदन, अन्धकार, कल्मष, कलुष, नक्षत्र, वज्रपात, मृदुता, शुचिता ।

3. **सूत की माला**: अभय, उच्छवास, स्तब्ध, आस्था, श्रद्धा, ज्योति, अभ्यंतर, नमन, खड्ग, दिव्य, श्रम ।

4. **धार के इधर–उधर** : व्यूह, तुष्ट, गर्वोन्मत्त, कुंदन, स्वेद, कृपाण, उर्वर, सलिल, शुभ्र, तम, पताका, अवशेष, वृष्टि ।

5. **आरती और अंगारे** : जलज, गह्वर, शिशु, संशय, समता, अमित, तन्मय, क्लिष्ट, अनन्त, तृषा, मृत, वाचाल, मंथन, तर्जनी, उज्जवल ।

<u>पंचम चरण</u> :

1. **बुद्ध और नाच घर**: जागृति, भृकुटि, विराट, वर्तिका, प्रयाण, प्रबल, प्रवचन, विक्षुब्ध ।

2. **त्रिभंगिमा :** तृषित, कंपित, मंजरी, मकरंद, ऋचाएं, कर्दन, विदूषक, अनिमेष, प्रक्षालित, पंकज ।

3. **चार खेमे चौंसठ खूँटे :** गृहस्थ, क्षमता, प्रत्युत्तर, विमुख, वीथियो, स्फूर्ति, निश्चल ।

4. **दो चट्टाने :** प्रत्याशित, तंद्रा, पाशविक समरोन्मुख, तिरोहित, विपर्यय, षडयंत्र, लोचन, वेणुवादक, पथ्य, अन्यमनस्कता, महत्वाकांक्षी, रूग्ण

5. **बहुत दिन बीते :** विमूर्च्छित, अंकुश, मंदतर

6. **कटती प्रतिमाओं की आवाज :** धूमकेतु, व्याघात, दुर्लध्य, अनुज

7. **उभरते प्रतिमानों के रूप :** मनीषियों, निरामिष, प्रतिभा

**जनभाषा के शब्द :**

बच्चन जी के काव्य में जनभाषा का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। ज्यों-ज्यों उनका झुकाव यथार्थ की ओर होता गया उनकी भाषा में जनभाषा या आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग बढ़ता गया। उनके काव्य के रूप में जनभाषा के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

**प्रथम चरण :**

1. निछावर, फंदा, दुतकारा, बलाएं रसिया, छबीला, बाँका, मेल, बैर, दम-खम, छेड़छाड़, ठौर आदि ।

2. बलिहारी, झुलसाया, उजियारा, अनबूझ, गाँठ, इनलक

3. थिर, छज्जो, खेतिहरो, झरोखों, अमराइयाँ, विनिछावर

**द्वितीय चरण:**

1. साँझ, पहर, रंगीली, विस्तुइया, पाला, निबाहा, दिवाली, आँसू

2. बस्ती, हस्ती, ओढ़ा, अंधियाना, कडुआ, अचरज

3. उथले, [illegible]टारी, किवाड़, उँगलियाँ, विस्तुइया

तृतीय चरण :

1. अँधियाली, इठलाती, बराही, निछावर, नेह, फुहार, मनुहार
2. सुर, सैलानी, जोबन, विरही, धीरज, आखर, फसलें
3. गँवार, कलेजा, लोहू, महल, सत्यानाश, ढीठ, करतूत
4. कमाया, बिसराया, ड्योढ़ी, परवाह, सांकल, खिलवाड़, खटकाए बत्ती

चतुर्थ चरण :

1. नद, नाले, खलिहानों, थूथन, बल्लम, फरसा, भाला, बरछा, छुरी, कटारी
2. पूत, बदलियाँ, बिजलियाँ, पछताता, निछावर, उपजाया, पिछलगुआ
3. गँवाया. कुल्हाडा, अजीरन, दुलारा, गुनिया, संपोले, लील, चेला
4. उपजाना, पूत, दाढ़, झंखाड़, घनघोर, पुरखों
5. चूहे, छछुंदर, गँवाया, चूल्हा, चक्की, पक्की, मीठा

पंचम चरण :

1. छटपटाता, तड़पड़ाता, लोटड़े
2. नैया, झालर, बयार, डोंगी, लरी, पुतरी, भरमाया, छरछंद, कटिया
3. तनक, सिवाने, तरसूँ, गमके, परबत, तलैया, चिरैया, साँवर, फुनगी, ठनके
4. रजाई, काका, बोदा, हाँड़ी, ढोंके, अनारी, झोरी, ससुर, बरजोरी, नुक्कड़
5. खोटे, भोदूं, परात, कछिया, मूसल, मचिया, सुग्गे, पगुराती
6. भतीजों, पोतों, मिरगी, छुतही, बूढ़ खड्डूस, चूतिया
7. निखट्टू, लोथड़ा, अंगोछा, बाभन, बालम, नकेल, बुढवा, बछिया

**अरबी–फारसी–उर्दू के शब्द :**

**प्रथम चरण:**

1. साकी, हाला, अदा, नाज, मुबारक, खजाने, मुअज्जिम, मुहर्रम, मर्सिया, काफिर, शेख, नफीरी, पखावज, परहेज, कैद, मरघट

2. खाक, मुफ्त, मोमिन. बाकी, अफसोस, अजान, कयामत, जामा, फर्क मौजों, बाँका, लानत

3. बंदी, नाजुक, भौलिया, दरकार, निबाह, आह, गुलहजारा

**द्वितीय चरण:**

1 मंजिल, तूफान, परवाने, खाली बलाएँ, दुआएँ, गम, शोलों, गर्दन

2 बाग, कफन, साकीबाला, गहर, जिन्दगी, खुश, जमाना, सजा, बेहया, बदन

3. सफर, अखबारी, फन्दे, दिल, दिवाना, बेगाना, लाचारी

**तृतीय चरण :**

1. जिन्दा, मुर्दा, आवाज, बाकी, आशियाना, मुसाफिर, शुक्रिया, कलेजा, आसरे

2. कारा, तूफान, खुशी, जोर, दर, मदहोश, रामशीर, जबड़े, मौसम, फर्क

3. शबनम, साज, गलत, दाग, परवाह, अरमान, जाहिर, मन्सूबा, दराजा

4. जोर दामन,इन्सान, मजबूर, तकदीर, बाजार, जवाब, कागज, जमीन, चिराग ।

**चतुर्थ चरण:**

1. बाजारों, आजादी, तख्ते, बौछारों, सजा, जबानों, काजी, जाँबाज, कूवत ।

2. मजबूत, जंजीर, तकदीर, कौम, कत्ल, बेजबान, गलतियाँ, कदम

3 कसम, इज्जत, ताकत, जहाज, तूफानों, जरा, रूख, सुराग, फिरका

4. बारूद, मुस्कान, इफरात, जंजीर, जालिमों, मातम, हिन्दुस्तान, अजायबघर

5. तस्वीर, कीमत, राही, दरवेश, शायर, मकबरा, गुम्बद, मेहराब, आलम, अंदाजे बयाँ

पंचम चरण :

1. ताजे, हलाक, जात, फायदा, उसूल, फिरकेबन्दी, खास, बदजात, हर्फ, बागडोर

2. मस्तूल, दामनगीर, मरघट, जहर, महक, हक, फरियाद, जरूरी, औजार

3. खेमे, मुसाफिर, सफर, मशक्कत, खुशामत, गनीमत, खजाना, ख्याल, इशारे ।

शब्द निर्माण प्रक्रिया :

कवि सृजनशील व्यक्तित्व होता है, वह नूतन सृजन प्रक्रिया में प्राचीन मान्यताओं की मूर्तियों का भंजन निर्ममता से करता है। इसी दौरान वह ऐसे शब्दों का निर्माण भी करता है जो व्याकरण सम्मत नहीं होते परन्तु बाद में व्याकरण उन्हें स्वीकार कर लेता है और एक नया वर्ग बनाकर उसमें शामिल कर लेता है। बच्चन ने शब्द निर्माण प्रक्रिया में पूर्ण स्वतन्त्रता का उपयोग किया है। उनके कुछ शब्द पुनरूक्ति प्रक्रिया पर आधारित है। पुनरूक्ति के प्रतिध्वन्यात्मकता विधान का उपयोग भी किया गया है, कुछ उदाहरण दृष्टव्य है –

प्रथम चरण:

1 डाँट – डपट, झूम – झपट, कर – किरणों, संत–महंत, भूसर– भंगी, अज्ञ – विज्ञ, रंग –राग, तिलक – त्रिपुंडी, लघु – लौने।

2. जग–ज्वाल, मधु–मरहम, मृत–मूक, झूम–छनन, भय–शोक, क्रूर–कठिन, नद–नाले, पद–पदवी, कटि–किंकणी, माल–खजाना, ठाट–बाट ।

3 सर– रिता, दाएँ–बाएँ, रक्षित –सीमित, हास– रूदन, कुच–कलश, छत–छप्परों, छत्र–छाया, विकल–विहल, सन्देह–शंका, भटकते–भूलते

द्वितीय चरण :

1. रवि – रजनी, लोट – लपट, तोड–मरोड़, नोच – खसोट, जग–जीवन, कूल–किनारे, पलक–पाँखुरी, खेल–तमाशा, कंकड़–पत्थर, पथ–डेरा

2. सोच–समझ, उठ–गिर, रोदन–गायन, प्रकाश– प्रभात, सुख–सपने, साथ–सहारा, व्यथा– भार, संयम–पालन, जीवन – गायन

3. विकार - विकृति, दर – दीवारें, द्वन्द्व–दहन, क्रीड़ा–केलि, उद्धृत– अधीर, संग्राम – संधि, रूढ़ि–रीति, साज–सँवार, गीत–गंध, सुख–सूखे

तृतीय चरणः

1. ताना–बाना, पूजन–अर्चन, मानस–मंथन, पत्थर–पानी, नद–निर्झर, अंगार–अनल, क्षुब्ध – मुग्ध, मारण–मोहन, अंबर– अवनि

2. हिचका– झिझका, सूखी–भूखी, कूल – किनारे, ढल–गल, रूनुक– झुनुक शोर – सरर ठेला–पेली, सजी – बजी

3. अग– जग तन–मन, आदान–प्रदान, मूर्ख–गँवार, धुन–धन्धों, भाँति–भ्रमों,

4. बाग–बगीचों, रिम–झिम, राग–विलासी, भावों–भेदों, अथकित–अविजित, कीर्ति– कलंकों, गति– रति, लाज– व्यथा

चतुर्थ चरण :

1. नदी–सरोवर, कलि–कुसुमों, गिरि–गहर, धरणी–भरणी, हड्डी–रोटी, सुरूआ– बोटी, लस्त–पस्त, गहना–गुरिया, हट्टिम–ठट्टा

2. संदेह– शंका, मुल्क– मुसीबत, गुण– गौरव, गौरव–गरिमा, नद– निर्झर ।

3. जड़–अंधड़, बेघर– बेदर, डोल– दहल, देश–भवन, चोवा– चन्दन

4. संत – पयबंर, साँझ– सकारे, शूल–बबूल, कण्ठ–माल, वीरतत्व–विवेक, हित–मीत

5. यन्न भारते – तन्न भारते, नर–नाहर, गीली–सीली, कूल–कगारे, डगर–नगर, जोड़–जुगत, रगड़ी–मसली, हित–मीत, छाप–मुहर, तितली–तिनके

<u>**पंचम चरण**</u> :

1 बाग–डोर, विहग–विहंगनि, मक्कार– भांड, गटर–पटर, ओछी–खोटी, पुस्तक– पींजरों ।

2. सिकुड़– सिमट कर, आग–राग, दग्ध–द्रवित, खींचा–खदेड़ा, रंग–रानिया, परस–पुलकित ।

3. ठेह–ठोकर, अंजर – पंजर, कुंज – करीले, तर्ज–तराने, पलक–पाँवड़ा, अंगड़–खंगड़

4. पलक– पुतली, शौर्य– शोणित, झाड़ी–झुरमुट, कलुष– कल्मष, चरने–चौंथने, सृजन–संतुलन

5. नंगी–भूखी, उकडू–मुकडू, संयम–साधन, गुरू–मरू, नंगा–बूचा, बाढ़–बवंडर

6. सनो– धँसो, कट–कुटकर, अर्थ–आखर, पुरूष–पुंगवो, गलाजत– गंदगी, कर्दम– अहं

7 लहराते– हहराते, तैर – नहाकर, लग्गू – भग्गू, पलटन–सलटन, सत्ता–भत्ता ।

<u>मुहावरे और कहावतें</u> :

जीवन्त भाषा का लक्षण है कि वह निरन्तर गतिशील रहे। इसे बनाये रखना कवि पर निर्भर है कि वह भाषा के झरने को अपनी गति से बहने दे या तोड़–मरोड़ कर वैशिष्ट्य दिखाने के लिए भाषा गढ़ने लगे। गढ़ने में अति बौद्धिकता के कारण भाषा सामाजिक नहीं रह जायेगी। वह वैयक्तिक बन जाती है। जहाँ शिल्प का वैयक्तिक होना उसकी विशेषता है वहीं उसके महत्वपूर्ण अंग भाषा के व्यक्तिगत होने पर संवेदना शक्ति क्षीण हो जाती है। अतः भाषा सहज सुस्पष्ट और प्रभविष्णु होनी चाहिए और इस प्रकार की भाषा के लिए मुहावरे और कहावतें पहली आवश्यकता है।

आज का काव्य इस क्षेत्र में क्रान्ति का संदेश लेकर आया है। बोलचाल की शब्दावली, मुहावरें, कहावतें, उपमाओं तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से चल रहा है। इससे भावानुकूल भाषा बैठाना सहज हो गया है, अभिव्यक्ति में भी जान आ गयी है। इससे मुक्त छंदीय रचनाओं को भी प्रोत्साहन मिला है और व्याकरणीय दोष भी समाप्त हो गये हैं। इस दृष्टि से बच्चन जी का योगदान काव्य के क्षेत्र में प्रशंसनीय है। मुहावरों एवं कहावतों के प्रयोग के कारण भाषा जीवन की प्रत्येक अनुभूति को प्रेषित करने एवं अभिव्यक्ति में काव्य भाषा को सबल बनाते हैं। बच्चन काव्य में इसके अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं।

बच्चन ने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं से ही चलते मुहावरों का बड़ी सफाई से प्रयोग करना शुरू कर दिया था। आगे जाकर तो भाषा मंजती चली गयी फिर तो प्राचीन कवियों की उक्तियों, लोकोक्तियों और पारिभाषिक सारगर्भित शब्दों का भी यथास्थान प्रयोग होने लगा।

"आरती और अंगारे" में इस प्रकार का अभिनव प्रयोग अधिक देखने को मिलता है। वस्तुतः "प्रारम्भिक रचनाओं एवं उसके बाद अन्य कविताओं में किया गया अनगढ़ प्रयोग सहसा साफ हो गया। उर्दू का प्रयोग अवश्य बराबर बना रहा है इस प्रयोग ने कवि को लोकप्रियता का उपहार नहीं दिया वरन् परवर्ती कविता में ऐसी ताकत पैदा की कि कवि की अभिव्यक्ति क्षमता में निखार पैदा हो गया। बच्चन के काव्य में ऐसे

मन में सा ा भादों बरसे
जीभ करे पर पानी–पानी
चलती फिरती है दुनिया में
बहुधा ऐसी बेईमानी ।[1]

इस कविता में मुहावरों द्वारा ही सुन्दर बिम्ब खींच दिया गया है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं कुछ एक दृष्टव्य है–

(1) मेहनत भाग्य लेटे का सदा लेटा रहा है।[2]

(2) मेहनत ऐसी चीज कि निकले
तेल छलाछल रेत में ।

इस प्रकार मुहावरों, कहावतों को मनोरम छटा के इन्द्रधनुषी रंगों से सजा कर बच्चन ने अपने काव्य में अमिट आकर्षण और सौन्दर्य प्रदान किया है।

**शब्द शक्तियाँ :**

भाषा की अर्थ प्रक्रिया से शब्द–शक्तियों का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। इसी से भाषा पुष्ट एवं अर्थबोध करने में सक्षम होती है। ये शक्तियाँ भाषा को स्वर प्रदान करती हैं। इसके तीन भेद किये जा सकते हैं– अभिधा, लक्षणा और व्यंजना ।

**अभिधा :**

प्रस्तुत शब्द की सामान्य शक्ति का नाम अभिधा है। इसका वाहक वाचक शब्द अथवा पद है। इसे वाच्यार्थ भी कहा जाता है अर्थात् वह बिन्दु जिसमें शब्द अपने अर्थ को प्रत्यक्ष या साक्षात कर देता है वह अभिधा है।

**लक्षणा :**

जहाँ अभिधा के माध्यम से मुख्यार्थ बोध नहीं हो पाता वहाँ लक्षणा का आश्रय

---

1. बच्चन: आरती और अंगारे, रचना–2, पृ0–246
2 बच्चन: त्रिभंगिमा, चार खेमे चौंसठ खूँटे: बच्चन रचनावली–2, पृ0 –531

लिया जाता है। मध्यकालीन आचार्य सोमनाथ के अनुसार – "यह मुख्यार्थ को छोड़कर उसके निकट अन्य अर्थ को प्रकट करती है।"[1]

<u>व्यंजना</u> :

जब पूर्ववर्ती दोनों शक्तियाँ अर्थबोध कराने में असमर्थ रहते हैं तब व्यंजना के सहारे व्यंग्यार्थ से कथन को अधिक पैना और प्रभावशाली बनाया जाता है। बच्चन ने अपने परवर्ती काव्य में व्यंजना का सर्वाधिक प्रयोग किया है।

भाषा की महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में शब्द शक्तियों को विस्मृत नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार मुहावरे, कहावतें, भाषा के अर्थ के अधिक निकट ले जाती है, उसी प्रकार शब्द–शक्तियाँ भी भाषा में प्रेषणीयता और अर्थ सघनता लाने का कार्य करती है। शब्द शक्तियाँ वे साधन हैं जिनके माध्मय से कविता में वह गुण आ जाता है जिसे रिचर्डस ने "सजेस्टिविटी" व्यंजकता कहा है। आधुनिक युग में छायावादोत्तर कवियों ने भाषा में जो शक्तिमत्ता और अर्थमत्ता भरने का प्रयास किया है उसकी पृष्ठभूमि में व्यंजकता का बहुत बड़ा हाथ है।

बच्चन के सम्बन्ध में यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि उनका काव्य शब्द शक्तियों के उचित प्रयोग से अधिक ग्रहणीय और अस्वादपूर्ण हो गया है। अपने पूर्ववती काव्य की अपेक्षा परवर्ती काव्य में बच्चन एक नई दिशा का बोध कराते हैं। उसमें कथ्य तो बदला ही है, शिल्प के आयाम भी परिवर्तित हो गये हैं। इसी कारण परवर्ती काव्य में अभिधात्मक व व्यंजनात्मक कथनों को अधिक स्थान मिला है। यथार्थ परिवेश और सम–सामयिक धरातल पर लिखी गयी ये परवर्ती कविताएं अभिधात्मक कथनों से भरी पड़ी हैं। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है–

जी नहीं
मेरे दिमाग में भूसा नहीं भरा है
भूसा जड़, अँधेरी, बँद भूसी
कोठरियों में भरा रहता है
मेरा दिमा खुला है
उस पर ताजी हवाएं बहती है।"[1]

इन पंक्तियों के सहारे कवि ने मस्तिष्क के खुलेपन को जिस सरलता से अभिव्यक्त किया है वह दृष्टव्य है। शायद ही किसी अन्य शैली से यह इतना प्रभावशाली बन पाता।

दूसरी शब्द शक्ति है जो बच्चन के परवर्ती काव्य में सर्वाधिक मुखरित हुई है, वह है व्यंजना। समसामयिक परिवेश ओर यथार्थ के नये धरातलों का अन्वेषण करते हुए कवि ने जो व्यंग्य किये हैं वे व्यंजना के सहारे अधिक प्रभावशाली बन गये हैं–

हनुमान ने सीता माँ को
अपना रूप विराट दिखाया
लँकेश्वर का बाग उजाड़ा
रावण सुत अक्षय समेत
बहु राक्षस मारे,
छोड़ विभीषण का घर सारी लंका दाही,
स्वामी के संकेत सभी के हेतु मिले थे।
हनुमान ने केवल सेवक रीति निभाई
कण भर अपनी कीर्ति न चाही।"[2]

और – अपने युग में
अपने गुण का ढोल पीटने
स्वार्थ संजोने वालो को
हमने कम देखा ?
काश कि उनको संयत रखती
हनुमान के आत्म त्याग की
उदाहरण की लक्ष्मण रेखा।[3]

---

1. बच्चन: दो चट्टाने, रचना–3, पृ0–69

प्रायः गहन, गम्भीर विचारों के लिपटे विचारों की अभिव्यक्ति कवि सीधे सरल शब्दों में करता है ताकि वह बोधगम्य हो सके। जबकि दूसरी ओर सरल बात को क्लिष्ट भाषा में कहता है। यह है तो आश्चर्यजनक किन्तु सत्य तथा स्वाभाविक बात है। वैसे बच्चन के पास कहने को बहुत कुछ है और नित्य नया मिलता रहता है। इसलिए एक ही बात को सजाते संवारते रहने का अवकाश नहीं, इसीलिए उन्होंने लक्षणा का प्रयोग कम ही किया है। अतः स्वयं सिद्ध है कि कवि ने अपने काव्य के लिए शब्द शक्तियों का सहारा लिया है न कि शब्द – शक्तियों को उभारने के लिए कथ्य का जाल बुना है।

वस्तुतः बच्चन जी की भाषा अपने में ऐसी विलक्षण प्रतिभा है कि बाद के कवियों के समक्ष एक भिन्न आयाम पेश करती है। बच्चन जी की वर्तमान स्थिति का अधिकांश श्रेय उनकी भाषा को ही है। सौन्दर्य ऐसी वस्तु है जो कि अपनी प्रशंसा ही नहीं पाता अपितु जिससे सम्बद्ध है उसके महत्व में भी वृद्धि करता है। यही बात भाषा सौन्दर्य पर भी लागू होती है, जिससे बच्चन जी को आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई है।

**प्रतीक :**

प्रतीक शब्द का अर्थ है – चिह्न प्रतिनिधि या प्रतिरूप। प्रतीक परम्परा से किसी अन्य वस्तु के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द को कहा जाता है। जब कवि अपनी भावना की विशद अभिव्यक्ति करने में सीधे–सादे ढंग से सफल नहीं हो पाता तब प्रतीकों की सहायता से उनकी अभिव्यक्ति करने का प्रयत्न करता है।

प्रतीक से केवल चिह्न या प्रतिरूप का आभास नहीं होता वरन् वह उस सम्बन्धित वस्तु का एक जीता जागता तथा सक्रिय प्रतिनिधि भी होता है। प्रतीक के प्रयोग द्वारा उस वस्तु से सम्बन्धित सभी प्रकार के भावों का सरल और सफल अभिव्यक्तीकरण हो जाता है। प्रतीक प्रयोग में चमत्कार प्रियता या उक्ति वैचित्र्य का प्रदर्शन ही कारण नहीं है। वह उस वस्तु के जटिल और दुर्बोध रूप को भी सरल और सुबोध विधि से व्यक्त करने का एक साधन है।

मनुष्य क समस्त जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है। वास्तव में मनुष्य प्रतीकों के माध्यम से ही सोचता है। प्रतीक दो प्रकार के होते हैं प्रत्यक्ष प्रतीक यथा कमल-चन्द्र और अप्रत्यक्ष प्रतीक यथा सुधा कल्पतरू । कुछ प्रतीक सार्वभौम होते हैं जैसे सिंह वीरता का, श्वेत रंग - पवित्रता का, श्रृगाल -कायरता का, लोमड़ी- चतुरता का। प्रत्येक राष्ट्र का ध्वज उसके अस्तित्व गौरव और एकता का प्रतीक होता है। कुछ विशिष्ट प्रतीक जैसे सिंदूर, चूड़ियाँ आदि सुहागिन स्त्री के, राखी भाई-बहन के प्रेम का प्रतीक है।

प्रतीक में कल्पना का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें सूक्ष्म निर्देशन शक्ति होती है। इसके माध्यम से बहुत सी बात कुछ शब्दों में ही बोध कर कही जा सकतो है। प्रतीकों का विकास साहित्य में होता रहता है। जब नए-नए प्रतीकों का प्रयोग बन्द हो जाता है तब वह जड़ हो जाता है।

प्रतीकों का समुचित महत्व है। उचित प्रयोग से भाषा में एक नयी अर्थवत्ता तथा नवीन शक्ति का संचार करते हैं। कई बार ये प्रतीक अलंकार का भी काम करते हैं। प्रतीकों के बल पर काव्यात्मक सौंदर्य द्विगुणित हो जाता है। विषय की व्याख्या अलंकृति और व्यंजनात्मकता का कार्य मुख्य रूप से प्रतीक ही करते हैं। इसके अतिरिक्त स्थानुरूप इनका अप्रत्याशित महत्व है। कपितय प्रतीक बौद्धिक और दुरूह भी होते हैं। बच्चन के प्रतीक दुरूह नहीं है। आधुनिक बोध सम्पन्न पाठक की समझ में सहज ही आ जाते हैं तथा अपनी अर्थ गरिमा से पाठक को संवेद्य बनाते रहते हैं।

पूर्व छायावादी कवियों ने प्रतीक रूप में हाला का प्रयोग किया है। बच्चन के मधुलोक में उनकी मधुवादी कृतियों क्रमशः मधुशाला, मधुबाला एवं मधु कलश में प्रतीक योजना के संदर्भ यद्यपि सीमित हैं किन्तु स्पष्ट है। इस परिप्रेक्ष्य में "हाला" का प्रतीक बच्चन के गीत काव्य को हमेशा लोकप्रिय बने रहने की क्षमता और आकर्षण प्रदान कर गया है। अब कुछ प्रतीकों को उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करेंगे-

प्रथम चरण :

मधुशाला: पुस्तक, सुधारक, भारतवर्ष, संसृति, शिव मंदिर, मान सरोवर, वर्षा ऋतु, तपोवन आदि ।

मधुबाला: भोगेच्छा रूपी नायिका

हाला: हिम जल, ईश्वर, गंगा जल, सुख की उद्दाम लालसा, यौवन की मस्ती, शाश्वत प्राण चेतना, जग जीवन की क्षण भंगुरता ।

साकी: बादल, मृत्यु, चित्रकार, मुरली, रागिनियाँ, नदियाँ, भारत माता

प्याला: स्वयं कवि, भूमि, फूल, मंजरियाँ, तारे, लहरें, क्षण भंगुर जीवन

सुराही: जीवन

गुलहजारा: श्यामा

मधुशाला :

पुस्तक : पाठक गण हैं पीने वाले, पुस्तक मेरी मधुशाला

संसृति : "काल प्रबल है पीने वाला संसृति है यह मधुशाला।

भारतवर्ष: "पीकर खेत खड़े लहराते, भारत पावन मधुशाला।"

मानसरोवर: हंस मत्त होते पी–पीकर, मान सरोवर मधुशाला

वर्षा ऋतु: वेलि, विटप, तृण वन में पीऊँ वर्षा ऋतु हो मधुशाला

मधुबाला :

मधु कौन यहाँ पीने आता

हाला :

गंगाजल : "बने पुजारी प्रेम साकी गंगाजल पावन हाला।"

ईश्वर – "प्रियतम तू मेरी हाला है मैं तेरा प्यासा प्याला।"

**क्षणभंगुरः** "मिट्टी का तन मस्ती का मन

**जीवन–** क्षण भर जीवन मेरा परिचय"

**साकी** :

**मृत्यु** : "मृत्यु बनी है निर्दय साकी, अपने शत–शत कर फैला ।"

**बादलः** "बादल बन बन आये साकी भूमि बने मधु का प्याला।"

**नदियाँ** : "चंचल नदियां साकी बनकर भरकर लहरों का प्याला।"

**चित्रकारः** "चित्रकार बन साकी आता लेकर तूली का प्याला।"

**प्याला** :

**स्वयंकविः** प्रियतम तू मेरी हाला है, मैं तेरा प्यासा प्याला"

**क्षणभंगुरः** "क्षीण, क्षुद्र, क्षण भंगुर दुर्बल मानव मिट्टी का प्याला।"
**गुल हजाराः** "हाथ से अपने उसी ने था जिसे कल तक संवारा

आज उपवन से हमारे मिट रहा है गुल हजारा।"

इस प्रकार बच्चन की प्रतीक योजना में यौवन की मस्ती और अल्हड़ता के प्रतीकों के रूप में हाला के प्रयोग अत्यन्त सशक्त बन पड़े हैं। मधु प्यास यौवन के रूप में श्रृंगार की भोगवादी भावना को ध्वनित करती है। यौवन की मस्ती का आयाम बढ़ते–बढ़ते जीवन की मस्ती बन जाती है।हाला जीवन की अजीब पिपासा, अनोखी उत्सुकता, वासना और लिप्सा का प्रतीक बन जाती है।

**द्वितीय चरण** :

टूटते तारे : जीवन में घोर अंधकार के प्रतीक

सुख : श्यामा का प्रतीक

तिनका : संगठनात्मक शक्ति

पंछी : कवि के आकुल अर्न्तमन एवं जिजीविषा

पीत–पातः जीवन के दर्द

बच्चन के काव्य में वैयक्तिक कुंठा के प्रतीक भी सहजता से देखे जा सकते हैं –

जिसकी कंचन सी काया थी जिसमें सब सुख की छाया थी
उसे मिला देना पड़ता है पल भर में मिट्टी के कण में।"[1]

यहाँ सुख के प्रतीक के रूप में ज्याय (श्यामा) का संकेत करते हैं। इसी प्रकार "– "रह गया मैं और आधी बात, आधी रात" में आधी बात श्यामा की मृत्यु की प्रतीक है तो आधी रात जीवन की सतर्कता तथा अच्छे बुरे होने की संभावना की प्रतीक है।

बच्चन के काव्य में अक्सर चिड़ियो को अर्थवान प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया गया है। चिड़िया कविता के लिए एक निरीह व्यक्ति के अस्तित्व बोध के रूप में सामने आइ है। पंछी कवि के आकुल अन्तर्मन का प्रतीक है एवं कवि की जिजीविषा का भी प्रतीक है –

"अंतरिक्ष में आकुल आतुर, कभी इधर उड़, कभी उधर उड़ ।
पंथ नीड़ का खोज रहा है बिछड़ा पंछी एक अकेला।"[2]

पंछी का इधर–उधर उड़ना अतिशय व्याकुलता का प्रतीक है वह एकदम अकेला है फिर भी उसका लगातार नीड़ को खोजते रहना अनिवार्य है क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि नीड़ मिल ही जाय।

---

1 बच्चन : निशा निमंत्रण, रचना–1, पृ0– 186

2 वही, पृ0 – 163

अन्य प्रतीकों पर विचार करने पर ऐसा महसूस होता है कि कवि में जीवनेच्छा है फिर भी व्यथा का भाव इतना अधिक है कि जीने की अदम्य आकांक्षा रह- रह कर डूब जाती है। नीड़, पीले पत्ते, कगार, टूटते तारे आदि इनके प्रिय प्रतीक है –

है यह पतझड़ की शाम सखे नीलम से पल्लव टूट गये
मरकत से साथी छूट गये
अटके फिर भी दो पीत पात जीवन डाली को थाम सखे।"[1]

यहाँ पर "पीत-पात" जीवन के दर्द के प्रतीक हैं। नीलम और पन्ने की तरह मूल्यवान साथियों के छूट जाने पर भी जीवन के प्रति आस्था नि:शेष नहीं हो गयी है। परन्तु पीत-पात मरणोन्मुखी है। इसी प्रकार –

यह पावस की साँझ रंगीली घिरे घनों से पूर्व गगन में
आशाओं सी मुर्दा मन में जाग उठी
सहसा रेखायें, लाल, बैगनी, पीली नीली ।"[2]

उपर्युक्त छंद में सारे के सारे प्रतीक मरण के परिवेश के चित्र प्रस्तुत करते हैं ।

<u>तृतीय चरण</u> :

मयूर : कवि के सामंजस्य पूर्ण भावी जीवन के प्रतीक

मयूरी : परिणीता नारी

नागिन : प्रमदा नारी

जुगुनू: विध्वंश के बीच निर्माण की आशा का प्रतीक

सरसी हंस: जीव

सतरंगिनी: इन्द्रधनुष की प्रतीक तथा प्रसन्नता एवं मयूरी की प्रतीक

---

1. बच्चन:, निशा निमंत्रण, रचना-1, पृ0-165
2. वही, पृ0 - 166

सतरंगिनी तम भरे: गम भरे बादलों के ऊपर इन्द्रधनुष रचने का प्रयास है। अवसाद के अंधकार से प्रसन्नता की रंग छटा में आने का ।

सतरंगिनी का प्रथम गीत "इन्द्रधनुष की छाया में" एक प्रतीक गीत है जो कवि के जीवन के परिवर्तनों को चित्रित करने में पूरी तरह सफल है। कवि दुनिया का अंधकार और प्रकाश देखने के बाद जगती का आनन देखने को आतुर है।

मयूरी और नागिन अलग-अलग तरह की नारियों के प्रतीक है।एक परिणीता नारी की तो दूसरी प्रमदा नारी की । मयूरी का नृत्य भी एक प्रतीक है। जब साधारण व्यक्ति का जीवन विश्रृंखल होता है तब उसमें या तो नारी का अभाव होता है या गलत तरह की नारी उसके जीवन में आ जाती है। एक और कारण है जबकि नारी के प्रति व्यक्ति की धारणाएं विकृत हो जाती हैं। जब वह अपने जीवन में सामंजस्य स्थापित करने के लिए संघर्ष करता है तो उसकी सबसे पहले खोज सही नारी के लिए होती है। बच्चन ने इस सम्बन्ध में कहा है कि – "मैं नि:संकोच लिखना चाहता हूँ कि "सतरंगिनी" में विश्रृंखलता से सामंजस्य की ओर अग्रसर होने में एक संघर्ष सही नारी की खोज के लिए भी है और यह सही नारी जिस रूप में मिली है उसका प्रतीक है "मयूरी" नागिन नहीं।"[1] इस प्रकार समर्पिता नारी के लिए मयूरी से सुन्दर प्रयोग खोज पाना कठिन है।

इसी प्रकार "जुगनू" जो कि बच्चन को आशामय उजियाले का अवशेष मात्र लगा था वह विध्वंश के बीच निर्माण की आशा का प्रतीक बन जाता है–

"मगर निर्माण में आशा जगाए कौन बैठा है
अँधेरी रात में दीपक जलाए कौन बैठा है।" 2

---

1. बच्चन: सतरंगिनी, (भूमिका) बच्चन रचनावली-1, पृ0- 317
2. वही, पृ0-333

"हँस" यहाँ जीव के प्रतीक रूप में है परन्तु इसकी उड़ान ब्रह्म तक पहुँचने के लिए नहीं है। बच्चन के "हँस" का राग इसी धरती के माया ममता का राग है।

**चतुर्थ एवं पंचम चरण:**

इस चरण में "त्रिभंगिमा", "दो चट्टाने" अथवा सिसफिस बरक्स हनुमान" कविताएं प्रतीकात्मक हैं। "त्रिभंगिमा" की महागर्दभ" कविता में आधुनिक सभ्यता के प्रतीक महागर्दभ के माध्यम से अपनी बात कवि कहता है। "दो चट्टाने अथवा सिसफिस बरक्स हनुमान" के प्रतीक दंत कथाओं से लिए गये हैं। हनुमान का प्रतीक चिर-परिचित है। सिसफिस यूनानी दंत कथाओं का प्रतीक है। इन दोनों प्रतीकों के माध्यम से कवि मूल्यहीन श्रम की निरर्थकता को प्रतिपादित करता है। हनुमान का पत्थर उठाए रखना एक मूल्यवान श्रम है जिसके द्वारा मानवता को संजीवनी प्राप्त होती है परन्तु सिसफिस का पत्थर ऊपर ढकेलना एक मूल्यहीन श्रम की पीड़ा है जिसका कोई महत्व नहीं है।

"चार खेमे चौंसठ खूँटे" कृति की कविताएँ प्रतीकात्मक है। "मरण काले" इस संग्रह की अन्तिम कविता है। इसे निराला के मृत शरीर को देखने के बाद लिखा गया था। तीन भरे जंतुओं के जीवित मृतक रूप जो निराला के व्यक्तित्व के सटीक प्रतीक रूप में प्रस्तुत किये गये हैं।

> मरा मैंने गरूड़ देखा गगन का अभिमान
> धराशायी धूलि धूसर, म्लान, मरा मैंने सिंह देखा
> दिग्दिगन्त दहाड़ जिसकी गूँजती थी एक झाड़ी में पड़ा चिर मूक
> दाढ़ी-दाढ़ -चिपका थूक । मरा मैंने सर्प देखा
> स्फूर्ति का प्रतिरूप लहरिल पड़ा भू पर बना सीधी और निश्चल रेखा।[1]

---

1. बच्चनः चार खेमे चौंसठ खूंटे, रचना-2, पृ0-560

यहाँ, गरूड़, सिंह और सर्प निराला के व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। यहाँ शब्दों में यथा संगत ध्वनि साकार हुई हैं ।

अन्ततः ये प्रतीक बच्चन की अभिव्यक्ति में नदी का वेग भर देते हैं। इन्हीं प्रतीकों से बच्चन का काव्य शिशु से यौवन और यौवन से प्रौढ़ता तक पहुँचा है। किन्तु जैसे हर आयु का अपना सौन्दर्य होता है, अपना अलग महत्व होता है उसी तरह बच्चन के काव्य प्रतीकों की स्थिति है। वे हर अवस्था में काव्य का सौन्दर्य बढ़ाते रहे हैं।

## बिम्ब विधान :

बिम्ब का अर्थ है चित्रात्मकता। चित्र योजना द्वारा काव्य में सतरंगी आभा बिखेर देना। जैसे आँखों देखा चित्र हृदय पर सीधा प्रभाव डालता है वैसे ही काव्य में बिम्ब जनमानस को आकर्षित करता हुआ कल्पना के माध्यम से प्रत्यक्ष वातावरण प्रस्तुत करने में सहायक होता है।

सामान्यतः बिम्ब शब्द का प्रयोग छाया, प्रतिछाया, अनुकृति आदि के रूप में होता है। बिम्ब को किसी वस्तु की छाया अनुकृति–सादृश्य अथवा समानांतर माना गया है।

भारतीय काव्य शास्त्र में बिम्ब शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। दृष्टान्त और निदर्शना के लक्षणों में प्रयुक्त बिम्ब–प्रतिबिम्ब भाव में बिम्ब का प्रयोग मूर्त– अमूर्त भाव या विचार के अर्थ में किया गया है। साथ ही प्रतिबिम्ब का प्रयोग उसको मूर्तित करने वाले अप्रस्तुत विधान के लिए। इस प्रकार आधुनिक बिम्ब के समानार्थक रूप में अलंकार ग्रन्थों में प्रतिबिम्ब प्रयोग तो किसी सीमा तक माना जा सकता है बिम्ब का नहीं। बिम्ब की परिकल्पना यहाँ सादृश्य मूलक अलंकारों, लक्षण तथा ध्वनि के प्रसंग में अधिक सार्थक रूप में हुई है।

वास्तव में बिम्ब या इमेज एक सुदृढ़ सुन्दर और रचनात्मक कल्पना शक्ति है। बिम्ब पूर्वानुभूतियों व भावनाओं का वह मूर्तित रूप है जिसमें ऐन्द्रियता सदैव अपेक्षित रहती है, यह अलंकारों में रूपक मानवीकरण आदि और मुहावरों के सहारे अभिव्यक्त हो सकता है। डा0 केदार नाथ शर्मा के अनुसार "किसी वस्तु विशेष का प्रत्यक्ष कलात्मक चित्र ही बिम्ब है। कविता में भावानुकूल शब्दों का प्रयोग परमावश्यक होता है पर उससे भी महत्वपूर्ण तत्व बिम्ब है। विषय के प्रत्यक्ष चित्रण के लिए अनावश्यक शब्दों का वर्जन करते हुए वर्णन करना ही बिम्ब की पहली शर्त है।"[1] वे पुनः अन्यत्र लिखते हैं। " बिम्ब एक केन्द्रीय चित्र है जो कुछ अंशों तक अलंकृत होता है जिसके संदर्भ में मानवीय संवेदनाएं निहित रहते है तथा जो पाठकों के मन में विशिष्ट रसात्मक भाव उद्दीप्त करता है। तात्पर्य यह कि भाषा और भाव के पश्चात काव्य में जिस सशक्त वस्तु की अपेक्षा होती है वह ठोस वस्तु बिम्ब है।"[2]

काव्य और बिम्ब का घनिष्ठ सम्बन्ध है। पशिचमी साहित्य के विवेचकों ने काव्य समीक्षा में कविता की चित्रात्मक विशेषताओं के अन्वेषण और मूल्यांकन पर बल दिया है। चित्र रंगों से बनता है और कविता में भी भाषा और भाव उसके रंग ही है। इस प्रकार बिम्ब को कविता से काटकर नहीं देखा जा सकता। भाव और बिम्ब की महत्ता सर्वोपरि है। भाव की सम्प्रेषणता काव्य बिम्ब को असाधारणता और रम्यता प्रदान करती है। कविता में बिम्ब शब्दों से उभरते हैं। कभी–कभी तो यहाँ तक कह दिया जाता है कि शब्द बिम्ब की रचना ही काव्य रचना है। बिम्ब कवि का मौलिक रूपक या उपमागत अनिवार्य क्रिया है और यह सत्य है कि क्योंकि "साम्य" की अनुपस्थिति में बिम्ब की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिन्ह लग जायेगा। बिम्ब अथवा रूपक के प्रयोग में कवि व्यापार की गुरूता है।

---

1. डा0 केदारनाथ शर्माः अज्ञेय साहित्यः प्रयोग और मूल्यांकन, पृ0–200
2. डा0 केदारनाथ शर्मा– अज्ञेय साहित्यः प्रयोग और मूल्यांकन, पृ0–201

**बिम्ब और प्रतीक :**

प्रतीक एक अर्थ समूह है जो एक बार फिर स्थिर होकर अपने प्रति अन्यान्य अर्थो को आकृष्ट करता रहता है। बिम्ब बद्ध अर्थ और भंगिमामय शब्द में प्रतीक के तौर पर प्रयुक्त होते हैं। बिम्बों की एक सिम्बोलिक स्थिति है जो अलग है तथा साम्य द्वारा सम्पन्न होती है। वास्तव में प्रतीक स्थिर बिम्ब है। डा0 नगेन्द्र के शब्दों में – प्रतीक जो रूढ़ उपमान भी है एक प्रकार का अचल बिम्ब है जिसके आयाम सिमटकर बन्द हो जाते हैं।[1] परन्तु प्रतीक और बिम्ब में अन्तर है। बिम्ब मानस पटल पर अंकित एक चित्र है जो प्रत्यांकित या अभिव्यक्त किया जा सकता है। प्रतीक अपने स्वरूप में अस्पष्ट और अनेक अर्थों में अनभिव्यक्त रहता है जो उसका वैशिष्ट्य है। कविता के बिम्ब अप्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित तथा प्रायः स्मृति और कल्पना से उद्भूत होते हैं।

कविता में बिम्ब भाषा के सहारे खड़ा होता है। बिम्ब सर्जन में भाषा का पर्याप्त सहयोग रहता है। शब्दार्थ मय भाषा ही एक प्रकार से बिम्ब सर्जन का कार्य करती है। बिम्ब सर्जन भाषा का ही भावमय प्रयोग है। स्पष्ट ही भाषा की भावमयता बिम्बात्मकता को जन्म देती है।

भाव व विचार अनुभूति का व्यापक प्रसार ऐन्द्रियता ये गुण ही बिम्ब की परिभाषा है। कोई भी भाव या दृश्य पहले मन को प्रभावित करता है फिर उस प्रभाव से मस्तिष्क में एक चित्र या बिम्ब बनता है। उसी को शब्दों के माध्यम से साहित्यकार और रंगों के माध्यम से चित्रकार प्रस्तुत करते हुए उसे पाठक व दृष्टा के लिए बोधगम्य बना देता है।

बिम्ब मात्र नेत्र सुख ही नहीं प्रदान करता बल्कि शब्द गंध रस का भी अनुभव कराता है। आचार्य शुक्ल ने भी कहा है "दृश्य शब्द के अन्तर्गत केवल नेत्रों

---

1. डा0 नगेन्द्रः काव्य बिम्ब, पृ0–8

के विषय का ही नहीं अन्य ज्ञानेन्द्रियों के विषयों का भी ग्रहण समझना चाहिए।"[1] वही बिम्ब योजना सफल होती है जो ऐसा ज्ञान करवा सके। यह गुण तभी आ सकता है जबकि कोई दृश्य या भाव कवि को विमुग्ध कर लें।

कवि बच्चन बिम्ब के प्रति इतने सचेष्ट नहीं हैं, परन्तु उनके काव्य की उच्चता में चित्रात्मकता स्वयं आ गयी है। बिम्ब स्वाभाविक होने के कारण अधिक मनोहारी व सुरूचिपूर्ण बन पड़े हैं। यथा –

झुकी हुई अभिमानी गर्दन
बँधे हाथ नत निष्प्रभ लोचन ।[2]

कैसा सुन्दर बिम्ब है। सहसा पाठक के नेत्रों के समक्ष कवि के भावों में गुँथे चित्र से मिलता जुलता दृश्य घूम जाता है। एक अन्य उदाहरण दृष्टव्य है–

"दुग्ध उज्जवल मोतियों से युक्त चादर
जो बिछी नभ के पलंग पर आज उस पर
चाँद से लिपटी लजाती चाँदनी है।"[3]

अथवा –

एक बिजली छू गयी, सहसा जगा में
कृष्ण पक्षी चाँद निकला था गगन में
इस तरह करवट पड़ी थी तुम कि आँसू
बह रहे थे इस नयन से उन नयन में।[4]

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि दूसरा भाग, काव्य में प्राकृतिक दृश्य, पृ0–1
2. बच्चन: एकान्त संगीत, रचना–1, पृ0–
3. बच्चन: मिलन यामिनी– बच्चन रचनावली–2, पृ0–31
4. बच्चन: प्रणय पत्रिका, रचना–2, पृ0–110

यह है सफल बिम्ब योजना। इन शब्दों से कवि के भावों का चित्र पाठक के समक्ष घूम जाता है। कवि अपनी अनुभूतियों को बिम्बों के द्वारा मूर्तित करता हुआ पाठक के मन में सह अनुभूति जगाने का प्रयत्न करता है यह प्रयत्न ही कला साधना है।"

दे रही कितना दिलासा आ झरोखे से जरा सा
चाँदनी पिछले पहर की पास में जो सो गयी है।[1]

इन पंक्तियों में एक अनुभूति साकार हुई है– रात्रि के अन्तिम प्रहर में पास आकर लेटी प्रिया के नैकट्य जनित सुख की अनुभूति चुपके से झरोखे से आकर पास सो गयी है। इन पंक्तियों में आना, सोना और मधुर अनुभव सभी साकार हो गये हैं और पाठक को सुख की अनुभूतियों में डूबो देते हैं।

इस प्रकार बिम्बों का सफल प्रयोग बच्चन की रचनाओं में हुआ है। यद्यपि ऐसे सफल दृश्य बिम्ब कम है। इसका एक मात्र कारण बच्चन की सरलता और अनुभूति को यथावत कह देने का आग्रह है। वे जनसाधारण की भावनाओं के अधिक से अधिक निकट आना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने अपनी काव्य कला साधना को किसी प्रकार के शिल्प कौशल की कृत्रिमता से अभिभूत नहीं होने दिया।

<u>छंद विधान</u> :

छंद काव्य की कला माना जाता है। बच्चन जी ने काव्य शिल्प के अन्तर्गत केवल छंद की समीक्षा की है। वे कहते हैं – "मैं लिखते समय अपने कथ्य से इतना तन्मय रहता हूँ कि मुझे कला का ध्यान ही नहीं आता।"[2] अर्थात् कथ्य के समक्ष वे

---

1. बच्चन: निशा निमंत्रण, रचना–1,पृ0–180

2 बच्चन: बुद्ध और नाचघर, रचना–2, पृ0–270

छंद या विशिष्ट शिल्प विधान को महत्व नहीं देते। परन्तु इसके बावजूद काव्य शिल्प के अन्तर्गत उन्होंने केवल छंद की समीक्षा की है। उन्होंने भावानुकूल छंद योजना को काव्य का स्वाभाविक गुण माना है। इस सम्बन्ध में बच्चन का कथन है कि कविता में भाव, भाषा और छन्द का अटूट सम्बन्ध है। किसी विशेष प्रकार की भाषा और छंद की अवतारणा करते हैं।"[1] यद्यपि बच्चन के पूर्ववर्ती कवियों ने भी भावानुसार छंद विधान की चर्चा की थी किन्तु छंद को भावना और भाषा से अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध मानने की यह चर्चा अपेक्षाकृत नवीन है। इसके अतिरिक्त बच्चन ने मुक्त छंद और कतिपय विदेशी छंदों (सानेट, उर्दू–छंद और रूबाई) के स्वरूप की सजग समीक्षा की है। बच्चन की मान्यताएं रूढ़िगत न होकर विकासशील हैं अर्थात् बच्चन ने छंद के क्षेत्र में नवीनताओं का स्वागत किया है। उन्हीं के शब्दों में "यदि काव्य जीवन का प्रतिबिम्ब है तो इसमें तुकांत छंद अतुकांत छंद और मुक्त छंद सबकी सार्थकता है।"[2]

बच्चन जी ने अपने काव्य में विदेशी छंदों का भी प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी कविता में उर्दू छंदों के प्रयोग का विवेचन किया है। उर्दू छंदों के प्रयोग का विरोध बच्चन को अभीष्ट नहीं है किन्तु उसके अंधानुकरण से वे असहमत है। इस सम्बन्ध में बच्चन का कथन है कि – उर्दू छंदों को स्वीकार करने से इस बात का खतरा है कि लेखक विवशता से उर्दू के शब्द भावों की धारा में बह जाय। यह हमें स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि हिन्दी का जन्म उसी चीज को दुहराने के लिए नहीं हुआ जिससे उर्दू पा चुकी है।"[3] इस कथन में यह स्पष्टतः प्रतिपादित किया गया है कि किसी अन्य भाषा के छंदों का प्रयोग करते समय कवि को अपनी भाषा के गुणों को नही भूलना चाहिए।

<u>रूबाई</u> :

फारसी के रूबाई छंद को हिन्दी में प्रचलित करने का श्रेय बच्चन को ही जाता है। रूबाई को प्रचलित करने के साथ ही साथ उन्होंने उसके सिद्धान्त रूप

---

1 बच्चन, बुद्ध और नाचघर, रचना–2, पृ0–267

2. वही, पृ0–267

3. मेरा रूप तुम्हारा दर्पण (बाल स्वप्न राही) भूमिका, पृ0–6

को भी स्पष्ट किया। रूबाई के वाह्य अर्थ का विवेचन करते हुए बच्चन कहते हैं – "रूबाई का शाब्दिक अर्थ है चौपाई, चौपदा या चतुष्पदी।"[1] रूबाई एक विशेष प्रकार के छंद का नाम है जिसमें पहली पंक्ति के तुक से मिलता है। तीसरी पंक्ति का तुक से मिलता है। तीसरी पंक्ति का तुक भिन्न होता है और मन में चौथे तुक की प्रत्याशा जमाता है जो फिर पहली और दूसरी पंक्ति का होता है।[2] एक उदाहरण दृष्टव्य है–

मृदु भावों के अंगूरों की आज बना लाया हाला,
प्रियतम, अपने ही हाथों से आज पिलाऊँगा प्याला;
पहले भोग लगा लूँ तेरा फिर प्रसाद जग पायेगा,
सबसे पहले तेरा स्वागत करती मेरी मधुशाला।"[3]

रूबाई के बहिरंग के अतिरिक्त उसके भाव पक्ष में मूलतः मानवीय वेदनाओं का चित्रण रहता है। आशा -- निराशा और अभावों का मार्मिक उल्लेख उसकी विशेषता है। बच्चन के शब्दों में – रूबाइयत सुख का नहीं दुख का गीत है संतोष का गान है।"[4] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि रूबाई में किसी मार्मिक अनुभूति का संगीतमय कथन रहता हे और यह छंद कुछ विशेष भावों के लिए रूढ़ हो गया है। सीताराम चतुर्वेदी "रूबाई में" नैतिक आदर्शो का कथन भी उसकी अपनी विशेषता है।"[5] ऐसा मानते हैं। नैतिकता के अतिरिक्त डा0 अली असगर हिकमत के अनुसार – "दार्शनिक मान्यताओं और दैनन्दिन समस्याओं का स्पष्टीकरण भी रूबाई का स्वाभाविक गुण है।"[6]

इस प्रकार हम देखते हैं कि रूबाई सुख का नहीं दुख का गान है एवं उसमें नैतिक आदर्शो का कथन होता है इसके अतिरिक्त रूबाई में दैनन्दिन समस्याओं

---

1. बच्चनः मधुशाला (भूमिका), पृ0–25
2. कमला चौधरीः खैयाम का जाम, पृ0–3
3. बच्चनः मधुशाला, पृ0–27
4. बच्चनः खैयाम की मधुशाला, पृ0–9
5. सीताराम चतुर्वेदी, पृ0–152
6. डा0 अली असगर हिकमतः फारसी साहित्य की रूपरेखा, पृ0–150

का स्पष्टीकरण भी होता है। बच्चन की रूबाइयों में हमें इन सभी विशेषताओं के दर्शन मिल जाते हैं।

छंदों के प्रति बच्चन का आग्रह आरती और अंगारे तक विशेष रूप से रहा उसके बाद तो इस ओर से भी कवि मुक्त हो गया। बच्चन ने काव्य भाषा को संवारने का नहीं पर बात को विशिष्ट ढंग से कहने का प्रयत्न किया है। यद्यपि छंद विधान को कवि ने कभी भी मजबूरी बनाकर स्वीकार नहीं किया, किन्तु जीवन के कवि होने के नाते जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में स्वतः छंदों का अधिक संख्या में प्रयोग हो गया है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में किसी भी एक रचनाकार में इतनी अधिक संख्या में छंदो का प्रयोग नहीं किया है जितना बच्चन ने। संभवतः इस विविधता का कारण उनकी विभिन्न मानसिक स्थितियाँ हैं। बच्चन स्वयं स्वीकार करते हैं कि रचना करते समय वे कभी छंद के लिए पूर्व योजना नहीं बनाते। छंदों का प्रयोग होता अवश्य है परन्तु तत्क्षण जो स्वाभाविकता से आ जाय वही ग्रहीत हुआ है। इसीलिए बच्चन ने काव्य में बासीपन नहीं लगता। छंदों की बैखासी के सहारे तो लंगड़ी प्रतिभा भी चल लेती है भागती हुई दो पाँवों वाली प्रतिभा के लिए बैसाखी तो बाधक ही होगी।

बच्चन प्रारम्भ से ही प्रयोगशील रहे हैं। परन्तु शिल्प के क्षेत्र में उन्होंने जो भी प्रयोग किये वे उस समय प्रारम्भ होते हैं जब वे परवर्ती काव्य की ओर उन्मुख होते हैं। "आरती और अंगारे" की भूमिका में उन्होंने लिखा है– "मुक्त छंद का प्रयोग आधुनिक युग की आवश्यकता है। गम्भीरता से विचार करें तो यह बात स्पष्ट होगी कि आज जबकि मानव की अनुभूतियाँ समस्त सीमाओं और दायरों को तोड़कर मुक्ति की माँग कर रही है तो कविता ही छंद के चौखटे में क्यों जड़ी जाय।"[1]

बच्चन के काव्य में जो छंद प्रयुक्त हुए हैं वे दो प्रकार के हैं एक तो वे जो परम्परागत मात्रिक छंद है और दूसरे वे जो मुक्त छंद की श्रेणी में आते हैं। इन दोनों के अतिरिक्त कुछ ऐसे छंद भी हैं जो लोक धुनों पर आधारित है। इनमें

---

1. बच्चन: आरती और अंगारे, रचना–2, पृ0–181

से कुछ अंग्रेजी के सानेट के रूप में जाने जाते हैं। परम्परागत मात्रिक छंद के उदाहरण बच्चन के पूर्ववर्ती काव्य में भरे पड़े है। जबकि परवर्ती काव्य में अधिकांशतः मुक्त छंद का प्रयोग हुआ है। मुक्त छंद मुक्त अवश्य है परन्तु उनमें भी कुछ मात्राओं के बाद यति होती है और फिर स्वतः ही उस यति से उन पदों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। बच्चन की रचनाओं में मुक्त छंद के वे प्रयोग अधिक मिलते हैं जो पंचक, षष्ठक, सप्तक या अष्ठक अथवा नवमात्रिक को आधार बनाकर तैयार किये गये हैं।

<u>उपमान</u> :

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उपमान् के लिए अप्रस्तुत शब्द का प्रयोग किया है। उनके अनुसार – "प्रस्तुत वस्तु और अलंकारिक वस्तु में बिम्ब प्रति–बिम्ब भाव हो, अर्थात् अप्रस्तुत (कवि द्वारा लायी हुई) वस्तुतः प्रस्तुत वस्तु से रूप रंग आदि में मिलती जुलती है। इस कथन से दो बातें स्पष्ट होती हैं एक तो अप्रस्तुत अलंकारिक वस्तु है और दूसरे वह कवि द्वारा लायी जाती है।

कवि मानस में स्थित भाव उपमानों की सहायता से मूर्त होकर पाठक के लिए संवेध बन जाता है। कविता का मूल भाव जो भोग के समय तक केवल कवि का था उपमान द्वारा निर्वैयक्तिक होकर सहृदय मात्र हो जाता है। इसीलिए कविता की रचना प्रक्रिया में उपमान विधान सहज सभूत अंग है।

बच्चन ने उपमान का प्रयोग कहीं पर तो परम्परागत उपमा अलंकार के रूप में किया है और कहीं केवल उपमान का ही कथन किया है। उपमा के गुण का कथन करने का विधान है किन्तु कभी–कभी गुण अथवा धर्म कथन न करने से ही अधिक सौंदर्य की सृष्टि होती है। कवि मानस सृजन पर उभरते हुए अनेक उपमानों में से सटीक उपमान का चयन करता है। ऐसा उपमान जो उसकी भावना को अथवा उसके मानस में उदित ठीक प्रकार से रूपायित कर सके। एक उदाहरण द्वारा हम

---

इसे समझने का प्रयास करते हैं-

"तुम्हारे नील-झील से नैन
नीर निर्झर से लहरे केश।"[1]

इन पंक्तियों में केवल उपमान और उपमेय का कथन वाच्य रूप में है तथा झील की गहराइ सी नयन की गहराई और सजीवता आदि का गुण व्यंग्य है। इस उपमान के प्रयोग से नयनों के सभी गुण मानस पटल पर साकार हो उठते हैं। द्वितीय पंक्ति पूर्ण उपमा का उदाहरण है। उपमा के चारों अवयवों का कथन कर कवि ने सौंदर्य सृष्टि की है। एक अन्य उदाहरण -

दुग्ध उज्जवल मोतियों से युक्त चादर
जो बिछी नभ के पलंग पर आज उस पर
चाँद से लिपटी लजाती चाँदनी है।"[2]

इसमें प्रस्तुत भाव की अभिव्यक्ति प्रकृति के तदनुरूप चित्र द्वारा की गयी है। आकाश के मुक्ता सज्जित पलंग पर चाँदनी लिपटी लजाती बैठी है। मिलन यामिनी का प्रसंग विमर्श इस वर्णन में निहित भाव को स्पष्ट करता है। यहाँ व्यंग्य का अर्थ है कि नायिका चाँदनी के सदृश गौरवर्ण है, लजीली है- आकांक्षावती भी है। एक और भावभी अभिव्यक्त होता है कि नायिका का स्पर्श ही ऐसा है कि कवि को सभी प्राकृतिक उपादान उसी आनन्द में मग्न प्रतीत होते हैं। एक और उदाहरण द्रष्टव्य है-

"पास आओ, चन्द्रमा के होंठ चूमूँ
कुंतलों के बादलों के साथ घूमूँ।"[3]

---

1.

2. बच्चन: मिलन यामिनी, रचना-2, पृ0-31

3. वही, पृ0- 28

यहाँ कवि ने प्रेयसी के मुख को चन्द्रमा ही कह दिया है और सारा सौंदर्य इस आरोप में ही है – साथ ही चन्द्रमा से वैशिष्ट्य भी दिखलाया है। चन्द्रमा में होंठ नहीं पर इस चन्द्रमा में होंठ भी हैं। प्रिया का मुख चन्द्र के सादृश्य होते हुए भी उससे बढ़कर है। प्रिया के केश को बादल धर्मी कहा है। "कुंतलों के बादलों" वाक्यांश अपने आपमें पूर्ण हैं। यदि बादल जैसे कुंतल कहा जाता तो मात्र सादृश्य की ही स्थापना होती। ध्वनि है कि कुंतल बादलों से भी बढ़कर है।

"एक और रूप चित्र जो मन का आकर्षित कर लेता है–

"संध्या की श्यामल अलकों ने घेर लिया अंबर का आनन
अपनी ही अलसित पलकों पर तंद्रा तिरती आती क्षण–क्षण।"[1]

उपर्युक्त चित्र में मुँह और पलकों तथा केशों के सौंदर्य को कवि ने संध्या, अम्बर और पृथ्वी से उपमित किया है। संध्या को अस्त–व्यस्त अलकों के रूप में देखा है। अम्बर रूपी मुँह पर छिटके हुए ये केश उसे अपनी प्रेयसी के मुक्त केश राशि युक्त चेहरे की स्मृति दिलाते हैं। पृथ्वी रूपी पलकों पर छायी अलस निद्रा को भाव दिखाकर कवि ने नेत्रों में प्रणय की खुमारी को उभारने की चेष्टा की है।

इस प्रकार कुल मिलाकर बच्चन काव्य में उपमानों की योजना सामान्य स्तर की है और यह बच्चन की उनकी अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल भी है।

अंत में पूरे अध्याय का सारांश यह है कि बच्चन खड़ी बोली के कवियों में शब्द सम्पदा के सर्वाधिक धनी हैं। उनकी भाषा में न तो तत्सम शब्दों के प्रति मोह है न उर्दू अंग्रजी, जनभाषा के शब्दों के प्रति अरूचि। उन्होंने नये शब्दों का निर्माण भी किया है। "मुहावरों और कहावतों" का प्रयोग उनके काव्य को और प्रेषणीय बनाते हैं। प्रायः गहन गम्भीर विचारों की अभिव्यक्ति कवि सीधे सरल शब्दों में करता है जिससे प्रमाणित होता है कि वे शब्द शक्तियों के उचित प्रयोग में दक्ष है। बच्चन का "प्रतीक विधान" अत्यन्त सरल है। प्रतीक उनके स्पष्ट है और ऐसे हैं कि सामान्य पाठक

---

1. बच्चनः मिलन यामिनी, रचना–2, पृ0–63

के समक्ष में भी आ जाय। ये प्रतीक बच्चन की अभिव्यक्ति में नदो सा वेग भर देते हैं, और हर अवस्था में काव्य का सौंदर्य बढ़ाते रहे हैं। "बिम्ब" के प्रति बच्चन इतने सचेष्ट नहीं दिखते परन्तु उनके काव्य की उच्चता में चित्रात्मकता स्वयं आ गयी है। उनके बिम्ब स्वाभाविक होने के कारण अधिक मनोहारी व सुरूचिपूर्ण बन पड़े हैं। छंदों का प्रयोग बच्चन ने अपने काव्य में दो प्रकार से किया है– परम्परागत मात्रिक छंदों का प्रयोग एवं मुक्त छंदों का प्रयोग। इनके अतिरिक्त उन्होंने रूबाई, अंग्रेजी के सानेट के रूप में जाने वाले छंदों एवं लोक धुनों पर आधारित छंदों का प्रयोग भी किया है। बच्चन के काव्य में उपमानों की योजना सामान्य स्तर की है परन्तु ऐसा इसलिए है कि उनका आग्रह सरलता और अनुभूति को यथावत कह देने का है। क्योंकि वे जनसाधारण की भावनाओं के अधिक से अधिक निकट आना चाहते थे।

*****

## परिशिष्ट

### आधार ग्रंथ – बच्चन द्वारा प्रणीत रचनाएं


प्रारम्भिक रचनाएं: भाग –1 : भारती भण्डार, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण सन् 1946

प्रारम्भिक रचनाएं: भाग–2: भारती भण्डार, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, सन् 1946

खैयाम की मधुशाला (अनुवाद): राजपालएण्ड संस दिल्ली, सातवां संस्करण, सन् 1968

मधुशाला : " " बारहवाँ संसकरण सन् 1956

मधुबाला : " " नवां संस्करण, सन् 1956

मधुकलश : " " सातवां संस्करण, सन् 1960

निशा– निमंत्रण : " " सातवां संस्करण, सन् 1960

एकांत संगीत : " " छठा संस्करण, सन् 1961

आकुल अंतर : " " चौथा संस्करण, सन् 1957

सतरंगिनी : " " चौथा संस्करण, सन् 1967

हलाहल : " " चौथा संस्करण, सन् 1966

बंगाल का काल : " " तीसरा संस्करण, सन् 1958

खादी के फूल : " " दूसरा संस्करण, सन् 1962

सूत की माला : " " दूसरा संस्करण, सन् 1966

मिलन यामिनी : " " तीसरा संस्करण सन् 1969

प्रणय पत्रिका : " " दूसरा संस्करण, सन् 1960

धार के इधर –उधर : " " तीसरा संस्करण, सन् 1966

आरती और अंगारे : " " चौथा संस्करण, सन् 1966

बुद्ध और नाचघर : " " प्रथम संस्करण, सन् 1958

त्रिभंगिमा : " " प्रथम संस्करण, सन् 1961

चार खेमे चौंसठ खूँटे : " " प्रथम संस्करण, सन् 1962

दो चट्टाने : " " प्रथम संस्करण, सन् 1965

बहुत दिन बीते : " " प्रथम संस्करण, सन् 1967

कटती प्रतिमाओं की आवाज : " " प्रथम संस्करण, सन् 1968

उभरते प्रतिमानों के रूप : राजपाल एंड संस, प्रथम संस्करण, दिल्ली, सन् 1969

जाल समेटा : " " प्रथम संस्करण, सन् 1973

क्या भूलूँ क्या याद करूँ (आत्मकथा) एण्ड–1) " " तीसरा संस्करण, पृ0–1970

नीड़ का निर्माण फिर (आत्मकथा खण्ड–2) " " प्रथम संस्करण, सन् 1970

प्रवास की डायरी : " " प्रथम संस्करण, सन् 1971

बसेरे से दूर (आत्मकथा खण्ड–3) " " प्रथम संस्करण, सन् 1977

दशद्वार से सोपान तक (आत्मकथा खण्ड–4) " " प्रथम संस्करण, सन् 1985

बच्चन रचनावली (9 खण्डों में) – राजकमल प्रकाशन दिल्ली– दूसरा संस्करण, सन् 1987

***

# सहायक ग्रंथ सूची


1. बच्चनः व्यक्तित्व और कवित्व : जीवन प्रकाश जोशी (सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली), 1968
2. बच्चन – निकट से (सं0): अजित कुमार, ओंकारनाथ श्रीवास्तव (राजपाल एंड संस दिल्ली) 1968
3. बच्चन : एक युगान्तर : नीरज और नईमा (स्टार पब्लिकेशन्स, दिल्ली) 1965
4. बच्चनः अनुभूति और अभिव्यक्ति : इंदुबाला दीवान (सूर्य प्रकाशन दिल्ली), 1984
5. बच्चनः पत्रों में : जीवन प्रकाश जोशी (सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली) 1970
6. बच्चनः व्यक्तित्व एवं कृतित्व : कृष्ण चन्द पाण्ड्या (जवाहर पुस्तकालय मथुरा) 1972
7. बच्चनः व्यक्तित्व और कवि : बाँके विहारी भटनागर (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली), 1964
8. बच्चनः एक पहेली : चन्द्रदेव सिंह (हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी) 1967
9. बच्चन का साहित्य कथ्य और शिल्प : जय प्रकाश भाटी (संघी प्रकाशन,जयपुर) 1980
10. बच्चन के काव्य में प्रणय भावनाः जगदीश नन्दिनी (दिनमान प्रकाशन, दिल्ली) 1984
11. बच्चन का परवर्ती काव्य : डा0 श्याम सुन्दर घोष (राजपाल एंड संस दिल्ली), 1967
12. बच्चन का परवर्ती काव्य : डा0 रेणु मल्होत्रा (अनुपम प्रकाशन, जयपुर) 1972
13. आधुनिक हिन्दी कविता का मनोवैज्ञानिक अध्ययनः उर्वशी जे0 सूरती (अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर) 1966
14. नयी समीक्षा नए संदर्भ : डा0 नगेन्द्र (नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली) 1970
15. आस्था के चरण : डा0 नगेन्द्र (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली) 1968
16. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ : डा0 नगेन्द्र (नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली) 1966
17. हिन्दी के स्वच्छंदतावादी उपन्यास : डा0 कमल कुमारी जौहरी

18. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा0 नगेन्द्र (नेशनल पब्लिशिंग हाउस)

19. विचार और विवेचन : डा0 नगेन्द्र (नेशनल पब्लिशिंग हाउस)

20. नयी कविता में प्रेम सम्बन्ध : सुषमा भटनागर (प्रेम प्रकाशन मंदिर दिल्ली) 1989

21. हिन्दी काव्य में प्रेम प्रवाह : परशुराम चतुर्वेदी (किताब महल, इलाहाबाद) 1952

22. हिन्दी नवलेखन : डा0 राम स्वरूप चतुर्वेदी (भारती ज्ञानपीठ प्रकाशन) 1960

22. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास – डा0 रामस्वरूप चतुर्वेदी– (लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद) 1986

23. आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास: डा0 आशा किशोर (विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी) 1971

24. हिन्दी कविता: तीन दशक – डा0 राम दरश मिश्र (ज्ञान भारती दिल्ली) 1969

**कोश :**

1. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1

2. आक्सफोर्ड डिक्शनरी

3. भार्गव आदर्श हिन्दी कोश

***